ISSN 0975-5217
अंक 13
वर्ष 2017

भैरवी

संगीत शोध पत्रिका

मिथिलांचल संगीत परिषद्
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा
(बिहार)

भैरवी

(संगीत शोध-पत्रिका)

(वर्ष 2017 अंक 13)

मिथिलांचल संगीत परिषद्

स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर, दरभंगा 846 004

भैरवी (संगीत शोध-पत्रिका)

वर्ष- 2017, अंक : 13

प्रधान सम्पादक
डॉ. पुष्पम नारायण

प्रकाशक : मिथिलांचल संगीत परिषद्
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर, दरभंगा 846 004
मो. - 09430063265
ईमेल - npushpamji@gmail.com

मूल्य
इस अंक का मूल्य : 200/- रुपये

व्यक्तियों के लिए :

वार्षिक : 400/- रुपये / त्रैवार्षिक 1200/- रुपये

पंचवार्षिक 2000/- रुपये / आजीवन : 10000/- रुपये

संस्थाओं के लिए :

वार्षिक : 450/- रुपये / त्रैवार्षिक 1400/- रुपये

पंचवार्षिक 2300/- रुपये / आजीवन : 12000/- रुपये

(केवल मनी आर्डर / चेक / बैक ड्राफ्ट से)
(दरभंगा से बाहर के चेक में 40 रुपये अधिक जोड़ें)

"भैरवी" विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित है। इसकी Journal No. 44277 है।

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु लेखक, प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं के विचार से सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं।
समस्त विवाद दरभंगा न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

मुद्रक
विकास कंप्यूटर एंड प्रिंटर्स
1/10753, गली नं. 3 सुभाष पार्क
नवीन शाहदरा, दिल्ली - 110032

प्रधान सम्पादक

डॉ. पुष्पम नारायण

एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा

सम्पादक मंडल

प्रो. चमनलाल वर्मा

अवकाश प्राप्त विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला

प्रो. साहित्य कुमार नाहर

पूर्व विभागाध्यक्ष, संगीत एवं मंचकला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

डॉ. रवि कुमार पंडोले

प्रवक्ता, संगीत विभाग, राजकीय एम.एल.बी.जी. पी.जी. कॉलेज, भोपाल

डॉ. रामशंकर

प्रवक्ता, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ. संतोष दत्तात्रयराव परचुरे

प्रवक्ता, संगीत विभाग, एस.पी.एच. महिला महाविद्यालय, मालेगांव कैम्प, महाराष्ट्र

डॉ. अश्विनी कुमार सिंह

प्रवक्ता, संगीत एवं मंचकला विभाग, एम.एस. विश्वविद्यालय, बड़ौदा, गुजरात

डॉ. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'

पूर्व विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा

डॉ. वेद प्रकाश

स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा

शिवनारायण महतो

स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा

जन्मतिथि : 10 अप्रील, 1932 *मृत्यु : 03 अप्रील, 2017*

विदुषी किशोरी अमोनकर को श्रद्धांजलि
स्वरूप समर्पित यह अंक।

तानपुरा

डुग्गी

तबला

सितार

वीणा

हारमोनियम

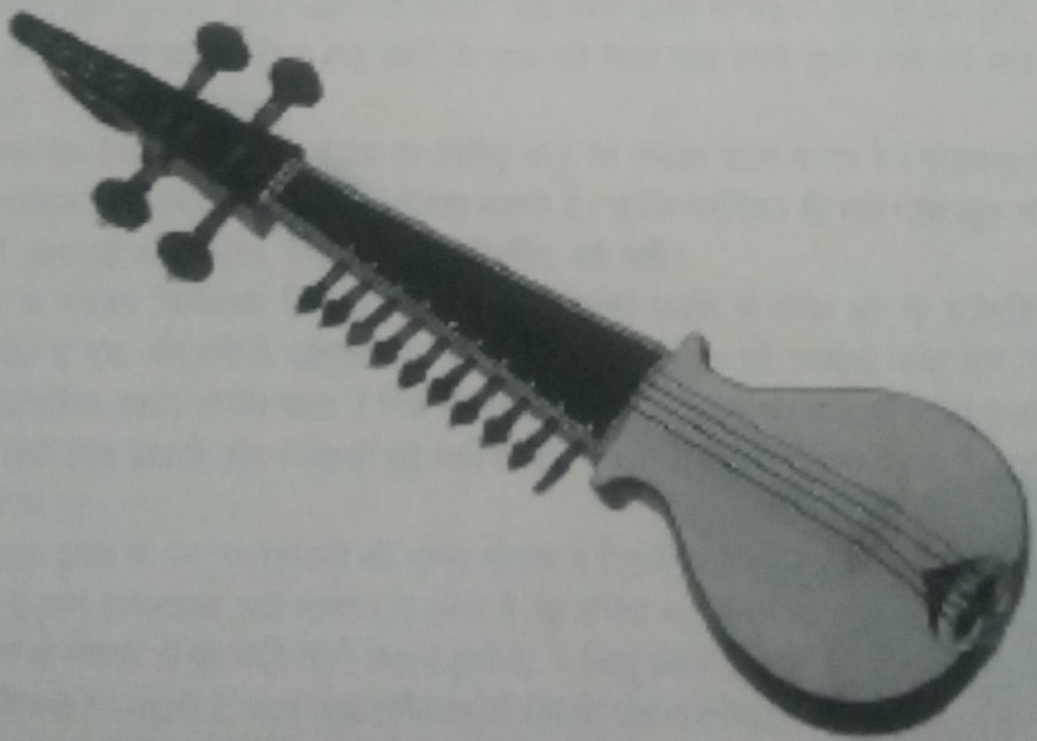

रबाब

ढोल

शहनाई

संपादक की कलम से ...

संगीत एक ऐसी औषधि है जिसका उपयोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में किया जा सकता है। आज आपसे रू-ब-रू हूँ इसके चिकित्सीय गुण को लेकर। शारीरिक अथवा मानसिक कोई भी विकृति ऐसी नहीं जिसकी चिकित्सा संगीत की स्वर-लहरियों द्वारा न हो सके, यह बात बड़े-बडे वैज्ञानिकों तथा स्वास्थय विशेषज्ञों ने विभिन्न प्रकार के रोगियों पर, पागलखानों आदि में प्रयोग करके सिद्ध कर दिया है। उनका कहना है कि सम्पूर्ण शरीर में जो तनाव या विकृति पैदा होती है, उसका मूलाधार मस्तिष्क के ज्ञान-तन्तु हैं। संगीत से कानों पर लगी नैसर्गिक झिल्ली प्रकम्पित होती है, जो सीधा मस्तिष्क को प्रभावित करती है। मस्तिष्क स्नायु-तन्तुओं के सजग होने से सम्पूर्ण शरीर में चेतना दौड़ जाती है और शक्ति प्रदान करती है, जिससे सरलतापूर्वक आरोग्य लाभ मिलने लगता है। संगीताभ्यास के समय चित्त को न केवल विश्रान्ति मिलती है वरन् आत्मिक शक्तियाँ भी जागृत होती हैं।

गान्धीजी ने अपने अनुभवों में लिखा है-''संगीत मुझे शान्ति देता रहा है। मैंने कठिन प्रसंगों में उससे सहारा लिया है। दक्षिण अफ्रीका में हुए आक्रमण से जब मैं घायल कराहता था तब ओलाइव ने मुझे एक मार्मिक भक्ति गीत सुनाया-''लीड काइण्डली लाइट'' मेरी व्यथा शान्त हो गई।'' शब्दार्थ की दृष्टि से उस गीत का अर्थ सामान्य था, पर जिस स्वर लहरी के साथ उसे गाया गया उसने सुनने वाले को भाव-विभोर कर दिया।

विद्वान वी0 फिजी के अनुसार संगीत हर जीवित वस्तु को उत्साह प्रदान करता है। तालबद्ध ध्वनियाँ स्नायु तन्तुओं की सम्वेदनशीलता और गतिशीलता बढ़ाती हैं। संगीत मनोरंजन ही नहीं ऐसा कुछ भी है जो व्यक्ति के अन्तराल को तरंगित, प्रभावित और परिवर्तित कर सके।

ग्रीस के प्रख्यात चिकित्सक हिपोक्रेटीज ने अपनी चिकित्सा पद्धति में संगीत को भी सम्मिलित रखा था। इस देश के एक और मनीषी एस्कुलोपियस ने भी रोगपचार में संगीत को उपयोगी पाया और चिकित्सा विधि में सम्मिलित रखा। प्राचीन काल में मिस्र में संगीत से प्रसव वेदना हल्की होने की मान्यता तथा प्रथा थी। उन दिनों विष उतारने और विक्षिप्तों को सही स्थिति में लाने के लिए विभिन्न प्रकार के संगीतों का उपयोग होता था।

डॉ0 ए0 हुगेल के उन अनुसन्धानों की लम्बी शृंखला है जिसमें वे आरोग्य लाभ में संगीत को औषधि उपचार से कम लाभदायक नहीं मानते। वे कहते हैं कि संगीत का आरोग्य से सघन सम्बन्ध है।

संगीत के माध्यम से जो ध्वनि तरंगें उत्पन्न होती हैं, वे स्नायु प्रवाह पर वांछित प्रभाव डालकर न केवल उनकी सक्रियता को बढ़ाती हैं, वरन् विकृत चिन्तन को रोकती और मनोविकारों को मिटाती हैं। स्वर शक्ति की इस सृजनात्मक सामर्थ्य की ओर अब वैज्ञानिकों का भी ध्यान आकृष्ट हुआ है। जहाँ एक ओर अब शब्दचालित यंत्र उपकरण, बम एवं रोबोट आदि तैयार हो रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ प्रदूषण निवारण मनोविकार शमन, कायिक-रोगनिवारण में ध्वनि-तरंगों का संगीत स्पन्दन का प्रयोग हो रहे है।

मानवी मन-मस्तिष्क पर पड़ने वाले संगीत के प्रभाव विषय पर वैज्ञानिकों ने गहन अनुसंधान किया है और पाया है कि दोनों के मध्य घनिष्ट सम्बन्ध है। मूर्धन्य मनः चिकित्सकों एवं संगीत विशेषज्ञों ने इस तथ्य की पुष्टि के लिए कितने ही प्रयोग किये हैं। निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं कि स्वर माधुर्य के प्रभाव से ध्यान की गहराई में प्रवेश करने जैसी मानसिक अवस्था का निर्माण होता है और मस्तिष्क, 'अल्फा-स्टेट' की स्थिति तक जा पहुँचता है। इसका प्रतिफल शान्तचित्त एवं आन्तरिक प्रफुल्लता के रूप में हस्तगत होता है, साथ ही मनोविकृतियों से पीछा छूटता है। परीक्षणों में पाया गया है कि तेज शोर करने वाले वाहनों एवं जेट विमानों के चालक स्नायिवक उत्तेजना के प्रायः शिकार बनते रहते हैं। उनकी नाड़ी गति भी सामान्यों की अपेक्षा कहीं अधिक चढ़ी रहती है। किन्तु जब उन्हें उपयुक्त राग-रागिनियों के सम्पर्क में रखा गया तो वे पूर्णतः स्वस्थ हो गये। मन-मस्तिष्क में नवीन स्फूर्ति का संचार होते देर न लगी। उक्त अनुसंधनकर्त्ताओं ने इसे मानवी चेतना को मथ डालने वाली विश्व की एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण शक्ति माना है।

संगीत मनुष्य सहित प्रत्येक जीवधारी के मस्तिष्क, हृदय एवं स्नायुतन्त्र पर आश्चर्यजनक प्रभाव डालता है। मानवी प्रकृति और मनःस्थिति के अनुरूप उत्कृष्टता की पक्षधर भाव सम्पन्नता से युक्त संगीत विद्या यदि विकसित हो सके, तो उससे न केवल मानसिक प्रसन्नता एवं शारीरिक क्षमता-सक्रियता प्राप्त हो सकेगी, वरन् स्वास्थ्य सन्तुलन के साथ ही आन्तरिक विभूतियों-अतीन्द्रिय सामर्थ्यों को भी हस्तगत किया जा सकेगा। बातें तो बहुत है आप से करने को। संगीत के असीमित गुण हैं। हमें गोता लगाने की आवश्यकता है। ''भैरवी'' संगीत शोध पत्रिका अपने तेरहवें सोपान की ओर अग्रसर होकर अब आपके हाथ में है। आप सभी सुधी पाठकों की शुभकामना से इसकी निरन्तरता बनी है। प्रुफ रीडिंग का कार्य अत्यन्त ही दुरूह है। तकनीकि एवं यांत्रिक त्रुटि हेतु क्षमा प्रार्थी हूँ। आशा है यह अंक सुधि पाठकों, शोध-छात्रों एवं संगीत प्रेमियों के लिए लाभकारी होगा।

—डॉ. पुष्पम नारायण
प्रधान संपादक
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वर नगर, दरभंगा 846 004
मो. - 09430063265
ईमेल - npushpamji@gmail.com

अनुक्रम

	संपादक की कलम से ...		9
1.	मध्यकालीन भक्ति परम्परा व भक्त संगीतज्ञ	डॉ. गुलशन ग्रोवर	13
2.	कृष्ण भक्ति संगीत में गौड़ीया संकीर्तन का स्वरूप	डॉ. सतनाम सिंह	18
3.	संगीत और रस	डॉ. बाबूलाल सिंह	22
4.	"मानव जीवन में संगीत का महत्व"	डा. जितेन्द्र कौर	24
5.	बांसुरी का वाद्यो में महत्व व स्थान	डॉ. पुष्पम नारायण, डॉ. लीला मणी (दीपक)	27
6.	संगीत एवं जीवन	डा. ममता कुमारी (ठाकुर)	31
7.	संगीत रत्नाकर ग्रंथ में वर्णित पटह वाद्य - विवेचनात्मक अध्ययन	ज्योति गुप्ता	33
8.	आज का युवा वर्ग और शास्त्रीय संगीत	डॉ. रश्मि पुरियार	41
9.	उपशास्त्रीय संगीत एवं सुगम संगीत में प्रयुक्त तालें व उनका बदलता स्वरूप	रजनी	43
10.	भारतीय संस्कृति में नृत्य की मान्यता	डॉ. अंजना झा	47
11.	ढाढ़ी परंपरा का इतिहास	गगनप्रीत	51
12.	सांगीतिक चिकित्सा	दत्य प्रकाश	55
13.	मिथिला में लोक संगीत की परम्परा	डॉ. पुष्पम नारायण	56
14.	"संगीतकला" बहुआयामी	डॉ. अश्विनी कुमार सिंह	65
15.	बीसवीं शताब्दी में संगीत का स्थान	डॉ. प्रेम किशोर मिश्र	68
16.	गुरू शिष्य परम्परा एवं संस्थागत शिक्षण प्रणाली	डॉ. प्रमोद कुमार तिवारी	70
17.	बचपन में संगीत की उपयोगिता एवं प्रभाव : कुछ महत्त्वपूर्ण पहलू	डॉ. राजेश केलकर	72
18.	संगीत की अभ्यास विधि	श्री प्रविण आहिरे	76
19.	लोकगीतों में बिदाई गीत	संध्या रानी मिश्रा	79
20.	भारतीय संगीत-पद्धति की चिकित्सकीय उपादेयता	शिल्पी सिन्हा	81
21.	संगीत चिकित्सा	झरणा मिश्रा	83
22.	चिकित्सा पद्धति में संगीत की भूमिका	संगीता कुमारी	85
23.	संगीत का प्रभाव	विंदिया कुमारी	87

24. संगीत और चिकित्सा — लाल बहादुर सिंह 88
25. संगीत चिकित्सा एवं आयुर्वेद — डॉ. लालति कुमारी 92
26. संगीत तथा सौन्दर्य के अन्तः सम्बन्ध पर एक दृष्टि — डॉ. रूचि मिश्रा 93
28. आकाशवाणी के द्वारा शास्त्रीय संगीत के प्रचार व प्रसार के साधानों का योगदान — डॉ. श्रुति होड़ा 100
29. पुरुष प्रधान समाज में, संगीत क्षेत्र के विकास में नारी का योगदान — डॉ. मलविन्दर सिंह 108
30. Dhamaar : A Religious Singing Style of Haridasi Sampradaya — Prof. Sudha Sahgal 111
31. The Impact of Folk Art on Religion — Dr Sneh Lata Badhwar 116
32. Importance of Region, Climate and Culture of the Folk Dances of India — Dr. Ami Pandya 120
33. Cure of Various Physical and Mental Disorder by Music Therapy — Dr. Jay Sevak 123
34. Music therapy for health and wellness — Dr. Archana Aditya Mhaskar 127
35. Practices of Sanskrit Theatre in the Theatre in the Context of Western Model — Prabhakar Dabhade 129
36. Contribution of Swami Vivekananda in Indian Music — Dr. Meghana Ashtaputre 132
37. Pracrices of Sanskrit Theatre in the Context of Natyashastric Tradition — Prabhakar Dabhade 135

मध्यकालीन भक्ति परम्परा व भक्त संगीतज्ञ

डॉ. गुलशन ग्रोवर

संगीत एक आदिकालीन कला है, सृष्टि के साथ ही संगीत का जन्म माना जाता है। प्राण और उष्णता अर्थात् वायु और अग्नि का सम्पर्क जैसे ही स्थापित हुआ, मधुर लहरियाँ गूँज उठीं और उन लहरियों ने सकल ब्रह्माण्ड को मधुर ध्वनियों द्वारा झंकृत कर दिया।

सम्पूर्ण 16वीं एवं 17वीं शताब्दी और विशेषरूप से सम्राट अकबर का युग था, जब भक्ति आन्दोलन अपनी परिपक्व अवस्था में पहुंच कर तत्कालीन राजनीतिक गतिविधियों, सामाजिक मान्यताओं, धार्मिक चिन्तन एवं आर्थिक मूल्यों पर अपना स्पष्टतः स्थाई प्रभाव डाल रहा था। मुगल सम्राट अकबर पर भक्ति आन्दोलन एवं उसके अवगाहक भक्त सन्तों का प्रभाव बहुत अधिक पड़ा।

संगीत के स्वर्ण युग में जहाँ एक ओर शास्त्रीय एवं लोक संगीत राजधानी पर अपना अधिकार बनाये हुये था। सम्पूर्ण उत्तर भारत में भक्त सूरदास, स्वामी हरिदास, मीरा, तुलसीदास, अष्टछाप के सभी भक्त सन्तों के नाम कभी भी विस्मृत नहीं किये जा सकते जिन्होंने अपनी विलक्षण काव्य प्रतिभा द्वारा सम्पूर्ण जन मानस की अन्तरात्मा को झकझोर डाला, चारों तरफ भक्ति का उन्माद छा गया था, आनन्द प्रेम का संगीत गूँजने लगा था। साम्प्रदायिकता का चिह्न मात्र भी दिखाई नहीं देता था। भक्ति संगीत का प्रभाव अकबरी दरबार पर पूरी तरह छा गया। इसी सोलहवीं शताब्दीं में तानसेन, बैजू बावरा का ऐतिहासिक कला-युद्ध भी हुआ। काबुल, गजनी और कन्धार से लेकर कश्मीर से मध्य भारत की सीमाओं तक भारतीय ध्रुपद शैली गूँज रही थी। फारसी भाषा से निकला ख्याल एवं अन्य गायकियाँ भी अपना प्रभाव जमा रहीं थी।

इस युग के गायकों की गायन में वह अद्भुत शक्ति होती थी कि शिकार को वे अपने पास बुला सकते थे।

संगीत के भेद, अंग, ग्राम श्रुतियाँ, मूर्च्छना, उनचास कूट तानों, रागों की जातियाँ, वर्ण और ध्रुपद धमार आदि गायकियों को परिचय भी मिलता है। पदों में चर्चरी ताल, एकताल, ध्रुवताल तथा पताल इत्यादि के भी उल्लेख मिलते हैं। वाद्यों में झांझर, बीन, रबाब, किन्नरी, स्वरमण्डल, जलतरंग, पखावज, उपंग, शहनाई, सारंगी, कठताल, मुँहचंग, खंजरी, मृदंग, डफर झांझ, शंख, श्रृंगी, भेरी, नगाड़ा, दुंदुभी, ढोल, वेणु, जिनांक, मंजीरा, मुरली आदि प्रयोग में लाये जाते थे।

मुस्लिम आक्रान्ताओं ने लगातार आक्रमणों में सफल होने के पश्चात् 1206 ई. में भारत में अपना राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने के पश्चात् मुस्लिम राज्य, मुस्लिम संस्कृति एवं धर्म का आवाहन किया। मुस्लिम युग के साथ भारत के सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृति मूल्य भी प्रभावित हुए बिना न रह सके। संगीत के क्षेत्र में भी हलचल प्रारम्भ हुई। भारतीय संगीत शास्त्र संस्कृत भाषा में होने के कारण मुसलमान उसे समझने में असमर्थ रहें फिर भी गायन-वादन (क्रियात्मक संगीत) में उन्होनें अच्छी उन्नति की। यह पहला अवसर था जब मुसलमानों ने संगीत को संगीत के रूप में और अपने धर्म के क्षेत्र में भी अपनाया। 13वीं सदी के उत्तरार्द्ध में पण्डित शार्ङ्ग देव ने "संगीत रत्नाकर" ग्रन्थ की

अंशकालिक प्रवक्ता, संगीत विभाग, बैकुण्ठी देवी कन्या महाविद्यालय, आगरा

रचना की। इसमें नाद, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, जाति आदि का विवेचन भली प्रकार किया गया। इस ग्रन्थ में गान, वादन तथा नृत्य तीनों का विवरण हैं। भारतीय संगीत के उन्नयन की दृष्टि से सम्राट अकबर का काल स्वर्ण युग था। अकबर मात्र संगीत का प्रेमी ही नहीं, विचारक एवं चिन्तक भी था वह संगीत विद्वानों के साथ बैठकर "संगीत रत्नाकर जैसे ग्रन्थों पर विचार करता था, संगीत गोष्ठियाँ आयोजित करता था। उसके शासन काल में कर्नाटक के संगीत पर सन् 1550 ई. के लगभग एक प्रसिद्ध ग्रन्थ" स्वरमेल-कला निधि, श्री रामामात्य द्वारा लिया गया। जिसमें उनके रागों का वर्णन हैं। इस ग्रन्थ के पाँच प्रकरण हैं—उपोद्पात, स्वर, वीणा, मेल एवं राग 1599 लगभग कर्नाटक के पण्डित पुण्डरीक विट्ठल द्वारा संगीत पर चार ग्रन्थ लिखे गये (1) सद्राग चन्द्रोदय, (2) राग माला, (3) राग मंजरी (4) नर्तन निर्णय।

एक ओर तानसेन शास्त्रीय और सम्मोहक गायकी का इतिहास रच रहें थे, तो दूसरी ओर भक्ति आन्दोलन के अवगाहनकर प्रणेता भक्त सन्त मीरा, तुलसी, सूर, स्वामी हरिदास, बैजू बावरा, कुम्भन दास द्वीत स्वामी, चतुर्भजदास, गोविन्ददास एवं कृष्णदास के भक्ति संगीत के शब्द, लय, ताल, स्वर चहूँ ओर गूँज रहे थे। इन भक्त कवियों के पदों में संगीत के भेद, अंग, ग्राम, श्रुतियाँ, मूर्च्छना, उन्वास कूट तानों, रागों की जातियाँ, वर्ण और ध्रुवपद, घमार आदि गायकियों का भी परिचय मिलता हैं। यह सभी संगीतज्ञ कृष्ण, जन्म, रास, होली, बसन्त, वर्षा, मल्हार, हिंडोलना आदि के अवसर पर अपने गीतों से अपने प्यारे प्रभु को रिझाते थे।

भक्त संगीतज्ञ

संगीत एवं पद गायन की वह पहली धारा जो शाही दरबारों की शोभा बनकर रस वर्षा कर रही थी, भक्ति आन्दोलन से जुड़े सभी भक्त सन्तों का आत्मिक भावनात्मक लगाव सहज ही रस-खान वृन्दावन से था, चाहे वो बंगाल के श्री चैतन्य महाप्रभु हों, चाहें गुजरात के नरसी मेहता, राजस्थान की मीरा, अवध के तुलसी हों, वल्लभाचार्य, सूर, हरिदास, कुम्भनदास, हित हरिवंश हों।

सोलहवीं शताब्दी, संगीत और भक्ति काव्य के समन्वय की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रही, क्योंकि इसी शताब्दी में भक्ति आन्दोलन अपनी परिपक्व अवस्था में पहुँचकर, तत्कालीन राजनीति, समाज, धर्म एवं संस्कृति पर अपना सकारात्मक प्रभाव डाल रहा था, स्वयं मुगल सम्राट भी भक्त सन्तों के दिव्य भक्ति-रस-संगीत से प्रभावित हुये बिना न रह सकें।

1. स्वामी हरिदास

गान-कला गन्धर्व, ललिता सखि के अवतार स्वामी हरिदास का जन्म भाद्रपक्ष शुक्ल 8 संवत् 1537 वि. में ब्राह्मण कुल में हुआ था।

पच्चीय वर्ष की अवस्था में निधिवन निकुंज में अपने प्राण प्रियतम की भक्ति में तन्मय हो गये। आनन्द कन्द ब्रजनन्दन, प्राण बल्लभ प्रियतम श्री कृष्ण के गुणों का गान करते-करते आप महान संत, रसिक भक्त संगीत शिरोमणि, साक्षात् गंधर्व, संगीतावतार के रूप में प्रख्यात हो गये।

आप केवल गान विद्या में ही निपुण नहीं थे अपितु सम्पूर्ण अंग सहित संगीत के मर्मज्ञ थे। आपको गीत वाद्य और नृत्य संगीत के इन तीनों अंगों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त था। वृन्दावन में रासलीला आपकी ही देन है। स्वामी जी की प्रमाणिक रचनाओं के रूप में 128 ध्रुपद माने जाते हैं।

जहाँ तक संगीत के दूसरे अंग वादन और नृत्य का सम्बन्ध है, स्वामी हरिदास जी की देन महत्वपूर्ण है। वाद्य यंत्रों के स्थान पर विदेशी तत्वों से प्रभावित बनाया गया और बाद में पखाबज के दो टुकड़े कर तबला का आविष्कार किया गया था।

ब्रज का रास नृत्य प्रसिद्ध है। श्री राधा-कृष्ण के नित्य रास बड़े भावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

श्री स्वामी हरिदास, कियौ शृंगार प्रिया कौ।
अरू आचारज देव, कियौ मौहन रसिया कौ।।

अतः स्वामी जी की रचनाओं में गायन, वादन और नृत्य से सम्बन्धित अनके पारिभाषिक शब्द, वाद्ययंत्रों के नाम और उनके बोल तथा नृत्य की अनेक मुद्राओं और तालों के संकेत मिलते हैं।

2. सूरदास

सूरदास का जन्म संवत् 1535 में वैशाख शुक्ला पंचमी को दिल्ली के पास के सीही गाँव में हुआ था। किन्तु कुछ लोग इनका जन्म स्थान आगरा और मथुरा के बीच में रूनकता गाँव को मानते हैं।

कुछ लोगों के मत से संगीतज्ञ सूरदास का असली नाम ''सूरध्वज'' या जो काव्यों में 'सूरदास' मदनमाहेन लिखा है। ये सूरदास भी गान-विद्या और काव्य में अति प्रवीण थे। बल्लभाचार्य जी भागवत से जिस प्रकरण की कथा सुनाते थे, सूरदास उसी भाव का पद बनाकर गायन किया करते थे। जब संवत् 1602 में 'अष्ट सखा' अथवा 'अष्ट छाप' की मण्डली बनाई गई तो इनका उसमें प्रमुख स्थान था।

अकबर के काल में भक्त कवियों की श्रृंखला में सूरदास संगीतज्ञ एवं भक्त कवि थे। सूरदास ने संगीत के तीनों पक्षों गायन, वादन और नर्तन को अपनाया और अपने युग में प्रचलित प्रायः सभी राग-रागनियों को स्थान दिया।

सूरदास के काल में 'धुपद और ख्याल' दोनों का प्रचार समान रूप से था।

सूरदास के पदों में प्रयुक्त तालों में एक ताल, झपताल, चचरी ताल, ध्रुवताल, धमारताल, प्रमुख हैं। इनके काव्य में अनेक वाद्य यंत्रों का प्रयोग मिलता है। पंच शब्द रूंज, मुरज, कठताल, बासुंरी, झालरी, बीन, रवाव, किन्नरी, सुरमंडल, मजीरा, डिमडिम, शंख, भेरी, पखावज, मुरली, वीणा आदि।

'रास नृत्य' का भी वर्णन किया है, जिसके अन्तर्गत तांडव और लाक्ष्य नृत्य का मनोरम चित्रण मिलता है। 'सूरसागर' में 87 राग-रागनियों का प्रयोग मिलता है, उन्होंने सम्राट अकबर को अपना एक भजन ''मना रे फरिमाधो सौ प्रीत'' सुना कर 'सूरदास जी' ने अपने संगीत ज्ञान से चकित कर दिया था। ऐसा लगता है कि 'सूरदास' जी जन्म जात संगीत को सुर और ताल के मर्मज्ञ थे, जिन्होंने अपने काव्य में 'छहों रागों, छत्तीस रागिनी, इकइक नीको गावरी' कहकर अपने संगीत विषयक ज्ञान को प्रदर्शित किया। शान्त, श्रृंगार, वात्सल्य, करूण, भक्त, वीर आदि रसों से उन्होंने अपने पदों की रचना की।

महाकवि सूर ने 'होरी' को भी एक राग विशेष माना है।

3. मीराबाई

मीराबाई का जन्म सन् 1500 ई. में माना जाता है। यह रत्नसिंह की इकलौती पुत्री थी। उदयपुर के महाराणा सांगा के प्रथम पुत्र भौजराज के साथ इनका विवाह हुआ। भोजराज की मृत्यु के बाद से मीरा पूर्णतया अपने प्राणप्रियतम गिरधर गोपाल की होकर कृष्ण भक्ति में समर्पित हो गई जो अपने आराध्य की भक्ति में लोक मर्यादा को छोड़कर वृन्दावन आ गई और अपने मधुर भक्तिमय संगीत से अपने प्यारे प्राण बल्लभ को रिझाने लगी। आप मध्यकाल की अमर स्त्री गयिका थीं। आप स्वंय गीत लिखतीं और उसे राग, लय, ताल में बद्ध करके गातीं थीं। आपके द्वारा आविष्कृत मीरा की मलारा एक प्रसिद्ध राग है। आप गायन, वादन, नृत्य तीनों में पारंगत थीं। साज, करताल एक तारी इत्यादि वाद्य यंत्र नृत्य के समय गायन, इनका संगम मीराबाई की है साधना में प्राप्त होता है। मीरा अपने गिरधर गोपाल की दीवानी, प्रेम-भक्त थी, उनके पदों में विरह एवं संयोग प्रेम दोनों का सुन्दर समन्वय हैं। मीरा के गीतों में कम से कम नब्बे राग-रागिनयों का प्रयोग मिलता है। राजस्थानी, ब्रज तथा गुजराती इन तीनों भाषाओं में मीरा ने पद रचे। मीरा ने गरवा गीत की प्रथा डाली जो आज भी गुजरात में लोकप्रिय है।

4. तुलसीदास

तुलसीदास जितने सफल भक्त कवि थे, उतने ही सफल संगीतज्ञ भी। अकबर के काल में उन्होंने जनसाधारण को एक नवीन दृष्टि दी। तुलसीदास कृत रामचरित मानस पूर्णतया संगीतमय है।

अकबर के काल में इस महान कवि ने जितना संगीत का प्रचार प्रसार किया, उतना शायद तानसेन भी नहीं कर पाये होंगे। क्योंकि इनकी दृष्टि में संगीत और काव्य का रूप एक ही था। अकबर के दरबार में अनेक संगीतज्ञों के होने के उपरान्त भी भारतीय संगीत की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि उतनी उत्कृष्ट न हो सकी थी जितनी कि महान कवि की

कृतियों से हुई। आज तुलसीदास जी की रामायण अनेक देशों की भाषाओं में अनुवादित हो चुकी है।

तुलसीदास जी पर शास्त्रीय संगीत का भी प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपनी गीति कृतियों में इक्कीस राग-रागिनियों का समावेश किया है। 'कृष्ण गीतावली' में ये दस राग हैं। आसावरी, कान्हड़ा, केदार, गौरी, धनाश्री नट, विलावल, मल्हार, ललित तथा सौरठ 'गीतावली' में इक्कीस रागों की चर्चा की गई है।

5. कृष्णदास

इनका जन्म संवत् 1553 में गुजरात के चिलीतरा नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता गाँव के मुखिया थे। कृष्णदास काव्य एवं संगीत के ज्ञाता होने के साथ-साथ उत्तम गायक भी थे। अतः इन्हें श्रीनाथ जी की भेंट को एकत्रित करने का काम सौंपा गया। बाद में इनको मन्दिर का अधिकारी बना दिया गया और इनकों भी 'अष्टसखा' में सम्मिलित कर लिया गया। कृष्णदास प्रायः सूरदास के मुकाबले के ही पदों की रचना करते थे, इसी कारण से उनकी रचना में कहीं-कहीं सूरदास के भावों की छाया भी दिखाई देती है।

6. कुम्भनदास

इनका जन्म संवत् 1515 की कार्तिक कृष्ण एकादशी को गोवर्धन के समीप जमुनावती गाँव में हुआ था। यह जाति के क्षत्रिय थे। बचपन से ही भगवान के सामने पद गाया करते थे। जब बल्लभाचार्य अपनी यात्रा में ब्रज, में आये थे तो इनको भी अपना शिष्य बना लिया था और श्रीनाथ जी का एक छोटा सा मन्दिर बनवाकर इन्हें इनकी सेवा में रख दिया। एक बार जब ये जतीपुरा में श्रीनाथ जी के मन्दिर के सामने पद गायन कर रहे थे तो अकबर बादशाह ने सुन लिया और उससे प्रभावित होकर मिलने की इच्छा व्यक्त की। साथ ही इन्हें बुलाने के लिए फतेहपुर सीकरी से सैनिकों को पालकी सहित इनकी सेवा में भेजा। आप दुःखी मन से राजा की आज्ञा पालन करने के लिए उनके साथ चल दिये परन्तु पालकी पर न चढ़कर पैदल ही गए। अकबर ने इनका बड़ा सत्कार किया और कोई नया पद सुनाने को कहा। इधर कुम्भनदास को श्रीनाथ जी की सेवा से वंचित रहने का बड़ा दुःख था। अतः बिना बादशाह की अप्रसन्नता की चिन्ता किए हुए भक्तन को कहा सीकरी सौं काम आवत जात पन्हैयाँ (जतियाँ) टूटी, बिरूर गयौ 'हरिनाम' गाया। अकबर इनकी पीड़ा को समझ गया और इन्हें वापिस ब्रज में पहुँचवा दिया। लगभग 115 वर्ष की आयु में संवत् 1640 के आस-पास इन्होंने शरीर छोड़ दिया।

7. गोस्वामी विट्ठल नाथ

गोस्वामी विट्ठल नाथ के पिता का नाम महाप्रभु बल्लभचार्य था। विट्ठल नाथ जी ने ब्रज में 'अष्टछाप' की स्थापना की। इन्होंने संगीत के माध्यम से कीर्तन सेवा के विद्वानों की एक मण्डली का निर्माण किया। जब बल्लभाचार्य अपने भ्रमण काल में ब्रज में आये थे तो यहाँ सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्ददास और कृष्णदास नामक संगीतज्ञ पहले ही उपस्थित थे। इधर विट्ठल नाथ जी के भी गोविन्द स्वामी, छीत स्वामी, चतुर्भुजदास और नन्ददास चार शिष्य 'श्रीनाथ जी' की सेवा में और रहते थे। इन आठों साहित्य एवं संगीतकारों को मिलाकर एक मण्डली 'अष्टसखा' या 'अष्टछाप' के नाम से बनाई गई।

8. गोविन्द स्वामी

इनका जन्म संवत् 1592 के लगभग भरतपुर राज्य के अतरो नामक ग्राम में हुआ था। वे सनाढ्य ब्राह्मण थे। कुछ काल गृहस्थाश्रम में रहकर गृहस्थ छोड़कर ब्रज में चले आये। यहाँ महावन में ऊँचे टीलों पर रहने लगे और ध्यानमग्न होकर संगीत साधना करने लगे। ये भारी गवैये और कवि थे। आप पास के लोग इनके पास आकर कीर्तन में भाग लेने लगे। इधर गोस्वामी विट्ठलदास संगीत प्रेमियों से प्रसन्न होकर और भगवत प्रसाद देकर उन्हें उत्साहित करते थे। इसीलिये एक दिन गोविंद स्वामी भी उनके पास गोकुल में पहुँचे और अपना संकीर्तन भाव उनकी सेवा में अर्पित किया। वे भी विट्ठलनाथ को देखकर इतने प्रभावित हुये कि वहीं उनके शिष्य बन गये। कहा जाता है कि अकबर ने भी एक साधारण व्यक्ति की भाँति सादा वेश में गोकुल में यशोदा घाट पर जाकर, गोविंद स्वामी की भैरवी सुनी थी।

इस पर विट्ठलनाथ जी ने कहा कि संगीतज्ञ में भक्ति, कवित्व रचना का कौशल और संगीत का ज्ञान होना आवश्यक है।

विट्ठलनाथ जी की मृत्यु का समाचार सुनते ही गोवर्धन की एक गुफा में संवत् 1642 में इन्होंने भी शरीर त्याग दिया।

9. परमानन्द दास

इनका जन्म संवत् 1550 मार्ग-शीर्ष शुक्ल पक्ष की सप्तमी सोमवार को कन्नौज में हुआ था। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। वे 26 वर्ष की आयु तक कन्नौज में रहे और संवत् 1576 में लगभग प्रयाग चले गये। वहाँ भजन कीर्त्तन के कारण इनकी अच्छी प्रसिद्धि हो गई। एक बार बल्लभाचार्य जी का मुकाम अड़ैल गाँव में पड़ा। ये भी बल्लभाचार्य जी के दर्शन के लिये गये और ऐसा प्रभाव पड़ा कि ये उनके शिष्य हो गए और उन्हीं के साथ गोकुल (ब्रज) में चले आये। फिर कुछ दिन बाद गौवर्धन पहुँचे और श्रीनाथ जी की कीर्त्तन सेवा करने लगे। बल्लभाचार्य ने इन्हें साहित्य और संगीत के ज्ञाता तथा सुकवि गायक के रूप में पाकर 'अष्टसखा' में सम्मिलित कर लिया। संवत् 1614 में भाद्रपद कृष्ण नवमी के दिन अपने निवास स्थान सुरभि कुण्ड पर इन्होंने संसार छोड़ दिया।

10. छीत स्वामी

इनका जन्म मथुरा में संवत् 1572 के आस-पास हुआ था। ये चतुर्वेदी ब्राह्मण थे और अकबर के नवरत्न बीरवल के पुरोहित थे। बचपन में ये बड़े शैतान थे। लोग इन्हें 'छीतू चौबे' के नाम से जानते थे। जब ये लगभग बीस वर्ष के थे तब गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के आलौकिक व्यक्तिव की चर्चा सब ओर फैली हुई थी। एक बार इन्होंने भी उनके दर्शन करने की इच्छा की, तुरन्त विट्ठलनाथ के शिष्य हो गये। फिर तो ये स्थाई रूप से गोवर्धन में रहने लगे। ये न केवल अच्छे साहित्यकार थे वरन् एक उत्तम संगीतज्ञ भी थे। विट्ठलनाथ जी ने इन्हें 'अष्टछाप' में उचित स्थान दिया। संवत् 1642 के लगभग इनका देहावसान हो गया।

11. नन्दरास

इनका जन्म सोरों के पास रामपुर गाँव में संवत् 1590 के आस-पास हुआ था। इनके पिता का नाम जीवाराम था। और ये गोस्वामी तुलसीदास के चचेरे भाई थे। तुलसीदास इनसे बड़े थे। दोनों ने सोरों में रहकर नरसिंह देव से संस्कृत की शिक्षा ली और दोनों राम भक्त थे। प्रारम्भ में तुलसीदास के साथ काशी में रहते थे। कुछ दिन बाद ये द्वारकापुरी की यात्रा को निकले और लौटकर सिंहनाद गाँव में पहुँचे। विट्ठलनाथ जी ने इन्हें कीर्तन-मण्डल में सम्मिलित कर लिया। ये संगीतज्ञ होने के साथ-साथ साहित्यिक व्यक्ति भी थे। इनके ग्रन्थ 'भ्रमर गीत' और 'रास पंचाध्यायी' अधिक प्रसिद्ध हैं।

12. चतुर्भुज दास

इनका जन्म संवत् 1587 के आस-पास गोवर्धन के पास जमुनावती नामक गाँव में हुआ था। ये कुम्भनदास के पुत्र थे और 'अष्टछाप' के सबसे वयोवृद्ध व्यक्ति थे। संगीत प्रेमी थे। 'दानलीला', 'कीर्तनावली' और 'पद संग्रह' में इनके पदों का संग्रह है। अष्टछाप की स्थापना के समय इन्हें भी उसमें शामिल कर लिया गया। संवत् 1642 में ही इनका भी शरीर पूरा हो गया।

सन्दर्भ सूची

1. जोशी उमेश-भारतीय संगीत का इतिहास
2. शर्मा श्रीभगवत शरण-भारतीय संगीत का इतिहास
3. शर्मा स्वतन्त्र-भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण
4. महाराज बच्चू भारतीय संगीत सेवा पद्धति मथुरा
5. चतुर्वेदी परशुराम-उत्तर भारत सन्त परम्परा का इतिहास
6. मुरारी कृष्ण उत्तरी भारत में मुस्लिम समाज
7. गर्ग लक्ष्मी नारायण संगीत विशारद

कृष्ण भक्ति संगीत में गौड़ीया संकीर्तन का स्वरूप

डॉ. सतनाम सिंह

भारतीय संगीत के उद्गम एवं विकास में 'भक्ति' एक अविरल स्त्रोत शक्ति है एवं यही वह केन्द्र बिन्दु है जिससे संगीत की राग-रागिनियों तालों व ध्रुपद-धमार आदि विभिन्न गेय विधाओं में उनका कलात्मक पक्ष सजीव एवं सारगर्भित रूप में उभरा है। मध्यकाल में भक्ति संगीत अत्यन्त तीव्र गति से विकसित एवं विस्तरित हुआ क्योंकि इस समय भक्ति संगीत का आधार शास्त्रीय संगीत था। ध्रुपद को भक्ति संगीत की धारा का एक प्रमुख स्रोत कहा जा सकता है। मध्यकालीन वैष्णव सम्प्रदायों में कृष्ण का गुणगान ध्रुपद-धमार आदि गेय विधाओं पर आधारित स्वर लहरियों में किया जाता था। ब्रज के कृष्ण मंदिरों में तो स्तुति अथवा भगवदाराधना अधिकांशतः शास्त्रीय संगीत के माध्यम से ही की जाती रही है। मध्यकालीन वैष्णव सम्प्रदायों में गौड़ीया सम्प्रदाय को श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। गौड़ीया सम्प्रदाय के भक्ति कवियों ने अपनी भावनाओं को गेय पदों में रूपायित कर अपनी वाणी को उपास्य के प्रति संगीतमय बनाकर समर्पित किया। सर्वप्रथम हम गौड़ीया सम्प्रदाय की एतिहासिक पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करेंगे।

गौड़ीया सम्प्रदाय का संक्षिप्त परिचय :-

गौड़ीया सम्प्रदाय, वैष्णव सम्प्रदायों की एक प्रमुख शाखा है। जिसमें भगवान श्री कृष्ण को ही सर्वोपरि परम ब्रहम मानकर उनकी उपासना की जाती है। इस संदर्भ में 'ब्रह्म संहिता' में उल्लेख मिलता है कि ब्रह्म सम्प्रदाय भगवान ब्रह्मा से प्रारम्भ हुई, उसके अनुसार भगवान विष्णु ही सर्वोत्तम देव है। इस सम्प्रदाय में आगे चलकर नारद जी और उनके शिष्य श्री व्यास जी हुए। यहां वर्णन योग्य है कि श्री व्यास जी ने ही 'महाभारत' और श्रीमद्भागवत' महापुराण की रचना की, जो कि वैष्णव सम्प्रदाय के सबसे प्रमुख ग्रन्थ है। इस सम्प्रदाय में आगे चलकर श्रीमाध्व मुनि जी आये जिन्होंने इस सम्प्रदाय के विकास मे बहुमूल्य योगदान दिया। इसीलिए इसे माध्व सम्प्रदाय भी कहा जाने लगा। माध्व मुनि के बाद इस सम्प्रदाय में श्री माधविंदर और ईश्वर पुरी जी हुए। परन्तु इस सम्प्रदाय को सबसे अधिक प्रभावित मध्यकाल में हुए आचार्य चैतन्य महाप्रभु ने किया। गौड़ीया सम्प्रदाय का आरम्भ भी वैदिक काल से ही माना जाता है। परंतु इसकी प्रतिष्ठित विकसित रूपरेखा मध्य युगीन भक्ति आंदोलन के समय उदय हुई। इसलिए गौड़ीया सम्प्रदाय के प्रर्वतक चैतन्य महाप्रभु माने जाते हैं और इस सम्प्रदाय को 'चैतन्य संप्रदाय' भी कहा जाने लगा। चैतन्य मत का जन्म एवं प्रचार यद्यपि गौड़ देश में हुआ तथापि इसका शास्त्रीय रूप वृदांवन में निवास करने वाले गौड़ीय गोस्वामियों द्वारा निर्मित हुआ था। अन्य समकालीन प्रचलित सम्प्रदाओं में अपनी विशिष्ट शैली तथा विलक्षण रूप रेखा के कारण यह संप्रदाय राधा कृष्ण की शुद्ध भक्ति का एक सांकेतिक संप्रदाय बन गया। इस संप्रदाय में भक्ति के विभिन्न रूप एवं साधन बताए गए है परंतु इन सब में उत्तम संकीर्तन ही माना गया। यद्यपि समय के साथ इस संप्रदाय की कुछ अन्य शाखाएं भी विकसित हुई परंतु उन सबकी पद्धतियों एवं सिद्धांतों का मूल

संगीताचार्य, रा.आ. उच्च विद्यालय, सैक्टर 25, चण्डीगढ़

राधा कृष्ण की शुद्ध भक्ति एवं उनकी प्राप्ति की यत्नशीलता है।

गौड़ीया सम्प्रदाय का भक्ति साहित्य :-

गौड़ीया सम्प्रदाय का साहित्य के क्षेत्र में भी अमूल्य योगदान है। इसके भक्त कवियों एवं आचार्यों ने कृष्ण भक्ति को मूल मानकर कई ग्रंथों एवं पदों की रचना की है। इस संप्रदाय के साहित्य में छः गोस्वामियों की रचनाओं का मुख्य प्रचलन है। जिसका सक्षिप्त वर्णन निम्नानुसार है:-

क) सनातन गोस्वामी-सनातन गोस्वामी का जन्म 1546 में बंग देश में हुआ। इनके पिता का नाम कुमार देव था। सनातन गोस्वामी मुसलमान शासक हुसैन शाह के राज कर्मचारी थे तथा बाद में चैतन्य महाप्रभु की धारणाओं से प्रभावित होकर वृंदावन में निवास करने लगे। वे परम भक्त एवं महान विद्वान थे। उन्होंने संस्कृत भाषा में कई महत्वपूर्ण रचनाएं की जो कि गौड़ीया भक्ति साहित्य की अमूल्य निधियां हैं। उनकी मुख्य रचनाएं हरि भक्ति विलास, ब्रह्म भागवतामृत, वैष्णव तोषिणी एवं श्री कृष्ण लीलास्तव हैं। उनके द्वारा रचित पदों में लयबद्ध संगीत की झलक स्पष्ट देखने को मिलती है जिसका कथात्मक कीर्तन आज भी गौड़ीय मठों में किया जाता हैं ।

ख) रूप गोस्वामी- ये सनातन गोस्वामी के छोटे भाई थे जिनका जन्म 1547 के लगभग हुआ था। रूप गोस्वामी जी परम भक्त एवं विद्वान थे, जिन्होंने कृष्ण उपासना की रस रीति को भावुक भक्तों के लिए सुलभ कर दिया। वे भक्ति तत्व एवं रस शास्त्र के महान पंडित थे। चैतन्य महाप्रभु की भक्ति सें प्रभावित होकर उन्होंने वैष्णव भक्ति की कल्पनाओं को रस विवेचन से प्रयुक्त किया है। उनकी मुख्य रचनाएं विदग्ध माध्व नाटक, ललित माध्व नाटक, भक्ति रसामृत सिंधु, उज्जवल नीलमणि एवं लघु भावनामृत नाटक चंद्रिका हैं।

ग) गोपाल भट्ट गोस्वामी- इनका जन्म दक्षिण की कावेरी नदी के तटवर्ती श्रीरंगम् के निकट बेलमंडी ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम वैडट भट्ट था। गोपाल भट्ट के पास द्वादश शालिग्राम शिलाएं थी जो उन्हे यात्रा के दौरान मिली थी तथा इन्हीं शिलाओं में भगवान श्री कृष्ण की मूर्ति प्रकट हुई जिसे राधा रमण लाल जी कहा जाता है। जिनका मंदिर श्री वृंदावन धाम में है तथा गोपाल भटट जी के अनुयायों से ही गौडीय सम्प्रदाय की राधा रमणीय शाखा का जन्म हुआ।

गोपाल भट्ट जी वैष्णव ग्रंथों के ज्ञाता, परम विद्वान तथा विरक्त भक्त थे। उनकी प्रमुख रचना हरि भक्ति विलास है। यह वैष्णव स्मृति ग्रंथ सनातन गोस्वामी द्वारा रचित है परन्तु इसका विस्तार गोपाल भट्ट ने किया था। संस्कृत रचनाओं के अतिरिक्त उन्होंने संभवत ब्रज भाषा में भी कुछ पद्य रचे थे। उनके नाम से ब्रज भाषा के तीन पद, 'पद कल्पद्रुम' में मिलते हैं ।

घ) रघुनाथदास गोस्वामी- गौड़ीया भक्तों में वे 'दास गोस्वामी' के नाम से प्रसिद्ध है। वे सप्तग्राम के एक धनी जमींदार के एक मात्र पुत्र थे तथा वैराग्य, विरह तथा संयम के मूर्तिमान स्वरूप थे। उनके द्वारा रचित तीन ग्रंथ रत्नावली, मुक्ताचरित एवं दान केलि चिंता मणि है ।

ड.) रघुनाथ भट गोस्वामी- वे चैतन्य महाप्रभु के प्रसिद्ध भक्त तपन मिश्र के पुत्र थे तथा उच्च कोटि के विद्वान एवं संगीत गायन कला में निपुण थे । कृष्ण दास कविराज ने चैतन्य चरितामृत में रघुनाथ भट्ट जी की कथा शैली के संबंध में लिखा है कि वे कोकिल जैसे कंठ से विभिन्न रागों में भागवत के श्लोकों का गायन करते थे। वे तीन चार रागों में फेर बदल कर एक एक श्लोक का पाठ किया करते थे।

च) जीव गोस्वामी- ये सनातन रूप के छोटे भाई अनुपम के एक मात्र पुत्र थे। जीव गोस्वामी चैतन्य मत के महान विद्वान तथा विख्यातसंत हुए है। उनके ग्रंथों में उनकी स्वतंत्र रचनाओं के अतिरिक्त रूप सनातन के ग्रंथों की विद्वतापूर्ण टीकाएं भी है। उनकी रचनाएं, राष्ट्र संदर्भ, सर्व सवादिनी क्रम संदर्भ दुर्गम संगमनी, लोचन रोचनी माधव महोत्सव एवं गोपाल चंपू है।

गौड़ीया संप्रदाय के संकीर्तन का स्वरूप :-

गौड़ीया संप्रदाय की भक्ति का मूल संकीर्तन है। इसलिए गौड़ीया संकीर्तन की सभी शैलियों एवं उत्सवों में संगीतात्मक कीर्तन मूल रूप से प्रयुक्त होता है तथा संगीत का स्वरूप संप्रदाय के पद्यों, कविताओं एवं विभिन्न सेवाओं में लयवद्ध रूप में प्रदर्शित होता है। गौड़ीया संप्रदाय में श्री राधा कृष्ण को रस स्वरूप भी कहा जाता है तथा भक्ति संगीत में रस का समावेश निम्न कीर्तन शैलीयों एवं अष्टयाम लीलाओं में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

क) पदावली कीर्तन-"गौड़ीया संप्रदाय में चैतन्य से पूर्व पदावली रचयिताओं में जयदेव तथा विद्यापति आदि के नाम महत्वपूर्ण है। विद्यापति चंडीदास तथा जयदेव के गीत गोविंद को चैतन्य महाप्रभु ने शास्त्र की मर्यादा प्रदान की थी। इसी गीत गोविंद की पद्यावली को गायन करने से पदावली कीर्तन का जन्म हुआ। पदावली के लगभग सभी पद विभिन्न रागों तथा तालों में बद्ध है। चैतन्य के पश्चात श्री नरोत्तम ठाकुर, श्री निवास तथाा श्री श्यामानंद ने संप्रदाय का नेतृत्व किया तथा बंगाल में कीर्तन की तीन धाराएं प्रवाहित की जिन्हें गौडानहारी, श्री मनोहर शाही तथा रानी हाटी के नाम से जाना जाता है। वैष्णव पदावली के मुख्य तीन विषय कृष्ण लीला, प्रार्थना तथा चैतन्य लीला है। पदावली कीर्तन कभी भी एकल नहीं होता। साधरणतया : इसमें तीन गायक होते हैं।

ख) अष्टयाम कीर्तन- अष्टयाम कीर्तन के अंतर्गत श्री राध कृष्ण की आठ पहर की लीला को स्मरण करते हुए उनकी सेवा एवं कीर्तन किया जाता है। इसे नित्य लीला भी कहा जाता है। नित्य लीला में दिन भर के क्रियाकलापों के प्रतीक के रूप में आठ झांकियां रखी गई है। जिनमें दैनिक क्रियाओं में गायन के लिए समय के अनुसार रागों का चयन किया जाता है।

- प्रातः कालीन मंगला में ललित तथा विभास
- श्रृंगार में राम कली व विलावल
- ग्वाल में बिलावल व आसावरी
- राज भोग के समय आसावरी व सारंग
- उत्थान में धनाश्री व भीम पलासी
- संध्या भोग में गौरी
- संध्या आसी में पूर्वी व श्री
- शयन के समय यमन, बिहाग, मालव तथा केदार इत्यादि रागों को गायन कर इष्ट को रिझाया जाता है।

ग) वार्षिक उत्सव कीर्तन- कृष्ण भक्ति को ब्रजोपासना भी कहा जाता है। ब्रज में उत्सवों का प्रमुख स्थान है। ब्रज में हर उत्सव को उत्साह के साथ मनाया जाता है तथा हर उत्सव में समाज गायन होता है। जिसमें उत्सव संबंधी पद्यों एवं गीतों को विभिन्न रागों से भिन्न वाद्यों द्वारा गाया जाता है। गौड़ीया संप्रदाय में विभिन्न उत्सवों पर विभिन्न लीला, रूप एवं प्रेम गान होता है। गौड़ीया संप्रदाय की विभिन्न शाखाओं में यहां मठ तथा ईस्कान में लीला एवं पद्यात्मक कीर्तन ही किया जाता है। वहीं राधा रमणीय गौड़ीया मंदिरों में विभिन्न तालों एवं वाद्यों द्वारा हवेली संगीत का भी आश्रय लिया जाता है। जैसे होली समाज में ब्रज लोक गीतों को डफ बजाकर संगीतात्मक ढंग से गाया जाता है। वही झूलन उत्सवों पर भी ढोलक, मंजीरों एवं मृंदग के साथ आधुनिक वाद्यों का प्रयोग भी देखने को मिलता है। इस गौड़ीया संप्रदाय में होने वाले वार्षिक उत्सव एवं उसमें प्रयोगरत राग निम्नलिखित है-

- रथ यात्रा आषाढ़-शुक्लपक्ष-सभी झांकियों में राग मल्हार प्रस्तुत किया जाता है।
- श्रावण कृष्ण एकम में हिंडोला प्रारंभ होता है। जिसमें मल्हार गाया जाता है।
- श्री कृष्ण जन्माष्टमी पर ललित को छोड़कर सभी राग गाए जाते हैं।
- बंसत पंचमी एवं फालगुन अमावस तक सभी झांकियों में बसंत राग गाया जाता है।
- अक्षय तृतीया से राज भोग में सारंग व संध्या आरती में हमीर राग विशेष रूप से प्रयुक्त होता है।

वर्तमान स्वरूप :-

वर्तमान समय में भी गौड़ीया संप्रदाय अपनी पौराणिक धारणाओं के अनुरुप शुद्ध सात्विक कृष्ण भक्ति की धारा में अविरल बह रहा है। सम्प्रदाय का परम्परागत संकीर्तन पीढ़ी दर पीढ़ी प्रचलित एवं अपने उद्देश्य

के प्रति यत्नशील है तथा सम्प्रदाय के भक्तों को भक्तिमयी नाम कीर्तन द्वारा प्रभु की अभिव्यक्ति करवाने में सक्षम है। वर्तमान समय में चैतन्य गौड़ीया संप्रदाय की चार अन्य उपशाखाएं चैतन्य गौड़ीया मठ, इस्कान, केशव गौड़ीया मठ, राधा रमणीय भी प्रचलित है। जिनका ध्येय एवं मूल एक ही है। इसी सम्प्रदाय की शाखा इस्कान ने कृष्ण भक्ति को भारत तक सीमित ना रख कर अमेरिका, रूस एवं अन्य देशों में भी प्रचारित किया, इस अंतराष्ट्रीय संस्था ने विश्व के हर कोने में इस्कान मंदिरों का निर्माण कर कृष्ण भक्ति का एक किरतीमान स्थापित किया है।

वर्तमान समय में कृष्ण भक्ति संगीत में गौड़ीया सम्प्रदाय के अनेक संगीतज्ञ विद्यमान है जिनके माध्यम से देवालय संगीत की प्राचीन परम्पराओं एवं रचनाओं के क्रियात्मक स्वरूप का संरक्षण हो रहा है और स्पष्ट होता है कि कृष्ण भक्तिसंगीत में गौड़ीया भक्त कवियों ने अपने गायन, वादन एवं नृत्य तीनों के सफल संयोग द्वारा संगीत की परिभाषा को सार्थक कर दिया है।

संदर्भ सूची :-

1. गुप्ता उषा, 'कृष्ण भक्तिकालीन साहित्य में संगीत', पृ. 4, 121
2. सक्सेना राकेशबाला, 'मध्ययुगीन वैष्णव सम्प्रदायों में संगीत', पृ. 11, 254
3. शास्त्री गिरधारी लाल, 'हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि', पृ. 1, 1.
4. ठाकुर वृंदावनदास, 'श्रीचैतन्य भागवत', पृ. 1,
5. चाचावृंदावनदास, 'श्रीअष्टयाम एवं श्रीहितरहस्य प्रबोध', पृ. 11

संगीत और रस

डॉ. बाबूलाल सिंह

भारतीय संगीत में रस-राग प्रधान है। शास्त्रीय संगीत के प्राचीन ग्रंथों में प्रत्येक राग का अपना एक स्वरूप होता है साहित्य शास्त्रियों ने रस को नौ- श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, अदभुत, वीर, भयानक, विभत्स और शांत ही रस बताये हैं। इन रसों के पीछे क्रमशः प्रेम (रति) हास्य शोक, क्रोध, उत्साह, भय, घृणा, (जुगुत्सा) विस्मय, निर्वेद, (वैराग्य) के नौ स्थाई भाव हैं। इनके सहायक रूप में तैतीस संचारी भाव माने जाते हैं-उदासीनता आवेश, दीनता, श्रम, भय, मोह, शंका, चिंता, जड़ता, व्याधि, आलस्य, विषाद्, ग्लानि, आकर्ष, मति, गर्व असूया, हर्ष, चपलता, लज्जा, अवहित्थ, स्वप्न, निद्रा, उन्माद, अपस्माद, विवोध, उत्सुक्ता, त्रास, वितर्क, और मांसिक अवस्थाएँ मरण हो सकती हैं।

कोई गायक या वादक कलाकार एक करूण रस का राग गा वजा रहा है, तो सहृदय श्रोतागण में करूण रस का संचार हो जाता है, कुछ भावुक श्रोता रोने लग जाते हैं, यह रूदन मूल में आनन्दात्मक ही है। श्रोता दर्शक को दुःख की अनुभूति होती है, तो वे संगीत सुनते ही नहीं? उठकर चल देते हैं, संगीत के इतिहास में मध्य-युग में जिसे स्वर्ण युग भी कहा गया है, अनेक रागों में जैसे दीपक राग में दीपक प्रज्वलित होने का, मल्हार राग में बादलों का, विहाग में विरही नयिका का, हिंडोल में झूले का, काफी, पीलू आदि में होरी खेलने में तन्मय राधा कृष्ण का, जैजैवन्ती में प्रार्थी नायक का, बहार राग में प्रेमोन्मत्त नायक नयिकाओं का, ललित राग में वीणा पाणि सरस्वती का शास्त्रकारों ने निश्चित किये है।

संगीत में "रस" लोकोत्तर चमत्कार प्राण है। रस न प्रत्यक्ष अनुभव है न परोक्षः न कार्य है, ना ज्ञाप्य है न सवि कल्पनक अर्थात ऐसा ज्ञान जिस में ज्ञाता की चेतना विद्यमान रहती है, और न निविकल्पक अर्थात ऐसा ज्ञान है, जिसके ज्ञाता की चेतना विलीन हो जाती है। रस ब्रह्म सहोदर है, ब्रह्म, स्वाद के समान है, इन्द्रियों का विषय न हो कर चैतन्य आत्मा का विषय है। संगीत में सातों स्वर जिन्हें क्रमशः- सा रे ग म प ध नि सां कहा जाता है संगीत में रसात्मकता के श्रोत हैं, स्वरों के विभिन्न सन्निवेशों द्वारा राग रचना होती है, और यही भारतीय संगीत के अनूठेपन की पहचान है। भारतीय संगीत के पुस्तकों में रागों का समय रस आदि के वारे में भी निर्देश मिलते हैं। राग दरवारी कान्हड़ा को गम्भीर होना चाहिए, पीलू खमाज, को क्षुद्र अथवा छोटी प्रकृति कहकर भैरवी, जौनपुरी, आदि को प्रातः काल और पूरिया राग यमन आदि को सांय काल गाना वजाना चाहिए, ऐसा पुस्तकों में लिखा मिलता है, संगीत में गायन, वादन, नृत्य, नाट्य शास्त्र में अत्यधिक महत्व है, नाटक की आत्मा "रस" ही माना जाता है, और उसकी ही साधना में समस्त नाटकीय कला और घटना चक्र को साधन के रूप में स्वीकृत किया गया है, संगीत में रस-बोध या रसानुभूति ही नाट्य का अंतिम लक्ष्य है, नाट्य शब्द का प्रधान अर्थ ही रस है। चतुर्विद्य अभिनय द्वारा मनुष्य जीवन के अनुकरण से रस बोध कराके मनुष्य को ऊँचा उठाना, यही नाट्य का मूल उद्धेश्य है, नाट्य के संदर्भ में जो रस निरूपण हुआ उसी को सभी कलाओं के संदर्भ में भी मान लिया गया अन्य कलाओं के लिए

संगीत विभाग, शासकीय इन्दिरा गाँधी कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शहडोल (मध्य प्रदेश)

हमारे यहॉ अलग-अलग रस शास्त्र नहीं बने, क्योंकि जैसा नाट्य शास्त्र में भरत मुनि ने कहा है। आनंद की उपलब्धि मानव जीवन का लक्ष्य है। सौन्दर्य की साधना से आनंद की सिद्धि होती है, और कला सौन्दर्य की साधना तो है ही।

(सौन्दर्य जब सिद्ध होता है तब रस बन जाता है) अतः स्पष्ट है कि रस आनंद का पर्यायवाची है। कला की साधना से रस को प्राप्त करना ब्रह्मनंद को प्राप्त करना है, और इसीलिए ब्रह्म और रस को आचार्यों ने अभिन्न कहा है, 'रस वै सः'।

जिस प्रकार आज कत्थक नृत्य में राधा कृष्ण के प्रेमाभिनय के अतिरिक्त कुछ नहीं रहा है। बहुत से ख्यालों में भी श्रृंगारिकता है, उसी प्रकार भरत ने दृश्य और श्रव्य सिद्धांत की रचना के लिए नाट्य शास्त्र लिखा था। भरत की रस सम्बन्धी सौंदर्य शास्त्रीय उदभावना रस ही जिसकी सिद्धि है। उसमें अनेक चाक्षुश तथा श्रावण तत्वों का योग रहता है। काकु भी इसी प्रकार का सौंदर्य बोधक सांगीतिक तत्व है, जिसके सम्बन्ध में भरत इस प्रकार कहते है, स्वरों के उच्च और दीप्त करने से तथा लय के द्रुत एवं स्वरों के आकर्षण आदि से हास्य, श्रृंगार, करूण, वीर, रौद्र, अदभुत भयानक तथा वीभत्स आदि रसों के सिद्धि सहायता मिलती है, हमारे विनम्र विचार से "रस योजना" ही सौदर्य योजना है जिसके प्रेक्षक तथा श्रोता आदि को "हर्ष" की उपलब्धि होती है, इस प्रकार पाठ्य गान, अभिनय जिसमें नृत्य तथा वेश भूषा आदि को भी सम्मिलित समझना चाहिए। तथा दृश्य विधान, रंग पूजा आदि भी सभी रस के साधक तत्व है, हमारे विचार नाट्य शास्त्र की रस सम्बन्धी दृश्य अतिन्द्रिय आनंद नहीं वरण लौकिक जगत का हर्ष है। क्योकि नाट्य में रस की सिद्धि के लिए पाठ्य, काव्य, गीत, स्वर, मूर्छना, युक्त राग-संवाद (अभिनय) नृत्य अभिनय प्रकार आदि लय तथा ताल अनुकूल वाद्य संगीत की समवेतता आवश्यक है। यही नाट्य रस भरत के नाट्य शास्त्र का प्रतिपाद्य है। भारतीय संगीत का विचार धारा भारतीय सौंदर्य की अवधारणा से स्पष्टतः अलग है जहा पाश्चात्य धारण में। Thing of beauty is lay forever है। वहीं भारतीय सौदर्य परमानंद की वह दिव्य अनुभूति है जिसकी सत्ता में सत्य है किन्तु शिवम् अर्थात कल्याण कारी भी है और इसीलिए सुन्दरम् भी है मानव जीवन का मूल सत्यम् शिवम् सुन्दरम् इन तीन तत्वों पर निर्भर है, संगीत और रस।

"मानव जीवन में संगीत का महत्व"

डा. जितेन्द्र कौर

आज का युग विज्ञान का युग है। परन्तु फिर भी चारो ओर संगीत का ही बोलबाला है। मानव जीवन का ऐसा कोई भी कार्य नहीं है जो कि संगीत के बिना पूर्ण हो सके। जन्म से लेकर मृत्यु के सारे क्रियाकलापों में संगीत विद्यमान है। संगीत की स्वर लहरियां हर कार्य को सम्पूर्ण करने में सहायक सिद्व हुई है भले ही खुशी का मौका हो या दुख का, आज संगीत मानव जीवन का अनिवार्य अंग बन गया है। दिन भर की थकान एवं अकेलापन मिटाने में संगीत का बहुत बड़ा योगदान है। हम अपने जीवन की कल्पना संगीत के बिना कर ही नहीं सकते। हमारे रोम-2 मे संगीत का वास है। मानव मात्र ही नही वरन् समूची सृष्टि और प्रकृति के कण-कण में संगीत विद्यमान है। आज के युग मे संगीत से उपचार किए जा रहे है। इतना ही नहीं पशु-पक्षियो पर भी संगीत के प्रयोग करके उन्हे वश में किया जाता है।

संगीत मानव जीवन की कलात्मक उपलब्धियों और संगीतिक, सांस्कृतिक, परम्पराओं का मूर्तिमान प्रतीक है। यह आदि काल से जन जीवन के आत्मिक उल्लास और सुखानुभूतियों की ललित अभिव्यक्ति का मधुरतम माध्यम रहा है।

विश्व के कण कण में संगीत परमात्मा के अंश की तरह व्याप्त हैं, कहीं पर अव्यक्त, मौन और कहीं पर मुखर। मेघों की मन्द गम्भीर ध्वनि, सागर की उत्ताल तंरगो की गर्जन निर्झरों की कल कल निनाद और वन उपवनों में विहंगो का कलरव यह सब शाश्वत संगीत के ही विविध रूप है। विश्व की विभिन्न मानव जातियों का अनेक धर्म विविधताओं की पूजा अर्चना और भक्ति साधना का माध्यम गायन संकीर्तन ही रहा है। संगीत की यह भावात्मक एकता एक सार्वभौमिक सार्वकालिक आत्मीयता और बन्धुत्व का प्रतीक है। संगीत एक ऐसा विश्व व्याप्त स्नेह सूत्र है, जो हर समय विश्व की प्राकृतिक विविधा और मानवीय असंगति को एक मधुरता और मौलिक एकता की अनुभूति से आबद्व करता है।[1]

संगीत का मानव पर विशेष प्रभाव पड़ता है। संगीत मानव के पीड़ित हृदय को शांति और संतोष प्रदान करता है। संगीत से मानव में सृजन शक्ति और आध्यात्मिक भावना का विकास होता है। ईश्वर ने मानव को संगीत रूपी आशीर्वाद देकर उसकी पीड़ा को कम किया है।

जिस प्रकार अनेक औषधियाँ मानव के रोगो को दूर करके उसके शारीरिक विकास मे सहायता प्रदान करती हैं और योग मानव के शारीरिक और मानसिक विकारों को दूर करता है उसी प्रकार संगीत मानव के शारीरिक मानसिक और आत्मिक विकारों का निराकरण करके उसकी कष्टमय यात्रा को भाव ज्ञान एवं आध्यात्मिक गुणों से युक्त करके ईश्वर की ओर उन्मुख करता है। जहां एक ओर जीवन की जटिल समस्याएं मनुष्य को चिन्तित करती रहती है वहां दूसरी ओर संगीत मनुष्य की सारी चिन्ताओं का निराकरण करता रहता हैं अतः मानव जीवन मे संगीत एक उपयोगी तत्व है।

जन्म से लेकर मृत्यु तक मानव के जीवन में संगीत साथ-2 चलता है। समाज को सुव्यवस्थित

एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत विभाग, खालसा कॉलेज फॉर वुमेन, अमृतसर

एवं सुसंगठित बनाने में संगीत का विशेष योगदान है। मनोगत भावों को सजीव और साकार रूप देकर उसे अत्यन्त आकर्षक और रंजक बनाने का एक मात्र कार्य संगीत का ही है। संगीत मानव हृदय तथा बुद्धि को सन्तुलित रखने मे विशेष योगदान करता है। संगीत कला मानव को दानव बनने से रोकती है। मनुष्य की पाश्विक प्रकृतियों को दूर करने में संगीत कला अत्यन्त सहायक सिद्ध होती है जो व्यक्ति संगीत कला से वंचित होते हैं वे इस जगत में भार स्वरूप है वे मानव नहीं अपितु पशु के समान है।

हमारे पूर्वजो ने शांत और निर्जन वनो में बैठकर अपने मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए अनेक विधाओं का अनुसंधान किया। अथक परिश्रम और गहन चिन्तन के पश्चात् उन्होंने यह निश्चित किया कि भौतिक शक्तियो से आध्यात्मिक शक्ति अधिक श्रेष्ठ है। और इसी से मनुष्य मात्र का कल्याण हो सकता है। मोक्ष पाने का माध्यम योग, तप यज्ञवृत ही है। आज जो सारे विश्व मे भारतीय संगीत की यशोगाथा गूंज रही है, यह हमारे पूर्वजो की तपश्चर्या की ही देन है। प्राचीन काल से संगीत को मोक्ष प्राप्ति के लिए माध्यम बनाया गया है। संगीत कला से मन एकाग्र हो जाता है और मन की एकाग्रता मानव मात्र को ईश्वर के चरणों तक पहुँचा देती है।

सामवेद में भगवान ने संगीत शक्ति के ऐसे रहस्य प्रतिपादित किए हुए है, जिनको ग्रहण करके मनुष्य अपनी आत्मिक शक्तियो को तुच्छ से महान बना सकता है तथा उस विश्वात्मा अथवा परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। यदि मनुष्य को आध्यात्म से जोड़ता है तो सर्वप्रथम उसको संगीत से जोड़ना पड़ेगा। पाईथोगोरस के अनुसार संगीत आत्मा की उन्नति का सर्वश्रेष्ठ साधन है। कविवर रवीन्द्रनाथ के अनुसार स्वर्गीय सौन्दर्य का कोई साकार रूप और सजीव प्रदर्शन है तो उसे संगीत ही होना चाहिए। संगीत में आत्मा शरीर व मन को बलवान बनाने वाले तत्व परिपूर्ण मात्रा में पाए जाते हैं। अतः संगीत के माध्यम से मानव का सम्पूर्ण विकास किया जा सकता है।[2]

आज के मशीनीकरण के युग मे मनुष्य स्वयं भी एक मशीन बन कर रह गया है। वह अपने कार्यो में इतना व्यस्त हो गया है कि स्वयं के लिए ही समय नहीं निकाल पाता। इन सबका परिणाम यह है कि आज का मनुष्य तनाव के घेरे में है। यदि आंकड़ों की बात की जाए तो सौ में से लगभग बीस लोग 'डिप्रैशन' के शिकार हैं और उनका जीवन दवाईयो पर निर्भर हो कर रह गया है। सिर्फ तनाव ही क्यो आज का हर दूसरा व्यक्ति किसी न किसी बीमारी की चपेट में है। इन बीमारियों तथा व्याधियों से मनुष्य को मुक्त करने में आज संगीत बहुत ही अहम भूमिका निभा रहा है। मानव जीवन सदा संगीत से अनुप्राणित होता रहता है। मानव जीवन नाना प्रकार के उत्थान, पतन, हर्ष-विषाद तथा राग-द्वेष आदि द्वदान्त्मक भावों का केन्द्र होता हैं जहां एक ओर जीवन की जटिल समस्याएं मनुष्य को चिन्तित करती रहती है, वहीं दूसरी ओर संगीत मनुष्य की सारी चिन्ताओ का निराकरण करता रहता है।[3]

संगीत के महत्व से हम भली भांति परिचित हैं। प्राचीन काल मे जब वर्षा नहीं होती थी तो किसान इन्द्र देवता को प्रसन्न करने के लिए मिल कर गाते थे नाचते थे क्योंकि संगीत में वह जादू है जो ईश्वर को भी प्रसन्न कर सकता है। माँ की लोरी के संगीत में वह जादू है जो जहां बच्चे को मीठी निद्रा में सुला देता है, वहां उसे दर्द से राहत प्रदान करता है। आज के युग में संगीत की वैज्ञानिकता स्वतः सिद्ध हो चुकी है।

संगीत न केवल शारीरिक रोगो से मुक्ति दिलाने में सहायक सिद्ध हुआ वरन मनुष्य के एकाकीपन को भी दूर करता है। आज का मनुष्य अत्यधिक व्यस्तता के बावजूद एकाकीपन से पीड़ित है। वह औरो के साथ-2 स्वयं से भी कट गया है। उसके जीवन के इस बिखराव को दूर करने मे भी संगीत की भूमिका कम महत्वपूर्ण नही है। संगीत जहां व्यक्ति की दिन भर की थकान को दूर करता हैं वहीं उसका अकेलापन भी दूर कर उसमे एक नई उर्जा का संचार भी करता है। आज की भागदौड़ की जिन्दगी में, विश्व को जीत लेने की होड़ में मनुष्य

जितना अधिक तनावग्रस्त होता जा रहा है उसका सीधा असर उसके हृदय पर पड़ रहा है। इस विषय में हिल लिखते है, वैज्ञानिक उपकरणो तथा पौलिग्राफ आदि के माध्यम से हृदय की विद्युत एवं ध्वनि संकेतो की रिकार्डिंग करने के पश्चात वह इस निष्कर्ष पर पहुचें कि तीस मिनट तक कर्ण प्रिय संगीत तंरगों को सुनते रहने से हृदय गति धीमी पड़ जाती है।[4]

इसमें अलावा फसलों के विकास तथा पशुओं के दूध देने के सामर्थ्य मे बढ़ोतरी करने मे संगीत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।[5] संगीत द्वारा व्यक्ति उच्च प्रेरणा ग्रहण करता है। मध्यकालीन दरबारी गायकों ने अपने साथ ही अपने आश्रयदाताओं का भी नाम उज्ज्वल और अमर बना दिया।

संगीत मानवता का पाठ पढ़ाता है। असभ्य को सभ्यता का और संकीर्ण हृदयी को विश्व बधुत्व का संदेश देता है। संगीत समीर के शीतल झोकें हृदय की कलुषता, विकृत वासनाओं संकीर्णता तथा तामसी एवं आसुरी भावनाओ को समूल उच्छेदन कर आत्मा को निश्चल एवं पवित्र बना देते हैं अतः सच्चे संगीतज्ञ सदैव निर्मल हृदय और सांसारिक प्रपंचो से दूर होते है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि संगीत साहित्य तथा चित्र कला के ही समान सुखद और मंगलकारी कला है तथा प्राणीमात्र के सुख दुख का साथी, जीवन का अमृत वर्षा निझर मोक्ष प्राप्ति तथा आत्मिक मिलन का मधुरतम एवं पावनतम साधन है। संगीत से अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारो पदार्थों की प्राप्ति होती है। मानव जीवन का चरम लक्ष्य है मुक्ति की प्राप्ति। संगीत मोक्ष का सर्वोष्कृष्ट साधन है। वह अन्तःकरण को पवित्र बनाकर अज्ञान के आवरण को भंग कर देता है और तब आत्मज्ञान की प्राप्ति होने से संगीत साधक मुक्त हो जाता है। इस प्रकार संगीत मनुष्य के सर्वांगीण जीवन को स्पर्श करता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. संगीत निबन्ध संग्रह, श्रीवास्तव प्रो हरिश्चन्द्र, संगीत सदम प्रकाशन 88 साउथ 1974, पृष्ठ 116-117
2. संगीत रत्नावली, यमन अशोक कुमार, अभिषेक पब्लिकेशन्स ए सी मो 5789 सेक्टर 17 पी चंडीगढ़ 2008, पृष्ठ 708
3. संगीत निबन्ध माला - पाठक पंडित जगदीश नारायण पाठक, पब्लिकेशन इलाहाबाद 1987, पृष्ठ - 11
4. परिमल समीर पत्रिका आर्यावर्त दैनिक लेख - संगीत से चिकित्सा संभव 29 अप्रैल 1999, पृष्ठ - 7
5. हिन्दुस्तानी संगीत विभिन्न परिप्रेक्ष्य, अलंकार सिंह, गरेशियम बुक्स पटियाला 2009 भूमिका पृष्ठ - 7

बांसुरी का वाद्यो में महत्व व स्थान

*डॉ. पुष्पम नारायण
**डॉ. लीला मणी (दीपक)

बाँसुरी वाद्यों में अति लोक प्रिय वाद्य है जिसमें मधुरता और मिठास होने के कारण यह वाद्य दुनियाँ का महत्वपूर्ण वाद्य माना जाता है। इसकी भूमिका बहुत ही कर्णप्रिय रही है और महत्वपूर्ण रही है। यह अनादि काल व अति प्राचीन काल से महत्वपूर्ण वाद्य रहा है। बाँसुरी प्राचीन काल से लोक संगीत का वाद्य रहा है जिस प्रकार मानव धीरे-धीरे विकास की ओर बढ़ता गया इसमें और सुगमता और सरलता आती रही।

प्राचीन समय में इसे वीणा की तरह मूल आधार स्वर के लिए उपयोग किया जाता था। यह वाद्य वीणा से भी प्राचीन वाद्य रहा है। शँख और वेणु ईश्वर निर्मित वाद्य माने जाते हैं। वेणु वनस्पति से तथा शँख सागर से उत्पन्न वाद्य माना जाता है। जब से लेकर इस ब्रहमाण्ड में सृष्टि की रचना मानी जाती है तभी से लेकर इस वाद्य की भी उत्पत्ति मानी जाती है। जैसे-जैसे मानव सभ्यता विकसित होती गई, उसी प्रकार यह वँशी वाद्य थी, जो अपने मूल रूप से विकसित होता गया- भारतीय मतानुसार यह वाद्य लोक होने के साथ इतना प्रचलित नहीं था। इसका प्रयोग अनादि काल में एक दूसरे की भावनाओं को व्यक्त करने का उत्तम साधन माना जाता रहा है। धीरे-धीरे यह वाद्य प्रगति करता रहा और एक विशिष्ट स्थान पर पहुँच गया।

"भारतीय पौराणिक कथनानुसार जो कहा गया है कि बाँसुरी वाद्य को कृष्ण जन्म काल में अधिक महत्वपूर्ण माना गया। यह वाद्य इससे पूर्व भी विद्यमान था लेकिन महाभारत काल में इसको ज्यादा प्रसिद्धि भगवान श्री कृष्ण जी द्वारा प्रदान की गई। पूर्व में यह वाद्य लुप्त सा हो गया था।" इससे यह भी सिद्ध होता है कि" भगवान श्री कृष्ण के बाद बाँसुरी को ज्यादा प्रचार-प्रसार मिला तथा बाँसुरी वाद्य का स्थान भारतीय संगीत में स्थापित हो गया। काल प्रवाह में बाँसुरी में बाँसुरी वादकों के नाम और वादन शैली लुप्त हो गई होगी और बाँसुरी का स्वरूप संगीत करने का वाद्य अथवा वाद्यवृंद के लिए और पार्श्व का वन गया होगा। बाँसुरी लोक वाद्य होने के कारण भारतीय शास्त्रीय संगीत में 19 वीं शताब्दी में आया। भारतीय शास्त्रीय संगीत में इसे लाने का कार्य किया पं. पन्नालाल घोष जी ने जिन्हें बाँसुरी का युग पुरुष कहा जाता है। इन्होंने इस वाद्य को आधुनिक रूप प्रदान करने में महत्वपूर्ण कार्य किया जिसके फलस्वरूप इस वाद्य को पूरे विश्व में एक अलग पहचान मिली। पं. पन्ना लाल घोष ने बाँसुरी पर अनेक अनुसंधान किए तथा आधुनिक रूप प्रदान किया और बाँसुरी को भारतीय शास्त्रीय संगीत में महत्वपूर्ण स्थान दिलाया। इसके पश्चात् बाँसुरी का अन्य वाद्य में महत्वपूर्ण स्थान बनता चला गया और धीरे-धीरे बाँसुरी ने अपना उच्च स्थान प्राप्त कर लिया। यह वाद्य हर प्रकार से परिपूर्ण होने के साथ-साथ सभी प्रकार की सांगीतिक विधाओं में अपनी भूमिका निभा रहा है। जैसे की भारतीय शास्त्रीय संगीत निपूर्ण लोक संगीत में, चित्रपट संगीत तथा स्वतंत्र वादन में (solo) भी बांसुरी मुख्य रूप से अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। यह एक प्राकृतिक निर्मित वाद्य माना जाता

* विभागाध्यक्ष, विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा, **

है। आज के युग में बाँसुरी हर स्वर अलग अलग बनने के कारण इसमें कई ऐसी चीजें भी सम्भव हो जाती जो दूसरे वाद्यों में सुगम नहीं हो सकती। जैसे की जब कोई बाँसुरी वादक बहुत ऊँचे स्वर में जिसको हम अति तार सप्तक के किसी गाने या बंदिश को बजाते हैं तो उसमें छोटी बाँसुरी अर्थात् तार सप्तक की बाँसुरी को लेकर बजा कर अलग ही आनंदोत्पत्ति होती है या गीत में या चित्रपट संगीत में छोटा सा सांगीतिक टुकड़ा बजाने हेतु अति मंद्र में जाने के लिए बहुत बड़ी बाँसुरी का प्रयोग करते हैं जिसे बेस बाँसुरी (Bass flute) कहा जाता है। इस प्रकार बाँसुरी का स्थान अन्य वाद्यो में बहुत ऊँचा है। और कई पहलुओं में यह अन्य वाद्यों से आगे भी निकल चुका है। यह वाद्य बहुत प्राकृतिक रूप से मिट्टी से जुड़ा हुआ होने की वजह से इसका अलग तरह का सम्मान जनमानस तथा श्रोताओं में है। इससे यह प्रमाणित होता है कि विश्व में अति प्राचीन संगीत वाद्यों में बाँसुरी का स्थान बहुत ही अतुलनीय व अकथनीय है। सम्पूर्ण विश्व के सांगीतिक इतिहास और साहित्य की खोज कर संगीत या वैज्ञानिक अनुसंधानकर्त्ताओं ने सिद्ध करके दिखाया है कि यह बाँसुरी बहुत ही पुरातन वाद्य है। जिसका पता कई अवशेषों द्वारा लगाया गया है। भिन्न देशों में कहीं पर इसको स्वतन्त्र वादन के रूप में और कहीं पर इसकों वाद्यवृंद के रूप में, कहीं पर लोक गीत और लोक गाथाओं में, कहीं पर चित्रपट संगीत में और कहीं पर पूजा करने के लिए तथा अलग अलग प्रयोजन में इस वाद्य का उपयोग किया जाता है। इसी प्रकार में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में अपनी अमिट छाप छोड़ चुका है। भिन्न देशों में इसके वादकों और अनुसंधानकर्त्ताओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है जिसके परिणामस्वरूप यह बाँसुरी वाद्य अन्य वाद्यों के शिखर पर पहुँच गया है।

सुषिर वाद्य एक परिचय :

मानव इतिहास में दो परम्पराए सदा से चली आ रही हैं। एक शास्त्रीय तथा दूसरी लौकिक। शास्त्रीय परम्परा का आधार हमें लोक जीवन से प्राप्त होता है। उसी प्रकार हमारे संगीत के भी दो पक्ष है शास्त्रीय तथा लोक संगीत । दोनों ही विधाओं में सुषिर वाद्यों का अपना एक विशेष स्थान है। इन सुषिर वाद्यों में बाँसुरी, शहनाई, क्लारनेट, हारमोनियम करनाल, नरसिंगा, काहल आदि वाद्यों का प्रयोग होता हैं। इन सभी वाद्यों में सर्वाधिक प्रयोग शहनाई तथा बांसुरी वाद्यों का होता है। मुख वायु द्वारा बजाए जाने वाले वाद्य "सुषिर वाद्य" कहलाते हैं। इन वाद्यों में वायु के दवाब को घटा-बढ़ा कर स्वरों को ऊँचा नीचा किया जाता है। "सुषिर" का अर्थ है "छिन्द्र या सुराख"[1] हरवर्ट ए पापले ने भी सुषिर वाघों को तंत्री वाद्यों से भी प्राचीन माना है। सर्वप्रथम बैल के सींग का प्रयोग सुषिर वाद्य के रूप में किया गय है। उसका प्रतिरूप "द इंडियन म्यूजियम" कलकत्ता में देखा जा सकता है।[2] कर्ट सैक्स ने सीटी को प्रारम्भिक सुषिर वाद्य के रूप में माना है। इतना होने पर भी इस वाद्य का विकास उतना ज्यादा नहीं हो पाया है जितना होना चाहिए था। हरवर्ट पापले के अनुसार जाति भावना प्रबल होने के कारण भी सुषिर वाद्यों का स्थान गौण रहा है। सुषिर वाद्यों को मुख द्वारा वादन करने के कारण उसे एक बार बजा लेने के पश्चात उच्छिष्ट मान लिया जाता है। ब्राह्मण लोग शंख का वादन अपने धार्मिक अनुष्ठानों में किया करते थे और उसका वादन निम्न वर्ग द्वारा वर्जित था। इसी भावना के कारण शंख के अतिरिक्त अन्य सुषिर वाद्य पिछड़ी जातियों के दायरे में सीमित हो गए हैं।" सुषिर वाद्यों का महत्व तत् वाद्यों के समान ही है, क्योंकि दोनों का प्रयोजन एक ही है। संगीत के स्वर विभाग में सभी तत् और सुषिर वाद्यों का उपयोग हैं। तत् और सुषिर वाद्यों में ही स्वर से ही परम प्रयोजन रंजन की सृष्टि होती है। बांस के द्वारा सुषिर वाद्यों का निर्माण सामगान के मर्मज्ञ मतंग इत्यादि मुनियों ने शंकराधान के लिए विशिष्ट बांस के अन्तर्गत करके उसका नाम वंश किया है। सुषिर वाद्यों में बांसुरी को बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हैं।[3]

अनादि काल से लेकर आधुनिक काल तक वाद्यों में बांसुरी का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। अर्थात सृष्टि की रचना से लेकर आज तक बांसुरी का बहुत ही विशिष्ट स्थान रहा है। हर युग में इसका अतिप्राचीन काल से समसामयिक काल यानि आधुनिक काल तक सब वाद्यों में उच्चतम स्थान रहा है। यह वाद्य

प्राकृतिक होने के कारण इसका निर्माण भी प्रकृति के साथ ही माना जाता है। कोई भी कार्य हो दैविक हो या मानवीय इसमें इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। बांसुरी बाद्यों में से मूल वाद्य माना जाता है। अर्थात बांसुरी काष्ठ वाद्य का एक संगीत उपकरण है। नरकट वाले काष्ठ वाद्य उकरणों के विपरीत बांसुरी एक ऐरोफोन या बिना नरकट वाला वायु उपकरण है जो एक छिद्र के पार हवा के प्रवाह से ध्वनि उत्पन्न करता है। होर्नबोस्टल सैरस के उपकरण वर्गीकरण के अनुसार बांसुरी को तीव्र आघात एरोफोन के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। बांसुरी पूर्वकालीन ज्ञात संगीत उपकरणों में से एक है। करीब 40,000 -65,000 साल पहले की तिथि की कई बांसुरियां जर्मनी के स्वाविचन अल्व क्षेत्र में पाई गई है। यह बांसुरियां दर्शाती है कि यूरोप में एक विकसित संगीत परम्परा आधुनिक मानव की उपस्थिति के प्रारम्भिक काल से ही अस्तित्व में है।[4] भारतीय वाद्य उपकरण के इतिहास में भी बांसुरी को अति प्राचीन वाद्य माना जाता है। जिसका विवरण ये चंद पंक्तियां बयां कर रही हैं। हर श्वास एक बांसुरी, देह वृंदावन, हर प्राण कृष्ण हर वायु एक ग्वालिनियाँ है। पर जिसकी लय पर थिरक रही है, मटकी, वह और ना कुछ बस गीत बताती दुनिया है। आरोह जन्म, अवरोह मरण, लय सृष्टि, गुन गुन जीवन मूर्च्छना मीण्ड सुख दुःख विधान। संगीत ही आदि, संगीत ही मध्य, संगीत ही अंत, बिना गीत विश्व है केवल मरघट के समान।[5] वास्तव में कवि नीरज की इन पंक्तियों के अनुसार संगीत ही विश्व की धड़कन है। संगीत मानव के लिए बिश्व के मूल में निहित समष्टिगत आंनद का अभिव्यक्त रूप है। उस मधुमान आनंद की उर्मिया संगीत के तरंगायमान स्वरों की लहरे हैं। वेद कहते हैं कि हृदय युक्त अनुभूति ही सृष्टि है। छंद जिससे विश्व जन्म लेता है और प्राणवान हैं। उस विश्व का विस्तार ही वस्तुत साम संगीत है। मन-प्राण-इन तीनों शाक्तियों का समन्वित रूप भारतीय संगीत मात्र वाणी का ही सौंदर्य नहीं वरन् यह मन-प्राण और भौतिक शरीर इन तीनों की समन्वित साधना भी है। इस प्रकार बंसी से तात्पर्य बांसुरी से है। बंसी एक प्राचीन वाद्य है। नाद उत्पन्न करने वाली वंश (बांस) नलिका होने के कारण प्रारम्भ में इसका नाम नादी भी था। बाँसुरी वाद्य को वायु के द्वारा ही बजाया जाता है। बांसुरी भारतीय शास्त्रीय संगीत में महत्वपूर्ण वाद्य है जिसका उल्लेख प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक होता आ रहा है। बांसुरी का अर्थ इस प्रकार लिखा गया है। बांस का बना हुआ वो प्रसिद्ध बाजा जिसने मुख वायु द्वारा फूंक कर बजाया जाता है।[6] वहीं बांसुरी है।

बांस की नली को फूंक कर बजाया जाने वाला बाजा। गोपी नायक श्रीकृष्ण की बंसी तथा श्रृंग इसी संस्कृति के परिचायक है। वन प्रदेशों तथा नदी के कूल-कछारों में विचरण करने वाले लोगों को प्रकृति का संगीत सुनकर ही ऐसे वाद्यों को बनाने की प्रेरणा मिली होगी। बंसी का संबंध बंश या बांस के लिए वेणु शब्द भी इस बात को पुष्ट करता है। वेणु वनों में विचरण करते समय वेणु रंद्रों से निकलने वाली मंजुल एवं मर्मर ध्वान उनके नित्य अनुभव की चीजे हैं। वृक्ष की खोहों में वायु के प्रवेश और संचार से होने वाली ध्वनि भी उनके लिए परिचित रही। इसी अनुकरण पर उन्होंने वेणु अथवा सींग को फूंक कर उस निनाद का अनुभव किया हो तो आश्चर्य नहीं उसी आधार पर विभिन्न ध्वनियों को निकालने के लिए पोले बांस में छिद्र बनाने की कल्पना उन्हें सूझी और इन छिद्रों को दवाकर विभिन्न स्वरान्तर निकाले जाने लगे। बंसी का निर्माण वेणु अथवा पीतल, ताम्ब्र या रजत जैसी धातुओं से किया जाता था।[7] सात रंन्ध्र वाली बंसी गायन की संगति का प्रमुख वाद्य थी। बांसुरी सुषिर अर्थात फूंक से बजने वाले वाद्य में प्रमुख है। बंसी की मधुरता बहुत कुछ उसकी लम्बाई नलिका का आकार, छिद्रों की संख्या तथा उनकी परस्पर दूरी पर निर्भर रहती है। बंसी की ही बांसुरी तथा बांसुरी को ही बंसी वेणु वाद्य भी कहते हैं। बांसुरी प्राय वेणु, बांस लकड़ी चंदन, लोहा, कांसा, पीतल से बनाई जाती है। बांस से बनी बांसुरी की ध्वनि लकड़ी या धातु से अधिक स्निग्ध गंभीर एवं मधुर होती है।[8]

यह आकार में लम्वी और भारी होती है इसको बजाने के लिए फूंक अधिक देनी पड़ती है। इसकी अपेक्षा बांसुरी आकार में हल्की और छोटी होती है। और बजाने में भी अधिक सुविधा जनक होती है।

बासुंरी छोटी होने के कारण उसमें कुछ स्वर छिद्र ऊपर होते हैं, और कुछ नीचे की ओर होते हैं। इसकी ध्वनि बंसी की अपेक्षा तरल और तेज होती है। पाश्चात्य देशों में बांसुरी अलग-अलग स्वरों के हिसाब से बनाई जाती है। जैसे ए, बी, सी और डी स्वर इत्यादि। इसके द्वारा बांसुरी का स्वर क्षेत्र तथा आवाज निर्धारित की जाती है। फूंकने तथा लाने ले जाने की सुविधा की दृष्टि से तथा सुरक्षित रहने की दृष्टि से बांसुरी अधिक पसंद की जाती है।[9]

बांसुरी का नाम सुनते भगवान श्रीकृष्ण जी का स्मरण होने लगता है वे और बांसुरी एक दूसरे के पूरक रहेंगे। वे बांसुरी बजाते थे और गायें। चराते थे। जिसके कारण उन्हें बंसीधर मुरलीमनोहर, मुरलीधर वेणुगोपाल आदि नामों से सम्बोधित किया जाता था। इस बांस की बांसुरी में वे ऐसा मोहनी मंत्र फूंकते थे जिससे नर-नारी पशु-पक्षी ही क्या यमुना की धारा भी मंत्रमुग्ध होकर होकर स्थिर हो जाती थी।[10]

इस बांसुरी के महत्व को श्रीकृष्ण जी ने अपने अलोकिक व्यक्तित्व के साथ अत्यंत गौरवपूर्ण बना दिया। बांसुरी की मनमोहक स्थिति का वर्णन श्रीमद भागवत ग्रंथ में किया है। भगवान श्रीकृष्ण जी द्वारा जब बंसी बादन किया जाता था तो वो हर किसी को अपनी ओर आकर्षित कर लेते थे। उनकी लीलाओं द्वारा गोपिया मंत्रमुग्ध हो जाती थी और अपनी सुध-बुध खो बैठती थी।[11] जब श्रीकृष्ण जी बांसुरी बजाते थे तो गोपियां कहने लगते थीं कि संखियों इस मुरली ने ऐसा भारी पुण्य किया है जिसके फलस्वरूप ये श्री कृष्ण जी के उस अघरामृत का पान बेसब्र होकर करती रहती है जिसके पान करने का अधिकार केवल हम गोपियों का है। सो हमको रस तो नहीं मिलता जूठन ही मिल जाती है। अपने वंश भगवत्-भक्त देखकर "जिस प्रकार बड़े लोग प्रसन्नता से रोमांचित हो जाते तथा उनके नेत्रों से आनन्दाश्रुओं की धारा निकल जाती है नदियां अपनी पुत्री के सौभाग्य पर आनंदित होकर फूली नहीं समाती है। इन नदियों में खिले हुए कमलों को देखकर ज्ञात होता है कि ये मारे प्रसन्नता के रोमांचित हो रहे हैं तथा बांसों के बंश में इस मुरली ने जन्म लिया है, उनके भाई-बंधु अन्यान्य वृक्ष भी अपने वंशज के भाग्य वैभव को देखकर प्रसन्न हो रहे हैं तभी तो वे मधु धारा के बहाने आनन्दाश्रु बहा रहे है।[12] इस प्रकार अनादि काल से लेकर आधुनिक समय तक सुषिर वाद्यों में बांसुरी का स्थान बहुत ही विशिष्ट माना गया है। बांसुरी प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक बहुत मनमोहक एवं चिताकर्षक सुषिर वाद्य रहा है। इसका महत्व किसी भी युग में कम नहीं रहा है।

संदर्भ

1. कुलश्रेष्ठ डॉ. सुषमा, कालीदास साहित्य एवं संगीत कला पृष्ठ-160
2. मिश्र अरूण, भारतीय कण्ठ संगीत और वाद्य संगीत पृ.- 120
3. भार्गव डॉ. अंजना, भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चितंन पृष्ठ -104-105
4. Wildford jchan N. (June 24, 2009) Eluted offer Cluses to stone Ageusic.
5. गुप्ता डॉ. रूचि, भारतीय संगीत शाश्वत जीवन सृष्टि जीवन एवं संगीत, पृ.-67
6. वालिया सीमा रानी, स्वर वाद्यों के वादन् में ठुमरी और धुन पृ.-89
7. वर्मा रामचन्द्र, संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, पृ.-709
8. वालिया सीमा रानी, स्वर वाद्यों के वादन में ठुमरी और धुन पृ.-90
9. परांजये, श्रीधर शरतचन्द्र, संगीत बोध, पृ. 158
10. श्रीमद् भागवत् पृ. 738-739
11. श्रीमद् भागवत पृ. 739-741
12. श्रीमद् भागवत पृ. -739-741

संगीत एवं जीवन

डा. ममता कुमारी (ठाकुर)

संगीत शब्द का उच्चारण करते ही संगीत सरिता की कल-कल ध्वनि सुनाई पड़ने लगती है। संगीत का संबंध मानव जीवन से है। मानव की उत्पत्ति के साथ ही संगीत की भी उत्पत्ति हुई। यह प्रकृति का एक अनुपम तत्व है। प्रत्येक मनुष्य के ह्रदय में कला के प्रति प्रेम इच्छा और आनन्दानुभूति की भावना विद्यमान रहती है। संगीत हमारे मनोभावों को भी प्रभावित करता है। यह हमारी आत्मा में भक्तिमय अनुभूतियाँ भर देता है। संगीत द्वारा हम अपने भावों को प्रदर्शित करते है। कहा जाता है रोना और गाना किसे नहीं आता है। शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति होगा जो कि संगीत से अछूता हो।

संगीत में एक गति है और हमारी कृपायें भी गत्यात्मक होती है। प्राकृतिक गति हमें आनन्द देती है। बच्चे जन्म से ही इससे प्रभावित हो जाते हैं। स्वर एवं लय हमें अपनी ओर खींच लेता है। शास्त्र में कहा गया है-

"गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्चते"[1]

गीत वाद्य और नृत्य ये तीनों मिलकर संगीत कहलाते हैं। विश्व के कण-कण में संगीत परमात्मा के अंश की तरह व्याप्त है।

"यज्ञों में वैदिक पाठ एवं गान उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित इन स्वरों में किया जाता था।[2]

संगीत का आरम्भ वस्तुतः वैदिक ऋचाओं से ही हो गया था। सामवेद में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों के गायन का पाठ पढ़ाया गया है। गीत के ये लक्षण भविष्य में आनेवाले संस्कृत के कवियों को भी मान्य हुए वस्तुतः छंदो को गेय बनाने का यह एक उपक्रम था। लौकिक संस्कृत साहित्य तो छंदमय काव्य अर्थात गीत का भंडार ही था। उन्हें सस्वर गाया भी जाता था उसमें संगीत मिश्रित था।[3]

वाल्मीकि रामायण पूर्ण रूप से गेय थी। वाल्मीकि ऋषि ने लवकुश को इसके गायन की शिक्षा दी थी। उन्होंने श्री राम के दरबार में उसी का गायन करके श्री राम का ही नहीं वरन् सम्पूर्ण अयोध्यावासियों का ह्रदय जीत लिया था।

संगीत एक ऐसा विश्वव्याप्त स्नेह सूत्र है जो हर समय विश्व का प्राकृतिक विधि और मानवीय असंगति का एक मधुरतम और मौलिक एकता की अनुभूति से आवद्ध करता है।[4]

अनुभव की दृष्टि से संगीत के स्वरूप को मूर्त रूप देने के लिए षड्ज से लेकर निषाद तक मन्द्र मध्य तथा तार सप्तक के स्वरों को विविध आधारों के द्वारा अनेक प्रकार के स्वरों के रूप स्थापित होते हैं। जिनका कि गायन, वादन, सादियों से होता आ रहा है। शास्त्रकारों का मानना है कि थाटों के द्वारा रागों की उत्पत्ति हुई है। विद्वानों ने यह अनुभव किया है कि लोगों के बीच स्वाभाविक रूप से जो संगीत प्रभावित रहा है, जिन्हें कि देशी राग अथवा लोक संगीत कहा गया है वही कालान्तर में कुछ परिवर्तन के साथ शास्त्रीय रागों के रूप में व्यवहार में आए। प्रमाण स्वरूप अनेक अंचलों में प्रचलित लोक संगीत का स्वरूप वर्तमान समय के किसी न किसी शास्त्रीय राग से मिलता है। वह संगीत अथवा स्वरावलि जिसके गाने और बजाने में किसी भाव विशेष की अनुभूति हो उसे ही राग कहते है। संगीत के अन्तर्गत निहित भाव को पहले कलाकार स्वयं

संगीत विभाग, एम.आर.एस.एम. कॉलेज, लहेरियासराय, दरभंगा

अनुभव करता है और अपनी प्रस्तुति के बाद वह इसी भाव को श्रोताओं तक पहुँचाकर उसे मंत्र मुग्ध कर देता है।

संगीत के माध्यम से प्रकृति और मनुष्य को वश में किया जा सकता है। पेड़ पौधों की उत्पादन शक्ति को बढ़ाया जा सकता है।

संगीत एक यौगिक विधा है जिसकी तीव्र तथा तीव्रकर ध्वनियाँ मनुष्य के सूक्ष्म स्नायुयों को झंकृत कर सुषुप्त कुण्डलिनियों को जागृत कर देती है तथा मानवता को आत्मोन्नति की चरम सीमा मोक्ष के द्वार तक पहुँचा देती है जो भारतीय दर्शन का अंतिम लक्ष्य है। स्वयं भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा है-

नाहं वसामि वैकुण्ठे, योगिनां हृदये न च।
भद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्रं तिष्ठामि नारद।।5

संगीत द्वारा मनुष्य उच्च प्रेरणाएँ ग्रहण करता है। बैजू बाबरा ने अपने सुमधुर आकर्षक गायन द्वारा पागल हाथी को वश में कर लिया तथा वह खूँखार हाथी उनके पैरों से लिपट गया जो कि दूसरों के लिए प्राण घाती सिद्ध हो रहा था।

संगीत का प्रयोग आरम्भ से ही आध्यात्मिक पृष्ठ भूमि पर आधारित है। भारतीय विचारधारा के अनुसार कला आत्म निभज्जन का प्रथम सोपान है। संगीत ईश्वर आराधना का शक्तिशाली माध्यम है। यह माध्यम इतना सशक्त नहीं होता तो शायद सूर, मीरा, तुलसी आदि भक्त कवियों का प्रादुर्भाव नहीं होता। प्राचीन काल में इसे भगवत् उपासना तथा इन्द्रियों को वशीभूत करने का साधन मानकर ऋषि मनीषियों ने संगीत को योग साधना के समान ही महत्व दिया है।

संगीत प्राणीमात्र के सुख-दुःख का साथी है। यह मानवता का पाठ पढ़ाता है। वैज्ञानिकों ने इस सत्य का अनुसंधान किया है कि संगीत से केवल मनोरंजन ही नहीं अपितु इससे अनेक रोगों का उपचार भी हो सकता है। हमारे घरों में माताऐं रोते हुए बच्चों को लोरियाँ सुनाकर सुला देती हैं, यह संगीत और नाद का ही प्रभाव है।

क्षिति, जल, पावक, गगन समीरा।
पंच रचित यह अधम शरीरा।।

इन्हीं पाँचों तत्वों से मानव शरीर का निर्माण हुआ है। वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है कि उक्त पाँचों तत्वों में संगीत अत्यधिक मात्रा में विद्यमान है। जिस प्रकार आत्मा का संबंध परमात्मा से माना गया है उसी प्रकार स्वर का संबंध आत्मा से माना गया है। इस युक्ति से संगीत और आत्मा का संबंध अत्यंत सुदृढ़ सिद्ध होता है।

जीवन पथ के किसी मोड़ पर रुककर हम देखते है तो संगीत नजर आता है। खेतों में पानी डालते समय किसानों द्वारा गाये जाने वाले गीत, पनघट पर पानी भरते हुए युवतियों द्वारा गाये जाने वाले गीत, पशु चराते समय ग्वालों का संगीत हमें मुग्ध कर देता है। जन्मोत्सव विवाहोत्सव, धार्मिक, सामाजिक, मांगलिक सभी उत्सवों में अवसरों के अनुरूप लोकगीतों को सुनने का अवसर प्राप्त होता है। संगीत में जादू जैसा असर है जो सभी को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है।

वर्तमान युग में राष्ट्रीयता के रंग में रंगे देश-भक्त राष्ट्रीय गान गाकर युद्ध के मोर्चा पर सैनिकों में उत्साह वृद्धि के लिए विभिन्न प्रकार के संगीत का प्रयोग करते हैं।

स्वयं हमारे राष्ट्रपिता गांधीजी, विश्वकवि रविन्द्रनाथ, तथा वंकिमचन्द्र चटर्जी आदि ने राष्ट्रीय गीतों की रचना की। मृत्यु के उस वीभास वातावरण में सैनिकों के मस्तिष्क को संतुलित रखने में कर्त्तव्य की कसौटी पर खरे उतरने की शक्ति संगीत ही प्रदान करता है।

चारित्रिक उत्थान सर्वोत्तम साधन संगीत ही है हम जितना उसकी गहराइयों में उतरते जाऐंगे हमारा पथ उतना ही प्रशस्त होता जाएगा, परन्तु इसमें सिद्धि प्राप्त करने के लिए हमें इसकी स्थिर हृदय से कठिन तपस्या करनी होगी तभी हम जीवन एवं संगीत को अच्छी प्रकार से समझ सकेंगे।

सन्दर्भ सूची-

1. संगीत विशारद- गर्ग डा. लक्ष्मीनारायण-33
2. भारतीय संगीत का इतिहास- पारंजपे डा. शरतचन्द्र श्रीधर-165
3. अहिल्या संदेश - स्मारिका - 2016
4. संगीत निबंध संग्रह- श्रीवास्तव प्रो. हरिश्चन्द्र-पृ. 94
5. संगीत निबंध संग्रह- श्रीवास्तव प्रो. हरिश्चन्द्र-पृ. 96

संगीत रत्नाकर ग्रंथ में वर्णित पटह वाद्य - विवेचनात्मक अध्ययन

ज्योति गुप्ता

संगीत के शास्त्र ग्रंथों में संगीत रत्नाकर का स्थान अद्वितीय है। 13वीं शताब्दी में लिखित पं. शारंगदेव का संगीत रत्नाकर ग्रंथ भारतीय संगीत की अनुपम कृति है। संगीत के अत्यन्त विशाल और व्यापक क्षेत्र, विषय की स्पष्टता, सूक्ष्म और व्यवस्थिति निरूपण तथा प्रमाणिता की दृष्टि से संगीत के शास्त्र ग्रंथों में शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर गंथ की अहम भूमिका है। यह ग्रंथ परवर्ती शास्त्रकारों को सबसे ज्यादा प्रभावित करने वाला ग्रंथ है। यह ग्रंथ आदर्श नमूने के रूप में अखण्ड स्त्रोत रहा है। साथ ही प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सर्वाधिक आलोचना का पात्र भी रहा है।

भारत में प्राचीन काल से ही संख्या और वादन विधि की दृष्टि से अवनद्ध वाद्य विशेष रहे है। आचार्य भरत मुनि ने नाट्य शास्त्र में 100 मुख्य अवनद्ध वाद्य कहे है। जिनमें पं. शारंगदेव के काल तक आते-आते परिलक्षित हुए, अस्तु पं. शारंगदेव ने पटह, मंर्दल, हुडुक्का, करटा, घट, घडस, ढवस, हुडुक्का, कुडुवा, रूजा, डमरू, डक्का मण्डिडक्का, डक्कुली, सेल्लुका, झल्लरी भाण, त्रिवली, दुन्दुभि, भेरी निःसाण और तुम्बकी इत्यादि इन 23 वाद्यों के लक्षण दिये है जिनमें से इस अध्ययन के अन्तर्गत हम चयनित पटह अवनद्ध वाद्य की बनावट, वादन विधि पाटावर्ण इत्यादि की विस्तृत चर्चा करेंगे।

पं.शारंगदेव जी ने अपने ग्रंथ में सर्वप्रथम पटह वाद्य का उल्लेख किया है अपितु उन्होंने सभी अवनद्ध वाद्यों की पूरी वादन विधि का विस्तृत निरूपण पटह वाद्य के द्वारा ही किया है। संगीत रत्नाकर ग्रंथ में पटह वाद्य को मृदंग तथा मर्दल के समान मान्यता दी है तथा उसका विस्तृत वर्णन किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि भरत काल तीसरी सदी से धीरे-धीरे पटह संगीत में अपना स्थान प्राप्त कर शारंगदेव के काल में (13वीं शताब्दी)तक यह संगीत के प्रमुख अवनद्ध वाद्य के रूप में मुखरकर सामने आयो। संगीत रत्नाकर ग्रंथों में पटह का विस्तृत विवरण उपलब्ध होता है, जिसके अनुसार पटह का स्वरूप तथा वादन विधि निम्नवत् है।

पटह वाद्य :-

उस काल में पटह वाद्य के दो रूप या दो प्रकार उपलब्ध होते हैं– 1 मार्गी पटह 2 देशी पटह। पं. शारंगदेव ने वाद्याध्याय के श्लोक स. 806 में पटह के दो स्वरूपों की चर्चा की है यथा-

मार्गदेशीगतत्वेन, पटहो द्विविधो भवेत्।
मार्गस्थपटहस्यात्र लक्षणं तावदुच्यते।।806।।
सं. र., छठा वाद्याध्याय, पृ. सं. 439

अर्थात-मार्ग और देशी विषयक होने से पटह दो प्रकार से (मार्ग पटह और देशी पटह) होता है। इसमें से मार्ग में स्थित पटह का लक्षण पहले कहा जा रहा है।

शोधकर्त्री, संगीत विभाग, डी.ई.आई., दयालबाग, आगरा, उत्तर प्रदेश

मार्ग पटह का परिचय :-

पं. .शारंगदेव ने वाद्याध्याय के श्लोक स. 807-808 में मार्ग पटह की संरचना एवं चमडा मढने की सुविस्तार चर्चा की है यथा-

साधहस्तद्वयं तस्य दैर्ध्यं स्यात् परिधिः पुनः
षष्ट्यङ्गुलो मध्यदेशः पृथुलो दक्षिणं मुखम् ।। 807 ।।
कर्तव्यं संमितं साधैरेकादराभिरङ्गुलैः ।
वामं तु दशभिः सार्धैः संमितं दक्षिणे मुखे ।। 808 ।।
आयसं वलयं कार्यं वामे वल्लीसमुद्भवम् । सं. र., छठा वाद्याध्याय, पृ. सं. 439

अर्थात- उसकी लम्बाई आधे सहित दो (ढाई) हाथ होती है और घेरा साठ अँगुल बीच का भाग मोटा होता है। दाहिना मुँह आधे सहित ग्यारह (साढे ग्यारह) अँगुलों से नापा हुआ (नाप वाला) और बाँया तो आधे सहित दस (साढे दस अँगुलों) से नापा गया करना चाहिए दाहिने मुख पर लोहे का वलह (गोल कडा) और बायें मुख पर लता से उत्पन्न (वलय) करना चाहिये ।

स्पष्टीकरण- पटह दो मुख वाला वाद्य है जिसका दाहिना मुँह बायें मुँह की अपेक्षा एक अँगुल बड़ा होता है। और भाण्ड बीच से मोटा होता है। दाहिने मुँह पर लोहे का और बायें पर किसी लता का गोल कड़े के आकार का वलय होता है।

शाण्मासिको मृतो वत्सो यस्तस्यादाय पारिकाम् ।। 809 ।।
तयावगुण्ठ्य वलयं वल्लीजं वामवक्त्रगम् ।
सप्तरन्ध्रान्वितं त्वा सुदृढैः सूक्ष्मदोरकैः ।। 810 ।।
निक्षिप्तैस्तेषु रन्ध्रेषु बन्धव्याः कलशाः ष्लथम् ।
ते हेमादिमयाः सप्त दैर्घ्येण चतुरङ्गुला ।। 811 ।।
सं. र., छठा वाद्याध्याय, पृ. सं. 439-440

अर्थात- पटह के मुख पर जो छः महीने का मरा हुआ बछड़ा हो उसकी खाल को लेकर उसमें बायें मुँह क लता से उत्पन्न (बने) वलय को लपेट कर सात छेदों से लम्बित करके (छेद बना कर) उन छेदों में डाले हुए मजबूत (अच्छा बल लगे हुए) महीन छोरों से सात कलश ढीले बाँधने चाहिये। वे सोने आदि से बने हुए लम्बाई में चार अंगुल वाले होने चाहिए।

स्पष्टीकरण- पटह वाद्य के बायें मुँह पर लता का जो कड़े के आकार का चमड़ा होता है उसे बछड़ की खाल से लपेट कर उसमें सात छेद बना कर उनमें बारीक डोरे डाल कर सोने या किसी दूसरी धातु से बने कलश ढीले बाँधे जाते है। कलश चार अँगुल लम्बे होते है लेकिन उनकी मोटाई नहीं बताई, संभवतः मोटे नहीं होगें।

त्यक्त्वाङ्गुलानि चत्वारि वामे स्याल्लोहपाटिकाम् ।
अङ्गुलांयविस्तारां पटहे वेष्टयेद् दृढम् ।। 812 ।।
बाह्यकायस्य यच्चर्म पषोस्तेन घनेन च ।
कम्बलाख्येन बध्नीयात् पिहितं वदनद्वयम् ।। 813 ।।
सं. र., छठा वाद्याध्याय, पृ. सं. 440

अर्थात्-पटह के बाँये मुख पर चार अँगुल छोड़कर तीन अँगुल चौड़ी लोहे की पट्टी की पटह पर चारो ओर मजबूती से लपेटना चाहिये। पशु के बाहरी शरीर का जो चमड़ा होता है उस कम्बल नाम वाले और मोटे चमड़े से पटह के दोनों मुख तक कस बाँधने चाहिये।

स्पष्टीकरण-दोनों मुख को ढकने वाली चमड़े की मोटी परत कम्बल या कवल कहलाती है बाँये मुख की तरफ जो लोहे की पट्टी लपेटा जाती है उसका प्रयोजन स्पष्ट नहीं है।

दक्षिणास्यस्य कवलं परितः कृतरन्ध्रकम् ।
रन्ध्रक्षिप्तैर्गुणैर्गाढमाकृष्येतरवर्त्मगैः ।। 814 ।।
वलये तान् गुणान् सम्यग् बध्नीयाद् दाढ्र्यसिद्धये ।
वामास्यकवलान्तः स्थसप्त रन्ध्रनिवेषितैः ।। 815 ।।
गुणैरावेष्ट्य कलषानायसैर्वलयैदृढैः ।
अन्तःक्षिप्त्वा समाकृष्टैर्वलये गाढतां नयेत् ।। 816 ।।
सं. र., छठा वाद्याध्याय, पृ. सं. 440

अर्थात्-चारो ओर छेद किसे हुए दाहिने मुँह के कवल (कम्बल) को छेंद में डाले हुए डोरो से कस कर खींच कर दूसरे मुँह में गये हुए उन डोरो को दोनों वलय करने के लिए अच्छी तरह बाँधना चाहिये। बाँये मुँह के कवल में बने सात छेदों में डाले गये डोरो से कलशों को लपेट कर लोहे के बने मजबूत वलयो से भीतर डाल कर अच्छी तरह खिचे हुए (डोरो से) दोनों वलय को ले जाने चाहिये। (खींच कर देना चाहिये)

स्पष्टीकरण-बाँये मुँह के छेदों में से डोरी डाल कर दाहिने मुँह के वलय के छेदों में से आरपार

डालनी चाहिये जिससे दोनों मुँहों के वलय भाण्ड के साथ अच्छी तरह कस जाए लेकिन बाँयें से दाहिने मुँह की ओर जाती हुई डोरी को कलाशों ने लपेट कर बाँधना चाहिये। जिससे पहले ढीले बाँधे हुए कलश भी कस जाये।

राधागोविन्द्र संगीतसार में कलश के सम्बन्ध में वाद्याध्याय पृष्ठ स.-48 प.20-21 में लिखे है- कि कलशों को चढाने या उतारने से सात स्वर उत्पन्न होते है।

कलशेभ्यो बहिर्वामवलयान्ते च बध्यते।
वेष्टनाय कटेः कच्छेत्युक्तोऽयं स्कन्ददैवतः ।। 817 ।।
श्रीयज्ञपुरवर्येण पटहो मार्गसंभवः।

सं. र., छठा वाद्याध्याय, पृ. सं. 441

अर्थात्-वाये वलय के अन्त में कलशों से बाहर की ओर कमर को लपेटने के लिए कच्छा भी बाँधी जाती है श्री यज्ञ पुर में श्रेष्ट (पं.शारंगदेव) के द्वारा ऐसा कह यह स्कन्द देवता वाला मार्ग से उत्पन्न पटह अर्थात् मार्गपटह कहा गया है।

स्पष्टीकरण -इस पटह को कमर से बाँध कर बजाया जाता था इसलिए कमर में बाँधने के लिए कच्छा नाम से डोरी को पट्टी जैसा साधन कहा गया है। आगे मर्दल की व्याख्या में सिंह शम्बू ने कच्छा का अर्थ चपटी पट्टी दिया है।

मार्गी पटह की वादन-विधि

पं.शारंगदेव ने श्लोक स.826-827 में कहाँ है कि "सभा में पद्मासन पर बैठे हुए वर्गो को उत्पन्न करने में दक्ष (वादक) के द्वारा दोनों जागों पर (गोद में) मार्ग पटह रख कर वादन करना चाहिये। नाटक में तो ऊपर की ओर मुँह वाला घट वाद्य की तरह बजाया जाता है। विद्वान जन हाथ या कोण से इसका वादन करना चाहिये।

देशी पटह वाद्य

पं.शारंगदेव ने देशी पटह के स्वरूप की चर्चा वाद्याध्याय श्लोक के संख्या 818 से 821 तक में विस्तार पूर्ण प्रस्तुत किया है यथा-

देशीस्थोऽप्येवमेव स्याद् दैर्ध्येऽष्सौ सार्धहस्तकः।। 818।।
सप्ताङ्गुलं दक्षिणास्यमन्यत् सार्धषडङ्गुलम्।
आन्तरं जाठरं वाद्यं पशोर्गदितमुद्दली।। 819।।
तया तु स्वच्छया वर्मा वाममस्य निबध्यते।
विशेषोऽष्यं भवेद्दस्मिन् ,

सं. र., छठा वाद्याध्याय, पृ. सं. 442

अर्थात-देशी पटह का स्वरूप ऐसा होता है-उसकी लम्बाई आधे सहित एक डेढ़ वाली तथा दाहिने मुख सात अंगुल वाला होता है। साथ ही बाँया मुँह आधे सहित छः (साढ़े छः) अंगुल वाला होता है।

देशी पटह में पशु के भीतर के जोड़ का जो चमड़ा होता है, उसे उदली कहा गया है।उसका ही प्रयोग देशी पटह के बाये मुँख को मुढ़े में किया जाता है क्योंकि उसे सबसे स्वच्छ चमड़े माना जाता था।देशी पटह मार्ग पटह से लम्बाई में छोटी होती है।

पं.शारंगदेव ने पटह के भेद के सम्बन्ध में वर्णित किया है यथा-

उभौ खादिरदारूजौ।। 820।।
धिोक्तोश्ष्यं द्वयोरन्यैरुत्तमो मध्यमोश्ष्यमः ।
उत्तमः श्लोक्तमानः स्याद् द्वादशांशोनितः पुनः।। 821।।
मध्यमः षष्टभागेन विहीनस्त्वधमो भवेत्।

सं. र., छठा वाद्याध्याय, पृ. सं. 443

अर्थात-दोनों प्रकार की पटह और की लकड़ी से (उत्पन्न) बने हुए होते है। जिसके भेद या भाग उत्तम मध्यम उधम तीन प्रकार के होते है। ऊपर का भाग उत्तम होता है। बारहवाँ भाग कम किया हुआ मध्यम और छः भाग से रहित अधम भाग होता है।

स्पष्टीकरण-मार्ग और देशी दोनों पटहों के उत्तम, मध्यम और अधम ये तीन प्रकार के भेद ग्रंथकार ने उल्लेख किये है। प.शारंगदेव जी ने पटह के ऊपर वाले आकार वाला उत्तम, 1:12 अंश से कम वाला मध्यम तथा 1:6 अंशकम आकार वाला अधम कहे है।

देशी पटह की वादन -विधि

देशी पटह को कोण से बजाया जाता है जिसका मूलभाग यानी जहाँ से उसे पकड़ा जाता है। मोम लगे हुए कपड़े से लपेटा जाता है और सामने का सिरा जहाँ से पटह पर आघात किया जाता है,

सामने कुछ मुड़ा रहता है। यह लकड़ी का बना होता है जो अठारह अँगुल लम्बा होता है।

पटह के वर्ण (प्राचीन पाटाक्षर)

पं.शारंगदेव जी ने पटह वाद्य के सर्वप्रथम प्रमुख तथा प्राचीन काल में प्रचलित 16 वाट वर्ण की व्यवस्था में भरत मुनि द्वारा दिये हुए 14 वर्णों का लेख किया है। उसमें दो नवीन वर्ण ण और न का कहे गयें। और यह 16 वर्ण मार्ग तथा देशी दोनों तरह के पटह में उत्पन्न होते है।

इस सम्बन्ध में लालमणि मिश्र जी ने अपनी पुस्तक भारतीय संगीत वाद्य में वर्णित किया है कि पटह के जिन वर्णो का तथा उनके वादन क्रिया का जो वर्णन किया गया है वह पटह के साथ-साथ मृदंग, मर्दल व हुडुक्का आदि से भी सम्बन्धित है। इन्हीं वर्ण से मिलकर बोलों की रचना की जाती है।

पटह के हस्तपाट

पं.शारंगदेव जी ने पाटाक्षरों को केवल पाट कहा है उन्होंने कहा है कि जो पटह के पाट यानी वर्ण कहे गये उनके अपने प्रकार के संयोग (मिलने) से बनने वाले पाटों के समूह हाथों से उत्पन्न किये जाते है इसलिए उन्हें हस्त पाट कहते है।

हस्तपाट का शब्दिक अर्थ- हस्तपाट दो शब्दों से मिलकर बना है-हस्त ः पाट - हस्त से तात्पर्य है, हाथ से तथा पाट से तात्पर्य है वर्ण से अर्थात् जो वर्णो का समूह हाथ से उत्पन्न किये जाते है उन्हें हस्तपाट कहते है।

हस्तपाट के नामों की उत्पत्ति

पं.शारंगदेव जी ने संगीत रत्नाकार नामक ग्रंथ में सोहल वर्ण बताते हुए उनके विविध प्रयोगों से अनेक पाट अर्थात् बोल बताये है। जिनकी उत्पत्ति परम्परानुसार पाँच मुख्य पाट शिव जी के मुखों से उत्पन्न बताये है। जिनका वर्णन संगीत रत्नाकर ग्रंथ के छठा वाद्याध्याय में पृ. सं. 445, श्लोक सं. 830-832 में निम्नवत् वर्णित है यथा -

1. **नागबन्धन**- जो संद्योजात मुख से उत्पन्न हुआ।
2. **स्वस्तिक**- जो नामदेव मुख से उत्पन्न हुआ।
3. **अलग्न**- जो अघोश मुख से उत्पन्न हुआ।
4. **शुद्धि**- जो तत्पुरुष से शुद्धि उत्पन्न हुआ।
5. **समस्खलित**- ईशान मुख से उत्पन्न हुआ।

इन पाटों के देवता

1. नागवधन-ब्रह्म 2. स्वास्तिक-विष्णु 3. अलग्न-शिव 4.शुद्धि-सुर्य 5. समस्खालित-चन्द्र।

इन पाँच मुख्य पाट के पं.शारंगदेव जी ने अलग-अलग 7-7 भेंद भी बताये है जिनका विवरण संगीत रत्नाकर ग्रंथ के छठा वाद्याध्याय में पृ. सं. 445, श्लोक सं. 833-839 में दिया गया है यथा :-

1.नागबधन- ब्रह्म के निम्नानुसार सात भेंद है।

सा -नागबन्ध-टनगिन गिन नगि।
रे - पवन-ननगिड, गिड, दगि।
ग - एक-गिड, गिड, दत्थ।
म - एकसर-किटतत, किटतत।
प - द्विसर-नखु, नखु।
ध - संचार-खिरतकिट।
नि - विभेद-थें गि थों गि।

2. स्वास्तिक के निम्नोक्त सात भेंद है।

सा -स्वस्तिक-ततकिट कि।
रे - बलिकोहल-थो हन्ता।
ग - कुण्डलिविभेप-थों थों गों गों।
म - फुल्लेविभेप-थोंगिन थोगिंन थोगिंन।
प -संचार विखली-थोंगिनतन्ता।
ध - खण्ड नाग-बन्ध-किट थोथों गिन खेंखें।
नि - पूरक-टकु झें झें।

3. अलग्न के निम्नानुसार सात भेंद है-

सा - अलग्न-नागगिडगिडदगिदा।
रे - उत्सार-दत्थरिकी दत्थरिकि।
ग - विश्रगम-ताकि धिकि तकि धिकि।
म - विषमखली-टगुनगु टगुनगु।
प - सरी- खिरिक खिरितु।
ध - स्फुरी-खिरि खिरि।
नि - स्फुरण-नरीकत्थरिकी।

4. शुद्धि के निम्नोक्त सात भेंद है-

सा - शुद्धि-परिगिड गिडदगिदा।
रे - स्वरस्फुरण-टट कुटर।
ग - उत्फुल्ल (उच्छल)-ननगिन खरिखरि।

म - वलित-दखें दखें दखें।
प - अवघट-थों गिनगि थों गिनगि।
ध - तकार-तत्ता।
नि - माणिस्यवल्ली-धिधि।
5 समस्खलित के भी निम्नानुसार भेंद है।
सा - समस्खलित-तझे तझे झें।
रे - विकट-गिरिण्ड गिरिण्ड।
ग - संदृश-किणकिणकि।
म - पाटखलित-धिधि किरकि।
प - अड्डखली-दिगिनगि दिगिनगि।
ध - अनुच्छल्ल-धरकट-धरकट।
नि - खुत्त-दोंनकर दोंनकर।

नदिकेश्वर द्वारा कहे गये पाटभेंद

पं.शारंगदेव जी ने अपने ग्रंथ में शिव जी के मुख से उत्पन्न पाँच मुख्य तथा उनके भेंदों के (5 ञ 7 त्र 35) उपरान्त नन्दिकेश्वर के मुख से निकले चार पाटाक्षरों का वर्णन श्लोक सं. 840 में निम्नवत् किया गया है। **नाम इस प्रकार है-**

1. कोणाहल 2.सम्भ्रात्त
3 विषय . 4. अर्धसम।

पं. शारंगदेव जी ने नन्दिकेश्वर द्वारा दिया गये पं.पाटाक्षरों के स्वरूप, वादन विधि एवं पाटों का वर्णन छठा वाद्याध्याय में पृ. सं. 449-451, श्लोक सं. 852-854 में निम्नवत् दिया है।

1 **कोणाहतः**-इसे छोटी अंगुली और अंगुठे को जोड़कर अंगुलियों को घुमाने से उत्पन्न हस्तपाट कोणाहत कहलाता है जिसमें खु, खु धरि खु, खु धरि करगिड करगिड इत्यादि बोल बजाये जाते है।

2 **संभ्रात्तः**-इसमें सारी उँगलियों की नोक से आघात करने से संभ्रात्त हस्तपाट की उत्पत्ति होती है जिसमें दरगिड दरगिड गिरिगिडद वाणकिट मटटकु इत्यादि बोल बजाये जाते है।

2 **विषयः**-इसमें पताका के समान कलाई तथा पैरों कम्पन करते हुए वादन किया जाता है जिसमें दहें दहें खुंखुं दहें ततकि ततकि इत्यादि बोल समूह होते है।

3 **अर्धसमः**-इसे विषय के विपरीत वादन करना चाहिए। अर्थात् जहाँ कुछ अंग को कंपाकर तथा कुछ को बिना कम्पित किये मुँदी उंगली से अक्षर के अनुसार बजाया जाता है उसे अर्धसम कहते है। जिसमें ददगिद गिगिरिकिटदगि थों थों गिदथोंगिद इत्यादि बोल समूह होता है।

पटह आदि के 21 हस्तपाट (निकास विधि)

पं.शारंगदेव जी ने 21 हस्तपाट के नाम का वर्णन श्लोक सं.841 से 844 में किया है। उसके पश्चात् उन्होंने इन्हीं हस्तपाट के निकास विधि एवं बोल समूह का विवरण छठा वाद्याध्याय में पृ. सं. 451-459, श्लोक सं. 855 से 870 में निम्नवत् वर्णन किया है।

1. **उत्फुल्ल**-उँगलियों को मोड़कर नाखूनों से कन्हें-कन्हें बजाना।

2. **खलक**-दांगिडगिड दगिदा। अँगूठा फैलाकर सुकचंचुगुमकम की मुद्रा से या अलग-अलग उँगली से अक्षर के अनुसार बजाना।

3. **पाठयन्तरनिकुटुक**-दगिडदां खरिक्क खरिक्कदाँ दाँ दरिखरिदाँ गिडदाँ। दाहिने हाथ की तर्जनी व अगूँठा इन दोनों से बजाना और बायें हाथ से रेफ-गमक की मुद्रा से बजाना।

4. **दण्डहस्त**-दातरिकिट दाँ-दाँ खरिखारिदाँ। पताका-मुद्रा से एक बार ऊपर को, फिर दो बार रेफ-मुद्रा से ताडन करना।

5. **पिण्डहस्त**-थारकिटझें थरिकिटझे इसमें पहले दोनों हाथ की क्रिया करें फिर एक हाथ से अक्षर-से-अक्षर का निर्वाह करें।

6. **युगहस्त**-द्वें द्वें दाँ-दाँ। रेफ की मुद्रा से दोनों हाथ से ऊपर को ताडन कर तथा पाटाक्षार के अनुसार बजाना।

7. **अर्धहस्त**-दरगिड दाँ-दाँ। दाहिने हाथ की हथेली से ऊपर की ओर आघात करना।

8. **स्थूलहस्त**-खुंखुंद खुंखुंद। अर्धहस्त की मुद्रा से दो बाजे कें दोनों मुख बजाकर फिर तलहस्त से एक बार बजाना।

9. **अर्धार्धपाणि**-खुदाँ खुदाँ। अर्धहस्त की मुद्रा से दोनों हाथ से बजाना।

10. **पार्श्वपाणि**-थरगिड दागिड दागिड। नख के अग्रभाग से बजाना।

11. **अर्धपाणि**-दगिड दगिड दगिड। नख के अग्रभाग से बाजना।

12. कर्तरी-टिरि टिरि टिरि टिरि किट थों दि गिदा टिरि टिरि टझेझें तकि किट। बायें हाथ की उँगलियों से अक्षर के अनुसार चालन करना।

13. समकर्तरी-झिनकिट कनकिट किटझेंथों दिगिद तिरिटि टिरितिकि। दोनों हाथ की उँगलियों का सम करना।

14. विषमकर्तरी-टिरि टिरि थों दिगिद टिरि टिरि टिरि टिरि। क्रम से दोनों हाथों की उँगलियों से ताडन करना।

15. समपाणि-दाँ गिद गिड दाँ-दाँ। दोनों हाथ की उँगलियों से अंगूठा मिलाकर बजाना।

16. विषमपाणि-दाँ-दाँ गिड गिड दाँ-दाँ। दोनों हाथों की उँगलियों से बिना क्रम बजाना।

17. पाणिहस्त-तरगिड तरगिड। समपाणि से भिन्न उँगलियों को अलग-अलग बजाना।

18. नागबन्ध-तत गिडकिट। दाहिने हाथ से बायें पृष्ठ पर और बायें हाथ से मृदंग आदि के दाहिने के एक-एक पृष्ठ में दोनों हाथ से पाटाक्षर बजाना।

19. अवघट-ततगिड गिड दगिटन गिनगिन नगि। मृंदग आदि वाद्य के मुख को हथेली से ताडन पर अँगूठा, उँगली आदि से बजाना।

20. स्वस्तिक-तकिट तकिटतकि। दोनों हाथों से उँगली समेत एक पुट को बजाना।

21. समग्र-तकिट किटतक। एक साथ दोनों हाथों से मृदंग के मुख ताडन करना अथवा बिना अँगूठा, उँगली लगाये केवल हथेली से बजाना।

अष्ट अपाट (बाँय हाथ से बजाने वाले हस्त पाट)

पं.शांरग देव ने आठ विषम पाट अर्थात् बाँय हाथ से बजाने वाले हस्त पाट की वादन विधि का निरूपण सुव्याख्या सहित किया है, जिनके नाम इस प्रकार है।

1. तल प्रहर
2. प्रहर,
3. वलित
4. गुरुगुजित
5. अर्धसंच-प्रपंच
6. त्रिसंच
7. विषमहस्तक
8. अभ्यस्तक।

पं. शांरगदेव ने उपर्युक्त वर्णित हस्त पाट के अतिरिक्त दो अलग और दो चित्र पाट का वर्णन दिया है। जो निम्नवत् हैं- 1.संचय 2. विहृरित ।

चित्रपाट-1. भ्रमर चित्रापाट 2 कुचित चित्रपाट

आचार्य शारंगदेव जी ने संच शब्द, की व्याख्या संचालनके रूप में करते हुए पटह तथा हुडुक्का वादन करते समय वादक के पाँच प्रकार के शरीर संचालन की व्याख्या सुस्पष्ट रूप की है। यथा-पटह और हुडुक्का आदि अवनद्ध बाँधों में कन्धें, कोहनी के ऊपरी भाग, कम्प (हिलना) संच कहलाता है।

पटह आदि के वाद्य रचनाएँ-

पं.शारंगदेव जी ने वाद्य शब्द का प्रयोग एक विशेष अर्थ में लेते हुए कहा है- कि ''पटह आदि में ऊपर जो हस्त पाट कहे गये उनके विभिन्न प्रकार के संयोजन से बनी विशिष्ट रचनाएँ 'वाद्य' कहलाती है।

नोट-उस काल में ग्रंथकार ने बोल द्वारा निर्मित रचनाओं अर्थात् वर्तमान में प्रचलित बदिषों को 'वाद्य' संज्ञा प्रदान की है।

वाद्य के लक्षण-

ग्रंथकार के मतानुसार विशिष्ट रचनाएँ, वाद्य तथा उनके विशेष प्रयोग वाद्य के लक्षण कहे गये है जो हुडुक्का के 13 तथा पटह वाद्य के 12 मुख्य लक्षण माने गये है।

पटह-बोलवाणी, चल्लावणी, उडुव कुचुम्बिणी, चासश्रवणिका, अलग्न, परिश्रवणिका, समप्रहार, कुडुवाचारणा, दण्डहस्त, धनरव इत्यादि।

हुडुक्का-वल्ली, वल्लिपाठ, घात्त, झडप्पणी, अनुस्त्रवणिका, जोडणी, त्रिपुणा, पच्चहस्त, हस्त, पच्चपाणि, पच्चकर्तरी, चन्द्रकला इत्यादि।

वाद्य प्रबन्ध

पं. शारंगदेव जी ने अनवद्ध वाद्यों में भी धातुओं के आधार पर तैतालीस प्रकार वाद्य प्रबन्ध यानी अवनद्ध वाद्यों की निबद्ध-रचनाएँ और उनके लक्षण (निकास विधि) का यथावत् विवरण श्लोक स. 945 से 1019

तक में निरूपण किया गया है जिनके मान इस प्रकार है यथाः- यति, ओता, गजर, रिगोपी, कवित्त पद, मेलापक, उपशम, प्रहरण, वस्तक, च्छण्डण, तुडुक, मलप, मलपांग, मलपार, छेद, रूपक, अत्तर, खोज, खण्डपलि, अवयति, खण्डपाट, खण्डदेव, खण्डभेद, खण्डक, खण्डहुल्ल, सम, परवाद्य, ध्रुवक, अंग, तालवाद्य, विताल, खलक समुदाय जोड़नी उडव, तलपाट, उटटवणी, तुण्डक, अंगपाट, वैसार, इत्यादि।

परिवर्तन प्रकृति की देन है अस्तु पटह की परिस्थितियों में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक था। जन रुचि, लोकप्रियता, आवश्यकता एवं परिस्थिति के अनुरूप इसके नाम, स्वरूप आदि में भी परिवर्तित होनी के प्रथा संमुख आती है।

प्राचीनकाल से इस वाद्य का उल्लेख मिलता है। वाल्मिकी, रामायण, पौराणिक ग्रन्थों, महाभारत उसी प्रकार मानसौल्लास, भरतभाष्य नाट्यशास्त्र, संगीत रत्नाकर, संगीतसमयसार, संगीतोपनि त्सारोद्धार, संगीत चिन्तामणि आदि ग्रन्थों में इसका उल्लेख प्राप्त होता है।

महर्षि भरत ने अपने ग्रंथ में पटह वाद्य का वर्णन प्रत्यंग वाद्य के रूप में उल्लेखित किया हैं जिसका विवरण 33 वें अध्याय के 27 श्लोक में है। यह बड़े आकार होता था तथा इसमें स्वर स्थापना के व्यवस्था नहीं थी अपितु यह स्वर मार्जना की दृष्टि से अनुपयोगी तथा गम्भीर ध्वनि युक्त वाद्य था। इसलिए इसका विस्तृत विवेचन नहीं किया गया।

किन्तु संगीत रत्नाकर ग्रंथ ;13वीं शताब्दीद्ध में पटह को मृदंग तथा मर्दल के समान मान्यता दी है तथा उसका विस्तृत वर्णन किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि भरत काल तीसरी सदी से धीरे-धीरे पटह संगीत में अपना स्थान प्राप्त कर शारंगदेव के काल में 13वीं शताब्दी तक यह संगीत के प्रमुख अवनेंद्ध वाद्य के रूप में मुखरकर सामने आयी।

संगीत रत्नाकर के बाद प्राप्त ग्रंथों में मानसोल्लास, नान्यदेव, का भरत-भाृय व संगीतोपनि त्सारोद्धार आदि ग्रंथों में पटह का विस्तृत विवरण उपलब्ध होता है, जिसके अनुसार पटह का स्वरूप तथा वादन विधि निम्नवत् होती है।

1- मार्गी पटह –मार्गी पटह की लम्बाई दो या ढाई हाथ की होती है और बीच का भाग मोटा उठा हुआ होता है। दाहिना मुख का व्यास साढ़े ग्यारह अंगुलों से नापा हुआ होता है बायां मुख साढ़े दस अंगुल का होता है। काठ, भीतर से खोखला होता है तथा उसके दोनों मुख गोल होते हैं दाहिने मुख पर लोहे का वलय और बांये मुख पर लता से उत्पन्न गोल कड़े के आकार का वलय होता है। दाहिने मखु पर पतला और वाम मुख पर मोटा चमड़ा मढ़ा जाता था। बांये मुख पर लता का जो कड़ा होता है उसे बछड़े की खाल से लपेट कर उसमें सात छेद्र बनाकर उसें बारीक डोरे डालकर सोने या किसी दूसरी धातु से बने छल्ले डाल दिये जाते हैं। यह चार अंगुल लम्बे होते हैं। जिन्हें आवश्यकतानुसार खींचकर स्वर मिला लिया जाता है।

2- देशी पटह–इसकी लम्बाई डेढ़े हाथ की होती है तथा बाम मुख क्रमशः सात तथा साढ़े छह अंगुल व्यास के होते हैं शेष शारीरिक बनावट मार्गी पटह के भाँति होती है। पटह के लिए शीषम की लकड़ी सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है। देशी पटह के आकार में सामान्य ही अन्तर होता है।

पटह के बोल–शास्त्रों में पटह के वर्ण ,पाटाक्षर, संयुक्त बोल, पाट, पाटों के देवता, हस्त पाट, पाट हस्तक, पाट विन्यास आदि का वर्णन मिलता है। पटह पर प्रयुक्त होने वाले 16 पाट इस प्रकार हैं यथा– क, ख, ग, घ, र, ठ, ड, ढ, त, थ, द, ध, न, र और ह। इन्हीं अक्षरों के संयोग से बोलों की रचना की जाती थी।

समय परिवेष के साथ - साथ पटह के परिमाण में बदलाव आना स्वाभाविक था । अस्तु मध्यकालीन पटह वाद्य जो शास्त्रीय वाद्य जगत के चरम आसन पर विराजमान थी । आज ढोलक नाम से प्रसिद्ध है। तथा जिसका प्रयोग लोक संगीत में प्रचुर मात्रा में हो रहा है। जिसके साक्ष्य् 18वीं शताब्दी से प्राप्त होते है। जो निम्नवत् है।

18वीं शताब्दी में संगीत परिजात ग्रंथ में पटह को ढोलक सादृश उल्लेखित करते हुए अहोबल ने लिखा है यथा–

पटह ढोलकः इति भाषायाम्।

लालमणि मिश्र जी ने भी अपने शब्दों में वर्णित किया है यथा–"संगीत पारिजात के मतानुसार पटह का अर्थ ढोलक है। पटह का अर्थ ढोल बताते हुए

अहोबल ने ढोलक की व्याख्या दी है कि पटह भेरी जाति का वाद्य है जो डेढ़ हाथ लम्बा होता है किसी किसी के मत से यह स्थूल चमड़े से मढा होता है। कोई उसे पतले चमड़े से मढ़ता है। यह लकड़ी अथवा हाथ किसी से भी बजाया जा सकता हैं। संगीत समय सार के अनुसार भी मध्यकालीन ढोलक को ही प्राचीन युग में पटह कहा जाता था।

मार्ग पटह का जो स्वरूप संगीत रत्नाकर में दिया है। वर्तमान ढोलक उससे बहुत मिलता है। लेकिन आज दोनों मुंहों के कड़े बांस को ढील कर बनाए हुए होते हैं। पटह में दाहिनी ओर चमड़े में छेद किये जाते हैं और बाईं ओर बलली के वलय में। संगीत रत्नाकर में पटह में बायें मुंह की ओर कहे गये कलश ढोलक में प्रायः नहीं होते। लेकिन वर्तमान में ढोलक के बीच के भाग में स्टील के गोल छल्ले होते हैं जिनमें से होकर डोरी डाली जाती है ढोलक में, दाहिने सिरे पर पट्टी होती है जिस पर दाहिने हाथ के अंगूठे में पहने हुए धातु के छल्ले से आघात किया जाता है और उसी तर्जनी अंगुली ने लकड़ी की पतली डंडी बांधकर उस उंगली से आघात किया जाता है।

ढोलक और पटह में डोरी बांधने की विधि में भी कुछ अन्दर है। ढोलक में जिस तरह डोरी डाली जाती है उससे छल्लों का चढ़ाना उतारना आसान हो जाता है।

प्राचीनकाल में पटह वाद्य प्रत्यंग गौण वाद्य की श्रेणी में आता था। फिर समय परिवर्तन के फलस्वरूप पटह वाद्य मध्य काल तक आते-आते अभिजात संगीत का अभिन्न अंग बन गया तथा उसका प्रयोग मर्दूल मृदंग के समान किया जाने लगा किन्तु फिर आधुनिक काल तक आते-आते जन रुचि के फलतः पटह वाद्य ढोलक में पूर्णतः परिवर्तित हो गया अब वर्तमान में ढोलक वाद्य भारत वर्ष में अखिल भारतीय स्तर पर प्रयुक्त यह लम्बा वाद्य अन्तपुरः से लेकर दरबारों तक अपना महत्वपूर्ण स्थान लिए हुए हैं।

संगीत चिन्तामणि—जिसका अनुमानिक काल 14वीं शताब्दी है इसके लेखक कोण्डषीटि नगर के रेडिड वंशीय राजा वेम थे। इस ग्रंथ में भी पटह का स्वरूप ढोलक स्वीकृत करते हुए 39 तथा 155 पृष्ठ संख्या पर ढोलक की विस्तृत चर्चा की गयी है। यथा—ढोलक आम, बीजा, शीशम, आगौन नीम, जामुन और अढैसा की लकड़ी से बनती है। इच्छानुसार आकार बनाने के लिए लकड़ी को अन्दर से पोला कर दिया जाता है इसके दोनों मुख पर बकरे की खाल मढ़ी रहती है। यह खाल डोरियों द्वारा कसी जाती है। ढोलक का दाहिना मुख ऊँच स्वर में तथा बायां मुख मन्द स्वर में बोलता है ढोलक का बायां मुख मोटी खाल से मढ़ा जाता है तथा इस खाल में भीतर से एक विशेष प्रकार का लेप किया जाता है।

निश्कर्श रुप में हम कह सकते हैं कि संगीत रत्नाकर ग्रन्थ में वर्णित पटह वाद्य का वर्तमान समय में प्रचलित ढोलक के सदृश्य तथा समरूपी वाद्य— 1- महाराष्ट्र में प्रचलित ढोलकी या नाल 2-पंजाब में प्रचलित ढोल।

इस सभी वाद्यों की बनावट, संरचना, प्रयोग आदि में अन्तर है। आधुनिक समय में ढोलक लोक संगीत में प्रचुर मात्र में प्रचलित वाद्य है जिसका प्रयोग घर-घर में शादी-विवाह, मांगलिक कार्यक्रम, नवरात्री, गणेश चतुर्थी, भजन, कीर्तन, फिल्मी गीत आदि समस्त स्थान पर किया जाता है। उदाहरण के लिए—मथुरा में कृष्ण भगवान के स्क्रीध मन्दिर में भजन के साथ लोग ढोलक बजाते हुए रसानुभूति करते हुए परमात्मा में लिन रहते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. चौधरी डॉ सुभद्रा -शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर - छठा वाद्याध्याय
2. आर्चाय बृहस्पति - पार्ष्वदेव कृत संगीत समय सार
3. सिंह सवाई प्रताप - राधागोविन्द संगीतसार वाद्याध्याय
4. मिश्र डॉ लाल मणि -भारतीय ताल वाद्य
5. शुक्ल डॉ योग माया-तबले का उद्भव, विकास और वादन शैलियाँ
6. मराठे डॉ मनोहर भालचन्द्रराव ताल-वाद्य शास्त्र (एक विवेचना)
7. डॉ जयदेव ठाकुर- भारतीय संगीत का इतिहास
8. डॉ अजंना भार्गव -भारतीय संगीत में वाद्यों का चितंन
9. पं. तलेगांवकर -सुलभ तबला वादन शास्त्र

आज का युवा वर्ग और शास्त्रीय संगीत

डॉ. रश्मि पुरियार

कला सृजन ही संगीत है और जीवन एक कलात्मक गीत । जीवन चक्र के चौसठ कलाओं का मूल उद्देश्य परमभाव है। अर्थात सबों में स्वयं को महसूस करना ही कला का उद्देश्य है। संगीत हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग सा है, इसके द्वारा हम अपने जीवन में अनेकों बदलाव को झेल पाने में समर्थ हो पाते हैं। यह हमारी क्षमताओं को बढ़ाता है एवं उसमें नवीन रस का संचार करता है। परन्तु आज इस नवीनता का अर्थ इतना बदलता जा रहा है कि शास्त्रीयता पीछे छूटता जा रहा है। काल-अवधि के बीच का दो वर्गों में जो अलगाव देखा जा रहा है, इसमें इतनी दूरियाँ आ गई हैं कि एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के सोच में एक खाई सी बन गई है।

ये भी सही है कि जीवन में नया पन आए, पर ये नयापन जीवन को सही दिशा दे तो हम आगे बढ़ पायेंगे और अगर दिशा गलत हो तो इसकी चाह हमें सही मार्ग से भटका देगी और जीवन व्यर्थ हो जाएगा। आज का युवा वर्ग इसी नयेपन की चाह में भटक कर अन्तर्मुखी हो गया है। ठीक है कि शास्त्रीय संगीत को समझने में आज का जेट-विमान युग धैर्य खो बैठा है, स्वर, ताल-लय छन्द के बंधन से मुक्त होकर वह गीतों की स्वच्छन्दता में रमने का प्रयास करने लगा है। पर क्या यह गीत टिकाउ है, इसमें खोकर शांति और माधुर्य को तलाशा जा सकता है? तो मेरी सोच में यह गलत है, इसे सही दिशा देना आवश्यक है, सही जामा पहनाना आवश्यक है। धैर्य खोकर इंसान पाता तो कुछ नहीं है पर खो सबकुछ देता है। दूसरी ओर हम यह भी कह सकते हैं कि जीवन के अलग-अलग क्षेत्रें की आज अलग-अलग परिभाषा है, हर पहलू को एक ही नजरिये से नहीं देखा जा सकता, आज के युवा वर्ग अपने नजरिये से वस्तु की परख करते हैं और स्वयं की बनाई राह को सही दिशा मानते हैं। उनका नवीन संगीत भी आज अनेकों कारनामें कर रहा है, जिन्दगी के जोश, होश और गति का प्रतीक है उनका नया संगीत, पर एक बात तो तय है कि विश्व के कई ऐसे क्षेत्रें में जहाँ शास्त्रीय संगीत के द्वारा अनेकों थेरेपी कर मनुष्य की कई बिमारियाँ, पेड़-पौधे का फलना-फुलना, हिंसक जानवरों को शांत करना इत्यादि पर कारगर हुआ है, इसमें नये युग का हिप-हॉप कोई भी कार्य नहीं कर पायेगा। नींद पाने के लिए, मस्तिष्क को शांत करने के लिए, संगीत के शांत धुनों की आवश्यकता होगी, गाय का दूध अधिक हो इसमें अगर उन्हें कोलाहल भरा धुन सुनाया जाएगा तो शायद वो अशांत होकर दुलत्ती मार देगी और सबकुछ बेकार हो जाएगा।

इस स्थान पर उनके तीव्रगामी सोच की परिभाषा व्यर्थ हो जाएगी। वैसे यह भी सत्य है कि वातावरण का प्रभाव हर मनुष्य पर अलग-अलग अनुपात में पाया जाता है, जो व्यक्ति जिस ओर आकर्षित होता है उसमें उसका जेनेटिक प्रवृत्ति मूल कारण बनता है। उन्मुक्तता, स्वच्छन्दता, मस्त- मौलापन जिन्दगी को सिर्फ भटका सकता है, पर सही मार्ग नहीं दिखा सकता।

शास्त्रीय संगीत जो ध्रुव पदों में, मंदिरों एवं देवालयों में पनपी एवं बढ़ी है, उसकी छाप किसी भी विकृत मस्तिष्क को सात्विक एवं शांत बना देती है। उनके खान-पान, जीवन-यापन आदि में पूर्णतया

संगीत विभाग, एस.के. कॉलेज, भागलपुर ।

परिवर्तन लाकर उनको शक्ति भाव में लीन कर देती है और तभी वो सद्गति को पा सकता है।

समस्त ब्रह्माण्ड संगीतमय है, संगीत के नाद में श्रृष्टि के सारे रंग समाहित हैं। संगीत वस्तुतः विपरीत स्वरों का मधुर योग है। राग की रचना, अनुकूल एवं प्रतिकूल लय एवं स्वरों को ही मिलाकर की जाती है। जीवन की हर अनुभूति संगीतमय है। सुख-दुख, आशा-निराशा, अह्लाद-विशाद, ये सारे ही जीवन की पूर्णता हैं। हमें जो प्रिय लगा वो नाद हो गया, एवं जो अप्रिय लगा वो कोलाहल बन गया। लेकिन सत्य तो यह है कि जीवन के सारे सुख न नाद में हैं, न सारे दुख कोलाहल में, जिसने भी श्वेत-श्याम दोनों को अपना लिया वह अपने जीवन को बिना रूके ही खेप लेता है। इन दोनों का समायोजन ही जीवन यात्र को एक सुन्दर गीत की तरह बना देता है। हमारा इतिहास भी इन दोनों के सुन्दर योग का साक्षी है। जैसेः- राजकुमार सिद्धार्थ ने गौतम बुद्ध बनकर सहजता से कठिनता में प्रवेश किया, वर्धमान ने महावीर स्वामी का रूप लिया, कृष्ण और क्राइस्ट ने, लोगोत्से और सुकरात ने जीवन को कठिनाइयों की राह में तलाशा।

अतः सुख और दुख का मिलन ही, एक जीवन की पूर्णता है। जीवन जल धारा है बिना रूके बहते जाना ही पौरूषेय का प्रतीक है और इनके बीच सेतु का काम संगीत करता है, मानव इसी संगीत का सहारा लेकर, पापकर्मों के पश्चाताप द्वारा ईश्वर की उपासना कर अपना ईहलोक सँवार लेता है।

ऋग्वेद में कहा गया है, कि यदि तुम संगीत के माध्यम से ईश्वर को पुकारोगे तो वह निश्चित ही प्रकट होंगे और अपने नेह से तुम्हें भर देंगे।

कृष्ण कहते हैं : न मैं बैकुण्ठ में रहता हूँ और न गोपियों के हृदय में, मैं रहता हूँ संकीर्तन में और गायन में डूबे, प्रेम मद से भरे अपने भक्तों के हृद में।

आचार्य नारद ने भी संगीत के विषय में क है :-

नाहंतिष्ठामिवैकुण्ठे, योगिनांहृदये न च।
मदभक्तायत्र गायीन्त, तत्र तिष्ठामीनारद।

प्लेटो ने कहा है - संगीत मन को पंख देता है कल्पना को उड़ान और जीवन को आनंद एवं शांति

इन सारे उद्धरणों से यही समझा जा सकता कि जीवन के दुखों से, अशांति से उबारने का एक मात्र मार्ग है, भक्ति एवं भाव भरा संगीत। अगर ह अपने बीज मंत्र को ही भूल जाएंगे तो हमारा आस्ति पूर्णतया बिखर जाएगा। हमें उन मंत्रों को संजोक रखना है, न कि उन पर नयेपन का कलेवर चढ़ाक उन्हें कुलषित कर देना।

अतः निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि युवा वर्ग आगे बढ़े, जो अच्छाइयाँ नवीनता में उन्हें समेट ले, पर अपने आस्तित्व को न भूले, वो उनका आधार है, अगर नींव ही खोखली हो जाए तो दीवार का मजबूत होना संशय पूर्ण रहेगा। जि विदेशीपन का कलेवर चढ़ाकर वे आज 'मॉड कहलाना चाहते हैं, वे विदेशी भी आज उस मॉडर्नि से उबकर शांति की तालाश कर रहे हैं। अतः उन यह आग्रह करना उचित होगा कि अपनी संस्कृ और सभ्यता को ही अपनाकर वे अपनी पूर्णता व तलाश करें। तात्पर्य यह है कि जीवन श्रृष्टि व बीज हमारे शास्त्रीय लय और ताल के सामंस्य उपजा है, यही बीज अंकुर कर 'ओंकार' जै शाश्वत मंत्र बन जाता है और अंततः प्रणव न बन कर गा उठता है-

'असतोमासद्गमय, तमसोमाज्योतिर्गमय।

उपशास्त्रीय संगीत एवं सुगम संगीत में प्रयुक्त तालें व उनका बदलता स्वरूप

रजनी

संगीत अनादि काल से हृदयग भावों को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम रहा है। यह हृदयकारी कला है जो कि सभी जीवों में व्याप्त होता है। सृष्टि के उदय के साथ ही संगीत का भी उदय हुआ, जिसका विकास गायन, वादन व नृत्य तीन विधाओं के रूप में हुआ। संगीत को परिभाषित करते हुए पं. शरंगदेव ने कहा है -

गीतं वाद्य तथा नृत्य त्रयं संगीततुच्यते।

अर्थात् - गायन, वादन व नृत्य तीनों का सम्मिलित रूप ही संगीत है।

संगीत जीवन का एक छलकता हुआ छन्द है, एक सहज आनन्द की अनुभूति, खो जाने की प्रक्रिया, तन्मय हो जाने का भाव, लीन हो जाना, अन्य साधना की स्वर लहरी है- संगीत।

संगीत मुख्य रूप से नाद प्रधान कला है जो कि ध्वनि एवं लय पर आधारित है। संगीत में भावों की अभिव्यक्ति स्वर संकेतों के द्वारा की जाती है। संगीत नाद प्रधान कला है एवं आध्यात्मिकता से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। संगीत का मूल रहस्य नादयम है नाद से वर्ण, वर्ण से पद, पद से वाणी की अभिव्यक्ति होती है। अतः सम्पूर्ण जगत नाद के अधीन है नाद की महिता बताते हुए भगवान विष्णु नादर से कहते है-

नाहं वसामि बैकुण्ठे योगिनां हृदय न च।
मद भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारदः।।

हे नारद मैं न तो बैकुण्ठ में रहता हूँ न योगियों के हृदय में अपितु जहाँ मेरे भक्तजन मेरा गायन करते है, मेरा निवास वहाँ होता है।

नाद के विषय में मतंगमुनि ने भी अपना विचार प्रस्तुत किया -

न नादेन बिना गीतं न नादेन बिना स्वराः।
न नादेन बिना ज्ञानं न नादेन बिना शिवाः।।

अर्थात् - न तो नाद के बिना स्वर की उत्पत्ति हो सकती है, न ही नाद के बिना गीत उत्पन्न हो सकता है, न नाद के बिना ज्ञान प्राप्त हो सकता है और न ही नाद के बिना कल्याण हो सकता है।

संगीत का मूल रहस्य नाद है तथा नाद व संगीत एक दूसरे के पूरक है। संगीत के अन्तर्गत गायन, वादन व नृत्य तीनों ही विधाएँ आती हैं।

संगीत का आधारभूत तत्त्व नाद है। संगीत एक ऐसी कला है जिसका आधार स्वर तथा लय है। सुव्यवस्थित ध्वनि जो रस की पुष्टि करे वह संगीत कहलाती है। भारतीय संगीत की मुख्य रूप से तीन धाराएँ प्रचलित हैं -

1. शास्त्रीय संगीत
2. उपशास्त्रीय संगीत
3. सुगम संगीत

उपशास्त्रीय संगीत :-

उपशास्त्रीय संगीत, शास्त्रीय संगीत की एक मुख्य धारा है, जिसके अन्तर्गत शास्त्रीय संगीत व लोक

शोध छात्रा, संगीत विभाग दयालबाग एजूकेशनल इन्सटीट्यूट (डीम्ड यूनिवर्सिटी) दयालबाग, आगरा

संगीत का मिला-जुला रूप होता है। फिल्मों वा नाटकों को और अधिक लोकप्रिय बनाने के लिए उपशास्त्रीय संगीत का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है। शास्त्रीय संगीत व लोक संगीत के मिश्रित रूप के माध्यम से ही उपशास्त्रीय संगीत का जन्म हुआ। इस संगीत में शास्त्रीय संगीत की भाँति नियमों का पालन किया जाता उसी प्रकार लोक संगीत में जनरूचि के अनुसार ही इसका निर्माण किया जाता है। उपशास्त्रीय संगीत, शास्त्रीय संगीत का ही एक मुख्य अंग है। इसके अन्तर्गत ठुमरी, दादरा, कजरी, चैती व टप्पा शैलियाँ आती हैं।

आज उपशास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में ठुमरी एक विकसित व आकर्षक गेय विधा के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत हुई। संगीत के लोक और शास्त्र दोनों रूपों में इसका समावेश हुआ है इसीलिए ठुमरी को शास्त्रीय संगीत और लोक संगीत के बीच की कड़ी मानते हुए इसे उपशास्त्रीय या लाइट क्लासिकल गीत भेद के रूप में वर्गीकृत किया गया।

ठुमरी - ठुमरी एक भाव प्रधान तथा चंचल गति का प्रकार है। इससे श्रृगांर रस का ही निष्पादन किया जाता है। ठुमरी में स्वर, लय व ताल आदि तो प्रमुख हैं परन्तु काव्य पक्ष भी प्रबल रहता है। शब्दों की कामलता तथा उन्हें गाने का ढंग ठुमरी की मुख्य विशेषता है।

दादरा - दादरा गीत प्रकार पूर्ण रूप से शब्द प्रधान गायकी है। इसका गायन मुख्य रूप से दादरा ताल में ही किया जाता है।

टप्पा - टप्पा एक श्रृंगार रस तथा करूण रस प्रधान गायकी है। इस गायकी की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें आलाप नहीं लिया जाता है। कण, खटका मुर्की, आदि का प्रयोग किया जाता है।

कजरी - उत्तर प्रदेश के लोकगीतों में जैसे देवी गीत, विवाह गीत, संस्कार गीत आदि गीतों के अन्तर्गत कजरी एक महत्त्वपूर्ण लोकगीत है। लोकगीत के अन्तर्गत कजरी उत्तर प्रदेश की मुख्य विधाओं में एक गीत मानी जाती है। यह विशेष रूप से भोजपुरी लोकगीतों के अन्तर्गत आती है।

चैती - चैती एक प्रकार का गीत है। इसका गायन मुख्य रूप से चैत्र मास में ही किया जाता है।

सुगम संगीत :-

सुगम संगीत शास्त्रीय संगीत का ही एक अंग है। वह संगीत जिसमें सहजता से सीखा और गाया, बजाया जा सके, जिसे निश्चित नियमों में बाँधा नहीं गया हो, जो लोक में प्रिय हो वह सुगम संगीत कहलाता है। सुगम संगीत के अनतर्गत भजन, गज़ल, लोकगीत व कब्वाली शैलियाँ हैं -

भजन - भजन सुगम संगीत की सर्वमान्य लोकप्रिय गेय विधा है। जिसके अन्तर्गत भक्ति प्रधान पद होते हैं। यह एक प्राचीन शैली है। भजन का प्रयोग ईश्वर की आराधना के लिए किया जाता है।

गज़ल - गज़ल की उत्पत्ति यवन संस्कृति के भारत आगमन पर हुई। भारत में गज़ल को प्रचारित-प्रसारित करने का श्रेय अमीर खुसरो को जाता है।

लोकगीत - लोकगीत, लोक के गीत हैं जिन्हें कोई व्यक्ति नहीं बल्कि पूरा लोक समाज अपनाता है। सामान्यतः लोक में प्रचलित लोकगीतों में रचनाकार अपना व्यक्तित्व समर्पित कर देता है।

संगीत के अन्तर्गत ताल का विशेष महत्त्व है चाहे वह भारतीय संगीत हो या पाश्चात्य। ताल व लय के बिना संगीत अधूरा है। ताल का संगीत के अन्तर्गत विशेष महत्त्व है। ताल का समावेश संगीत के प्रत्येक पहलू में होता है। 'संगीत में समय नापने के साधन को ताल कहते हैं।'

उपशास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त तालें व उनका बदलता स्वरूप :-

दीपचन्दी ताल ठुमरी विधा के साथ प्रमुख रूप से बजाई जाती है -

दीपचन्दी ताल

धा धिं ऽ । धा धा तिं ऽ।
X 2
त तिं ऽ । धा धा धिं ऽ।

बदलता स्वरूप

◆ धा धिं नक । धा धा तिं नक।
X 2
त तिं नक । धा धा धिं तिरकिट।
◆ धा धिं ऽ । धा धा तिं ऽ ।
X 2
त तिं ऽ । धाध तिरकिट धाधा तिरकिट

जतताल का प्रयोग ठुमरी गायकी के साथ किया जाता है -

जतताल

धा ऽ धिं ऽ । धा धा तिं ऽ ।
X 2
त ऽ तिं ऽ । धा धा धिं ऽ।

बदलता स्वरूप

धा नक धिं धिं ऽ । धा धा तिं तिरकिट ।
X 2
त नक तिंतिं ऽ । धा धा धिं तिरकिट ।
0 3

पंजाबी ताल

धा ऽधी ऽक धा । धा ऽधी ऽक धा ।
X 2
धा ऽती ऽक ता । ता ती ऽक धा ।

बलदता स्वरूप

धा ऽधी ऽक धा । धाधा ऽधी ऽक धा ।
X 2
धा ऽती ऽक ता । ताता ऽती ऽक धा ।

दादरा ताल, दादरा गायकी के साथ बजाइ जाती है -

दादरा ताल

धा धी नाना । धा ती ना ।
X 0

बदलता स्वरूप

◆ धा धी नाना । धा ती नाना ।
X 0
◆ धा धीधी ना। धा तीती ना ।
X 0

कहरवा ताल का प्रयोग ठुमरी गायकी के साथ अन्त में लग्गी बजाने हेतु किया जाता है -

कहरवा ताल

धा गे न ति । न क धि न ।
X 0
त तिं ऽ । धा धा धिं ऽ।

बदलता स्वरूप

◆ धा गे धा ती । तो गे धा ती ।
X 0
◆ धिं धिं न ति । न क धि न ।
X 0
◆ धिट ताता तिट धाधा । धिट ताता तिट धाधा
X 0

सुगम संगीत में प्रयुक्त तालें व उनका बदलता स्वरूप :-

कहरवा ताल

धा गे न ति । न क धि न ।
X 0

बदलता स्वरूप

◆ धा धिं नाना धिन । धा तिं ताता तिरकिट।
X 0
◆ धिंऽ तधिं ऽत धाती। तिंऽ तिंतिं ऽत ताती।
X 0
◆ धाती धागे तिन किन । ताती धागे धिन गिन।
X 0

दादरा ताल का प्रयोग मीत, गज़ल व भजन के साथ मुख्य रूप से किया जाता है -

दादरा ताल

धा धी नाना । धा ती ना ।
X 0

बदलता स्वरूप

◆ धाती धाधा तीना । ताती धाधा धीना ।
X 0
◆ धागे तिन किन । ताके धिन गिन ।
X 0

रूपक ताल का प्रयोग गीत, गज़ल व भजन के साथ मुख्य रूप से किया जाता है -

रूपक ताल

ती ती ना । धी ना । धी ना
X 2 3

बदलता स्वरूप

◆ ती ती नाना । धी नाना । धी नाना ।
X 2 3
◆ ती ती ना । धीधी नाना । धीधी नाना ।
X 2 3

एक ताल का प्रयोग गीत, गज़ल व भजन के साथ किया जाता है -

एक ताल

धिं धिं । धागे तिरकिट । तू ना ।
X 0 2
क त्त । धागे तिरकिट । धी ना ।
X 3 4

बदलता स्वरूप

◆ धिं धिं । धागे तिरकिट । तू नाना ।
X 0 2
क त्त । धागे तिरकिट । धीधी नाना ।
X 3 4
◆ धिं धिं । धागे तिरकिट । तू नाना ।
X 0 3
क त्त । धागे तिरकिट । नानातिट नानातिट।
X 3 4

निषकर्ष - निष्कर्ष रूप में कहा जात सकत
कि संगीत की कोई भी विधा हो सभी में तालों
बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है तथा संगीत जगत
लय व ताल का विशिष्ट स्थान है। उपशास्त्री
संगीत व सुगम संगीत मे भी तालों का विशेष मह
है।

सन्दर्भ सची :-

1. संगीत विशारद - लक्ष्मी नारायण गर्ग
2. भातीय संगीत कोश - विमलकान्त राय चौधरी
3. सुलभ संगीत शिक्षा - रघुनाथ तलेगांवकर
4. ताल कोश - गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव
5. तबला पुराण - पं. विजय शंकर मिश्र

भारतीय संस्कृति में नृत्य की मान्यता

डॉ. अंजना झा

नृत्य नयनों का उत्सव है, मन का उल्लास है, तन की तरंग है और आत्मा का अमृत है। नृत्य स्वर की सरगम है, लय की थिरकन है और राग का पराग है। भारतीय संस्कृति में नटराज शंकर और नटनागर श्रीकृष्ण नृत्य विलास के शाश्वत प्रतीक है।[1]

भारतीय संस्कृति जीवन को रागात्मक विधि से जीने का उपदेश देती है। भारतीय सभ्यता में जीवन भार नहीं, आनन्द का उत्सव है। भारतीय ऋषियों ने जीवन के जो मार्ग प्रशस्त किये, उन्हें पर्व और त्योहारों की बन्दनवारों से सजा दिया ताकि मनुष्य के मन में मोद और उत्साह की लौ कभी बुझने न पाये। वह जीवन जिये और आनन्द से जिये।

नृत्य उस मोद की पराकाष्ठा का प्रतीक है। यही कारण है, जब से भारतीय संस्कृति ने पहली सांस ली तब से आज तक नृत्य की सलिला पृथ्वी पर निरंतर बहती चली आ रही है। भारतीय संस्कृति का प्रारंभ वेदों के पूर्व से हो जाता है। तभी तो नृत्य के संदर्भ वैदिक साहित्य में भी देखने को मिलते हैं।

वेदों के सम्बन्ध में विद्वानों का मत है कि 'वेदों की रचना एक साथ न होकर अलग-अलग कालों में हुई। सबसे पहले ऋग्वेद लिखा गया। उसके वर्षों बाद सामवेद की रचना हुई। तदनन्तर यजुर्वेद लिखा गया और बहुत लम्बे अन्तराल के बाद अथर्ववेद लिखा गया।[2]

प्राचीन साहित्य में नृत्य के साथ नाट्य शब्द का प्रयोग भी बहुलता से देखने को मिलता है। वैयाकरणों ने नाट्य शब्द की व्युत्पत्ति और व्याख्या भी की है। सबसे प्राचीन ऋग्वेद है। इसमें एक स्थान पर लिखा है - नृत्यमानों देवता।[3] अर्थात् देवतागण नृत्य करते हैं। ऋग्वेद की एक अन्य ऋचा में उषा की उपमा नर्तकी से दी गयी है।[4]

यजुर्वेद की बाजसनेय संहिता के पुरुषसूक्त में लिखा है - नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषम।[5] अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त के अध्याय 12, प्रकरण 1 तथा मंत्र 41 में भी गायन और नृत्य का उल्लेख है। वैदिक साहित्य में एक स्थान पर विचित्र बात कही गयी है- 'गन्धर्वसंगीतवाद्यादिजनित प्रमोदं प्राप्नोति गन्धर्वः स्वर्गगायकः अर्थात् गन्धर्व जन वाद्य आदि को बजाकर मोद और आनन्द प्राप्त करते हैं और देवताओं को कराते हैं। अतः गन्धर्वो को स्वर्ग का गायक कहा जाता है।[6] अथर्ववेद के ही एक मंत्र में कहा गया है - आनृत्यन्तः शिखण्डिनः गन्धर्वस्याप्सरापतेः। पूरे मंत्र में वर्णन है कि उर्वशी, धृताची, रम्भा, तिलोत्तमा, मेनका आदि अप्सराओं के गन्धर्व पति सिर पर मोर का मुकुट लगाकर नृत्य करते हैं।

अथर्ववेद में एक स्थान पर कहा गया है - यस्याय गायन्ति नृत्यन्ति भूम्याम् मृत्योर्व्यैलवा।[7] अर्थात् आनंदभरी किलकारियों को अपने मधुर कंठ से निनादित करने वाले लोग जिस भूमि में गाते और नृत्य करते रहते हैं वह भूमि धन्य है।

अतः स्पष्ट हो जाता है कि वेदों की रचना से पूर्व ही लोक में नृत्य और गान प्रचलित हो चुका था। साहित्य में नर्तकी की उपमाएं दी जाने लगी थीं, जैसे कि ऋग्वेद की एक ऋचा में उषा के आगमन पर उषा की उपमा नर्तकी से दी है। ऋग्वेद में यह कहा गया है कि देवता-गण नृत्य करते हैं। एक अन्य उद्धरण में गन्धर्वो के गायन-नर्तन की

चर्चा है। साथ ही यह भी कहा गया है कि गन्धर्व स्वर्गलोक के गायक हैं; इससे स्पष्ट है कि नृत्य परमात्मा की वह विलक्षण और अद्‌भुत कला है, जिसका आनन्द स्वर्ग में देवता भी लेते हैं। एक अन्य तथ्य यह भी सामने आता है कि वैदिक-काल में नृत्य करने वाला वर्ग भी अलग से विकसित हो चुका था। साथ ही गायकों का वर्ग भी था। जैसा कि अथर्ववेद में कहा गया है - नृत्ताय सूतं, गीताय शैलूषं अर्थात् उस समय के समाज में नृत्य के लिए सूत तथा गीत के लिए शैलूष वर्ग के लोग हुआ करते थे।

छान्दोग्य उपनिषद में सामवेद से सम्बंधित एक कथा है। उसमें कहा गया है कि महर्षि श्रृंगी ने देवकी पुत्र श्रीकृष्ण को वेदान्त शिक्षा का उपदेश करते हुए गायन और नर्तन की विधियों की दीक्षा दी थी। उस विधि का नाम छालिक्य पड़ा। श्रीकृष्ण छालिक्य नृत्य के अधिष्ठाता थे। वेणु-वादन में सामगान के साथ श्रीकृष्ण ने इस नृत्य का प्रयोग गोपियों के साथ किया था।[8] उसके बाद यादवों ने इस परम्परा का प्रवर्तन किया। आचार्य नन्दिकेश्वर ने अपने ग्रंथ अभिनय दर्पण में भी इस विचार को प्रकारान्तर से प्रस्तुत करते हुए कहा है - पार्वतित्वनुशास्ति स्म लास्यं बाणात्मजामुपाम। तथा द्वारवती गोप्यस्ताभिः सौराष्ट्रयोपिषत।[9] अर्थात् पार्वती ने बाण की पुत्री उषा को लास्य की दीक्षा दी, जिन्होंने सौराष्ट्र द्वारका की अन्य गोपियों को लास्य नृत्य की शिक्षा दी। स्पष्ट है कि सौराष्ट्र में नृत्य का प्रसार बहुत प्राचीन काल में ही हो गया था।

"वैदिक साहित्य के संदर्भ में जिस पर्व का सर्वाधिक उल्लेख किया गया है वह है-समन। समन एक प्रकार का सांगीतिक मेला था, जहाँ आमोद के लिए नारियाँ जाती थी। युवा-युवतियाँ सह-नृत्य करते हुए फैले मैदानों की ओर दौड़ चलते हैं, मृदंग धमक उठते हैं, तरूण-तरूणियाँ एक दूसरे का हाथ पकड़ कर नाचने लगते हैं।[10]

वैदिक सभ्यता में सत्र-यज्ञ हुआ करते थे। यज्ञ की समाप्ति पर बड़ा उत्सव मनाया जाता था। उत्सव में नृत्य-गान की धूमधाम रहती थी। उत्तरवैदिक काल तक आते-आते समाज में वर्ण व्यवस्था प्रारंभ हो गयी। समाज में वर्ग बना दिये गये, उन वर्गों का कार्य निर्धारित कर दिया गया। कार्य के अनुसार उन्हें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्ग के नाम दिये गये। इस सामाजिक परिवर्तन में सदियाँ गुजर गयीं। गायन, वादन, नर्तन करनेवालों को शूद्रवर्ग में रखा गया।[11] नट, नर्तक, गायक, मागध, वाद्यवादक सूत, शैलूष सभी को शूद्रवर्ग में गिना गया। इनके वर्ग में एक से एक श्रेष्ठ कोटि के कलावंत तथा विद्वान हो चुके थे और उस काल में भी थे।

महर्षि पाणिनि का समय ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी माना गया है। पाणिनि से पूर्व समाज में गायन, वादन, नर्तन को शिल्प के अन्तर्गत गिना जाता था। "कौशितकी ब्राम्हण में जहाँ एक स्थान पर कलाओं की विस्तृत सूची प्राप्त होती है, वहीं दूसरे स्थान में 'शिल्प' शब्द के अन्तर्गत केवल गायन, वादन, नृत्य की ही कल्पना की गयी है -विविधों शिल्प नृत्य गीत वादित्र्यम्।

तौर्यत्रिक का अर्थ संस्कृत कोशों में यह दिया हुआ है कि जो व्यक्ति गायन, वादन तथा नर्तन तीनों विद्याओं में सूक्ष्म हो, उसे तौयत्रिक कहते हैं।[12] तौर्यत्रिक शब्द की परम्परा लम्बी रही है। वैदिक काल से चलकर यह ईसा की छठी शताब्दी तक तो स्पष्ट ही दिखायी देती है। 'संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार भवभूति ने भरतमुनि को तौर्यत्रिक सांकार कहा है। नाट्यशास्त्र में जिस प्रकार इसका प्रयोग हुआ है उसका अर्थ है तौर्यत्रिक माने गायन, वादन, नर्तन का विशेषज्ञ। नाट्यशास्त्र से इतर भी इसका प्रयोग नाट्यकला के विशेषज्ञों के लिए हुआ है। वाचस्पत्यम् तथा शब्दकल्पद्रुम में इसका अर्थ है गायन, वादन, नर्तन में प्रवीण व्यक्ति कदविषयक शास्त्र का ज्ञाता।[13]

नये शोधों के आधार पर अनेक भ्रान्तियाँ अब दूर हो चुकी हैं। यह स्पष्ट हो चुका है कि सूत, शैलूष, कृष्णव, तौर्यत्रिक, भरत, नट आदि समाज के विशिष्ट वर्ग थे, जो धीरे-धीरे विकसित और संगठित होते गये। पाणिनि महाशय को अपने समय पर केवल नटों के कुछ सूत्रों की पाण्डुलिपि ही प्राप्त हो पायी होगी, किन्तु पाणिनि में हजारों वर्ष पूर्व लिखित ऐतरेय ब्राह्मण ने यह स्पष्ट कर दिया था कि

भारत में तूर्य-संग्रह नामक ग्रंथ लिखे जा चुके थे।[14] जैसे- नाट्यशास्त्र भी एक संग्रह ग्रंथ है। नृत्य बहुत प्राचीन विद्या है। इसे देवताओं ने अपनाया, गन्धर्वो ने अपनाया, मनुष्यों ने अपनाया। नृत्य का इतिहास वेदों से भी अधिक प्राचीन है।

महर्षि पाणिनि के अष्टाध्यायी पर महर्षि पतंजलि ने ईसा पूर्व दूसरी शती में महाभाष्य की रचना की। पतंजलि ने अपने ग्रंथ महाभाष्य में नट, नर्तक, नर्तकियों तथा अभिनय की चर्चा की। पतंजलि ने लिखा के पहले विशेष अवसरों पर समाज हुआ करते थे। उसके समय में कंसवध और बलिवध नामक दो नाट्य-प्रदर्शन हुए। प्रदर्शन से पूर्व नट और नटिनी मंच पर आकर गायन-वादन के साथ अपने कौतुक देखाकर दर्शकों का ध्यान प्रदर्शन की ओर केन्द्रित करते थे।[15] नटों के उस कौतुक का शिलापट्ट भी पुरातत्व का प्राचीन सामग्री में सुरक्षित है। उनके कौतुक का पुरातात्विक साक्ष्य 'भरत और उनके नाट्यशास्त्र' में मुद्रित है। उस प्रसंग की चर्चा पंडित तीरथराम 'आजाद' की पुस्तक 'कत्थक दर्पण' में भी देखने को मिलती है।

वेदों का ध्येय गायन-वादन-नर्तन की उत्पत्ति, विकास अथवा उनकी व्याख्या करना नहीं था। प्रसंगवश उनमें कहीं नृत्य के, गायन के, वादन के शब्द आ जाते थे। उन शब्दों से यह अवश्य प्रमाणित हो जाता है कि प्रागैतिहासिक काल से ही नृत्य, गायन, वादन आदि भारतीय संस्कृति और समाज के अपरिहार्य अंग बन चुके थे। भारतीय संस्कृति में कला के इन रूपों का बहुत विकास हो चुका था। 'नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि उस परम्परा में एक अवतार पुरुष की भांति आये और नाट्य-शास्त्र को उन्होंने पंचमवेद कह कर समाज में शूद्रवर्ग के उत्थान का ऐसा अद्‌भुत काम किया जो आज भी अपना जयघोष कर रहा है। बल्कि उन्होंने आर्यो के विरूद्ध एक ललित आन्दोलन छेड़ा ताकि ब्राह्मणवादी समाज में उन्हें भी सम्मान प्राप्त हो सके।[16]

उत्तरवैदिक काल तक आते-आते वर्ण व्यवस्था कठोर हो चुकी थी। ब्राहमणों ने नाचने, गानेवाले तथा वाद्यवादकों को शूद्र श्रेणी में रखा। आर्यो ने वेदों को द्विजातीय घोषित किया। वेदों के पठन-पाठन का अधिकार केवल ब्राहमण और क्षत्रियों को दिया गया था। वेदों के समय में नृत्ताय सूतं अर्थात् नृत्य का काम सूतलोग करते थे। जो सूत वैदिककाल में नृत्य का पेशा करते थे। महाभारत काल में रथ चलाने वाले बन गये। कालान्तर में वे कथावाचक भी बन गये। जैसा कि सत्यनारायण की तथा अन्य कथाओं में देखने को मिलता है। बात प्रांरभ होती है - 'सूत जी बोले' नैमिशारण्य वन में सूतों का विद्यापीठ स्थापित हो गया, जहाँ सूतों को कथा-वाचन की शिक्षा दी जाती थी।[17]

उत्तरवैदिक काल में नटों का वर्ग अलग था, नर्तकों का अलग। जब शूद्रवर्ग के सूत नृत्य कला के क्षेत्र में सक्रिय हुए तो नटों ने भी अपने को इस विधि से जोड़ने का प्रयास किया। उनसे पूर्व के समाज में गायन-वादन-नर्तन के क्षेत्र में तौर्यत्रिक वर्ग के लोगों का वर्चस्व था। अब शूद्रों का आन्दोलन उठा और उन्होंने समाज में अपना स्थान ऊँचा बनाने के लिए कठोर प्रयत्न प्रारंभ कर दिये।

महर्षि वाल्मीकि का समय विदेशी विद्वानों द्वारा ईसा पूर्व 1600 वर्ष माना गया है।[18] यदि इसे स्वीकार कर लें तो यह सत्य हमारे समक्ष में आता है कि राम के समय नटों और नर्तकों के वर्ग अलग-अलग थे। वाल्मीकि ने लिखा है कि राम के अभिषेक के समय प्रजा में उत्सव हुआ था।

नटनर्तकसंघानां गायकानां च गायताम्।
यतः कर्णसुखा वाचः शुश्राव जनता ततः।।[19]

इससे स्पष्ट है कि उस समय नट, नर्तक तथा गायकों के वर्ग अलग थे। समाज में तौर्यत्रिक, भरत, नट, सूत, शैलूष, शिलालि, कृष्व आदि अनेक वर्ग थे जो इस कला के विविध अंगों से सम्पृक्त थे।[20] सामाजिक बदलाव प्रकृति का एक अनिवार्य अंग है। प्रकृति हो या समाज, परिवर्तन की क्रिया देश-काल के साथ चलती ही रहती है। सामाजिक व्यवस्था का अनुशासन जब कठोर हो जाता है, तब समाज में एक सहज आंदोलन स्वयं ही उठ खड़ा होता है। कालान्तर में ये सभी वर्ग उठे और समाज में अपना सम्मानपूर्ण स्थान बनाने के लिए प्रयत्न करने लगे।

संदर्भ सूची -

1. भरत और उनका नाट्यशास्त्र, मिश्र डॉ. ब्रजवल्लभ; पृष्ठ 38, उत्तर मध्य क्षेत्र, सांस्कृतिक केन्द्र इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1988।
2. हिन्दू सभ्यता, मुखर्जी प्रो. राधाकुमुद, पृष्ठ 19, राजकमल प्रकाशन लि. दिल्ली, प्रथम संस्करण-1952।
3. ऋग्वेद 5.33-6, आर्य प्रतिनिधि सभा, दीवान हॉल, दिल्ली।
4. ऋग्वेद 1.92-4, आर्य प्रतिनिधि सभा, दीवान हॉल, दिल्ली।
5. अथर्ववेद श्री वाजसनेही संहिता, अध्याय-1, मंत्र संख्या-6 चौखंबा विद्या भवन, वाराणसी।
6. कत्थक दर्पण आजाद, पं. तीरथराम, पृष्ठ 26, नटेश्वर कला मंदिर, दिल्ली।
7. अर्थववेद 12.1.14 आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली।
8. संस्कृत साहित्य का इतिहास, सेठ कन्हैयालाल पौद्दार, पृष्ठ 43, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, 1946।
9. अभिनय दर्पण, आचार्य नन्दिकेश्वर, श्लोक-6, भातखंडे संगीत विद्यापीठ, लखनऊ प्रथमावृत्ति -1946।
10. कत्थक नृत्य शिक्षा, द्वितीय भाग, दाधीच डॉ. पुरु, पृष्ठ-3, बिन्दु प्रकाशन उज्जैन, प्रथम आवृत्ति-1987।
11. अमर कोष, खंड-8, शूद्र वर्ग।
12. संस्कृत इंगलिश डिक्सनरी, सरमोनियर मोनियर नितियम्स, मोतीमहल, बनारसी दास, दिल्ली, देखे 'तौर्यत्रिकम्' शब्द।
13. वायस्पत्यम् तथा शब्दकल्पद्रुम में देखे - तौर्यक्षिकम्।
14. एतरेय ब्राह्मण, (2.25)।
15. कत्थक दर्पण, आजाद पं. तीरथ राम, पृष्ठ-31।
16. भरत और उनका नाट्यशास्त्र, मिश्रा डॉ. ब्रज वल्लभ-63।
17. सत्यनारायण व्रत कथा, पृष्ठ-4।
18. संस्कृत साहित्य का इतिहास, सेठ कन्हैयालाल पोद्दार, पृष्ठ-46।
19. रामायण, महर्षि बाल्मीकि, 2.67.13 गीता प्रेस गोरखपुर, एकादश संस्करण- 1961।
20. कत्थक दर्पण, आजाद पं. तीरथ राम, पृष्ठ-31।

ढाढ़ी परंपरा का इतिहास

गगनप्रीत

भारतीय सभ्यता को जन्म देने वाली धरती पंजाब की एक वीर भूमि के नाम से भी जाना जाता है। इस धरती के कण-कण में संगीत हमेशा से ही मौजूद रहा है। विभिन्न प्रकार के लोक गीतों सूफी संतों की वाणियों, कव्वालियों व गुरवाणी इत्यादि के पवित्र शब्द इस धरती पर सदैव गूँजते रहे हैं। कुदरत के नजारों से भरपूर पंजाब की भूमि पर रहने वाले पंजाब के वासी सरल स्वभाव एवं खुशहाल प्रकृति के मालिक हैं जिनकी रग-रग में मेहनत व जज्बे का रंग मौजूद है। पंजाब के इतिहास से यह भी स्पष्ट है कि यह धरती अनेक कलाओं की जननी है। अतः इसके द्वारा पंजाब वासी अपने जीवन का आनन्द उठाते आ रहे हैं, जिसमें लोक संगीत प्रमुख हैं। पंजाब प्रांत की लोक संस्कृति व सभ्यता का सर्वोच्च रूप यहाँ के लोक संगीत में देखा जा सकता है। लोक संगीत जगत के पंजाबी कलाकारों ने भारतीय संगीत के इतिहास में एक विशेष स्थान कायम किया है। पंजाबी लोक विरासत में लोक गायक कलाकारों की एक विशिष्ट गायन पद्धति है जिसका संबंध लोक कला के साथ है।

पंजाब के लोक गायक कलाकारों में सूफी गायक कव्वाल, तुंबी और किंग गायकी के कलाकार एवं तुम्बे अलगोजे के कलाकर इत्यादि का नाम मिलता है जो कि विभिन्न उत्सवों व समारोहों में अपनी कला की प्रस्तुति देते हैं। इन्हीं लोक कलाकारों की श्रेणी में पंजाबी लोक विरसे के गायक कलाकारों की विशिष्ट गायन पद्धति है जिसको ढाढ़ी कला के नाम से जाना जाता है। इस गायन कला से संबंधित गायक कलाकार वार गायन, लोक किस्से एवम गाथाओं का गायन करते हैं। साहित्य क्षेत्र में वारों की विशेष महत्ता होने के कारण ढाढ़ियों की प्राचीन समय से ही एक अलग श्रेणी रही है।

इस कला का एक महान इतिहास रहा है जिसका प्रमाण 'ढाढी' शब्द से ही मिल जाता है ढाढी कला की परंपरा बहुत प्राचीन समय से चली आ रही है पर इस कला का इतिहास जानने से पहले 'ढाढ़ी' शब्द का अर्थ जानना जरूरी है। आम भाषा में ढड्ड बजा कर योद्धाओं का जस गाने वाले को ढाढ़ी कहा गया है। महान कोश के अनुसार 'ढाढ़ी' शब्द से अभिप्राय ढड्ड बजा कर योद्धाओ की वारें गाने वाले को ढाढ़ी कहा गया है।[1]

राजपूतों के दरबार में भट्ट व ढाढ़ी उनके पूर्वजों की बहादुरी के किस्से वार गायन के रूप में गाया करते थे यह लोक गायन शैली लोगों को प्रिय तो थी ही पर गुरु सहबान ने भी उस समय इसको वार काव्य के रूप में अपनाया। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में 29 बार ढाढ़ी शब्द का प्रयोग हुआ है। गुरु सहबान ने ढाढ़ी शब्द का उल्लेख कुछ इस प्रकार किया है कि,

हऊ ढाढ़ी बेकार कारे लाइया
रात देहि के वार धुरहों फरमाइया।
(श्री गुरु ग्रंथ साहब पृष्ठ 150)

गुरु साहब ने खुद उस परम पिता परमात्मा की प्रशंसा गाने वाले ढाढ़ी के रूप में पेश किया। उन्होंने गुरवाणी में हर जगह खुद को उस परमात्मा की दया द्वारा प्राप्त इलाही वाणी के वाहक के रूप में दर्शाया है। इस प्रकार यह आदेश जो कि वाणी के रूप में

शोध छात्रा, संगीत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

उस परमात्मा से प्राप्त हो रहा है, कुल कायनात तक संचारित करने वाले श्री गुरु नानक देव जी ने अपने आपको केवल संदेश वाहक/ढाढ़ी के रूप में पेश करते हैं, जिसमें सम्पूर्ण महत्व उस संदेश वाणी व शब्द का है। इसी शब्द का प्रचलन गुरु नानक देव जी से लेकर समूह गुरु सहबान तक जारी रहा।[2]

ढाढ़ी कला का इतिहास मानवीय सभ्यता के इतिहास जितना पुराना है। साहित्य के इतिहास में कविता वारतक से पहले ही प्रचार में आ चुकी थी। मनुष्य ने प्रकृति के प्रभाव में ही स्वर निकालने प्रारम्भ कर दिए थे जो धीरे-धीरे राग वंनगियों में बदल गए व राग-बद्धता ने ही राग-वंनगियों को जन्म दिया जो कि हमारी वार्तालाप का आधार बनी। यह तो सभी जानते हैं कि हमारे प्राचीन ग्रंथ लगभग सभी कविताओं में हैं जो कि विभिन्न पद्धतियों में गाये जाते थे जो कि काव्य-रूप में थी। इन्हीं काव्य-रूपों में से एक रूप वार था जिसको लोक गायक गमंतरियों ने साज ढड्ड व रबाब के साथ गाना शुरु कर दिया। यही कारण है कि बहुत समय पहले से ही वारें धुनों पर प्रचलित हैं जो कि गिनती में 9 हैं व जिनकी तरज और गुरवाणी की वारों को इन पर गाने का आदेश हुआ है। ''कहा जाता है कि यह धुनें 7वीं-8वीं शताब्दी में गायी जाती थी और लोग उस समय इन्हें बड़े ही शौक और लगन के साथ सुनते थे। इन वारों के नायक जागीरदारी नजाम की उपज थे व इन में जागीरदारों के द्वारा किये गए कारनामें बहादुरी, प्रशंसा इत्यादि की झलक मिलती थी।[3]

इसके इलावा यह भी माना जाता है कि जिस समय मनुष्य आदिवासी था तब वह उत्साह में आ कर ऊंचे स्वरों में बोलता था, जो ढाढ़ी संगीत का प्रारम्भिक बिन्दू है। इसके बाद जब कबीले होंद में आए तो मानवीय मन में उसके अधिकारों व उन्नति इत्यादि के विचारों के कारण झगड़े शुरु हो गए और जिस के कारण हार-जीत का सवाल भी पैदा हो गया। ऐसी स्थिति में उनको किसी ऐसे स्रोत की जरूरत थी जो उनके अंदर फिर से उत्साह पैदा कर सके। यह काम उस समय गायन का माध्यम द्वारा भट्टों ने निभाया क्योंकि अपनी वीरता-पूवर्क गायकी से वह हारे गए कबीले के सरदारों व नौजवानों को उनके पूर्वजों की वारताएँ सुनाया करते व प्रेरणा देते थे। इसके साथ ही जीत प्राप्त सरदार का गुणगान भी किया जाता है।

सिक्ख इतिहास में ढाढ़ी परंपरा से संबंधित जो जानकारी प्राप्त होती है इसके अनुसार 700 साल तक तो रबाबी कीर्तन की धुन के साथ बीत गए जैसे कि इतने समय तक गुरु दरबार में रबाबी संगीत ही चलता रहा। पर जंग-युद्ध के कारण विरोधी लहरों ने जन्म लिया जिसके कारण सिक्ख लहर को 'मीरी व पीरी' की दो तलवारें धारण करनी पड़ी। इसी समय ही वीर-रसी माहौल सिरजनें के लिए ढड्ड-सारंगी जैसे वाद्य आगे आए क्योंकि इनके कारण भक्ति-भाव के साथ-साथ शक्ति का संचार करना भी संभव हो गया था।

सुचेत रूप से ढाढ़ी परंपरा छेवीं पातशाही श्री गुरु गोबिंद हरगोबिन्द सिंह जी के समय 1595-1644 में उन्नत हुई मानी जाती है। गुरु जी से पहले श्री गुरु अर्जुन देव जी को जब शहीद कर दिया तो उस समय श्री गुरु हरगोबिन्द सिंह जी के बचन थे कि ''अब सिक्ख कौम को वीर-रस की जरूरत है। यह ऐसा समय था जब सिक्ख इतिहास में एक नया मोड़ आया क्योंकि गुरु जी के जीवन काल दौरान सिक्ख कौम को लड़ाई विचारों से नहीं बल्कि औजारों से लड़नी पड़ी, इस लिए गुरु जी ने सिक्खों में वीरता भरने के लिए ढ़ाढ़ी प्रथा कायम की। गुरु जी ने सिक्खों को घुड़-सवारी, तीर-अंदाजी की रूचि के साथ-साथ उनके अंदर के जोश की ज्वाला को भी प्रचण्ड किया। श्री गुरु हरगोबिन्द सिंह जी ने अमृतसर के गाँव सुर के दो ढाढ़ी भाई नत्था व अबदुल्ला को गुरु घर के पहले ढाढ़ी होने का सम्मान दिया। इन दोनों के बारे में एक कथा भी प्राप्त होती है जिस समय भाई बिधी चंद को गुरु जी ने कोई ढाढ़ी जत्था लाने को कहा तो वह गांव सुर के इन दोनों ढाढ़ियों को ले आए। यह दोनो ढाढ़ियों का गायन योद्धाओ की धमनियों में वीर-रस का संचार करता था। गुरु दरबार में जब भी दोनों ढाढ़ी ढड्ड व सारंगी वादयों की संगत के साथ गाते तो संपूर्ण वातावरण वीर-रस से गूंज उठता था। इन्हीं पंगतियों

में ही दोनों ढाढ़ियों के कुशल होने का पता चलता है -

नथ्थे ढड्ड बजाया अबदुल्ला हथ रबाबा
अबदुल्ला ढाढ़ी जस सुणाए।

भाई अबदुल्ला उच्च कोटी के रचनाकार भी थे। उनके बारे में एक विद्वान ने लिखा है कि The name of Abdula a Minstrel occurs with Guru Hargobind Singh. He was a gifted poet and used to sing martiar songs in the Guru's darbar with a view to inspire the sikhs with love of Heroic deeds." [4]

ढाढ़ी नथ्था व अबदुल्ला जी ने पहली चार वारें श्री गुरु हरगोबिन्द सिंह जी की प्रशंसा में लिखी थी। इन ढाढ़ियों द्वारा गाई गई सबसे पहली वार इस प्रकार थी-

"दो तलवारां बद्धियाँ इक मीरी दी इक पीरी दी इस राखी करे वजीर दी हिम्मत बाहाँ कोट गढ़ दरवाजा बलख बखीर दी नाल सिपाही नील नील मार करे ताहीर दी, पग्ग तेरी की जहाँगीर दी।"[5] गुरु दरबार में जब भी यह दोनों ढाढ़ी वार गायन करते तो कायर से कायर भी अपनी कौम के लिए लड़ने के लिए तैयार हो जाता था। गुरु दरबार में उनके द्वारा गाई गयीं कई वारें प्रसिद्ध हुई जैसेः-

सच्चा तखत साह्यों श्री गुरु पाए कै
छब बरनी नहीं जाए कहो क्या राए कै
रवि सस भए मलीन सु दर्स दिखाए कै
श्री गुरु तखत विराज प्रभ ब्याए कै
मीर अब्दुल और नत्था कहै बनाए कै।

भाई नत्था व अबदुल्ला वार गायन के बाद गुरु दरबार में ही श्री गुरु तेग बहादुर जी के पास रहे और जंग, युद्ध इत्यादि की वारों का गायन करते रहे। इसके इलावा भाई बाल, भाई साल जी का नाम भी गुरु घर के ढाढ़ी गायकों में आता है। भाई बाल श्री गुरु अमरदास जी के दरबार में भाई जलाप व भाई साल श्री गुरु अर्जुन देव जी के दरबार में वार गायन किया करते थे।

इस प्रकार मानवता के रहबर श्री गुरु हरगोबिन्द सिंह जी ने ढाढ़ी परंपरा को सुचेत रूप में शुरु किया व ढाढ़ी गायकों को गुरु दरबारों में आश्रय प्रदान किया। इसके बाद दसवीं पाताशाही श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी के दरबार में छबीला व मुकी नाम के दो ढाढ़ियों का ज़िकर मिलता है जिनकी रूचि वीर-रस में वार गायन करना थी। यह सिक्ख कौम के विरसे को संभालने के लिए काव्य प्रसंगों को वारों में बांध कर गाते थे। शहीदों के साके, सूरवीरों के कारनामें व वारें इत्यादि ढड्ड और सारंगी वाद्य की संगत के साथ गायन में प्रमुख रहते थे।

इसी समय ही सुक्खू व बुद्धू नाम के ढाढ़ियों का जिकर भी मिलता है जो कि गुरु जी को मलूके नाम के एक नगर में मिले थे। जिस समय श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी मालवे की धरती पर गए तो गाँव मलूके के इन दोनों ढाढ़ियों ने गुरु जी को ढड्ड व सारंगी के साथ मलवई में एक सद सुनाई जो इस प्रकार थीः-

ढड्ड सारंगी जब लै जाए दोनहु खरे भर अखवाए प्रभु बोले तुम गाए सुनावहु जत्था महेश अपर बल गावहु सुन कर हुक्म दिवाये दोऊ कही सारंगी सुर मिलि सोउ जंगल देस सद हुए जैसे ऊँचे सुर गावन लगि तैसे कच्चा कोठा क्चि वसदा जानी सदा ना मापे नित्त जुआनीचलणा आए होए गुमानी।"[6]

इस दौरान गुरु जी दोनों ढाढ़ियों से बहुत प्रभावित हुए और साथ ही उनको गुरु घर के ढाढ़ी होने का सम्मान दिया। इस तरह ढाढ़ी सुक्खू व बुद्धू ने गुरु घर की रहमतों को प्राप्त किया।

बाद में ढाड़ी परंपरा बंदा बहादुर सिंह से सिक्ख मिसलों तक पूरी तरह से प्रफ्फुल्लित रही। वर्तमान समय में प्रचलित ढाढ़ी परंपरा का आगमन महाराजा रणजीत सिंह जी के शासन काल के दौरान हुआ। यह समय 1780 से 1879 ईः का था। 1879 में जब सिंह सभा लहर शुरु हुई तो ढाढ़ी कला को प्रचार में लाने वाले भाई सुन्दर, भाई लभ्भू व भाई शेर सिंह थे, जिन्होंने ढाढ़ी परंपरा में अपना योगदान दिया। महाराजा रणजीत सिंह ने तो अपने शासन काल के दौरान ही ढाढ़ियों के सरकारी तौर पर भर्ती कर लिया था। 1701 से 1765 का समय 'सिंह सभा लहर' के लिए घोर संकट का समय था क्योंकि ढाढ़ी कला को महंतों के प्रभाव के नीचे आने के कारण काफी नुकसान उठाना पड़ा। पर उस समय के

ढाढ़ियों ने ढाढ़ियों द्वारा ही गाई गई वारों का गायन करना नहीं छोड़ा व समय-समय पर धर्म से जूझने वाले बहादुर सूरमें तैयार किए जिन्होंने हजारों की तादाद में देश व कौम के लिए खुद को कुर्वान कर दिया।[7]

लगभग इस दौरान ही किस्से के रूप में ब्यान की हुई कविताओं को गाया जाने लगा। पंजाबी कवि दमोदर के किस्से 'हीर' के बाद अहमद गुज्जर, मुक्बल, वारस, पीलू, फजलशाह, हामिद शाह, कादरयार इत्यादि कवियों के किस्से गाँव में गाए जाने लगा। कुछ कलाकारों ने ढड्ड सारंगी वादय ढड्ड सारंगी के साथ गाना शुरु कर दिया। इन की गायकी में प्रीत किस्से, लोक गाथाओं का प्रचलन ज्यादा था क्योंकि लोक गाथाओं व किस्सों का प्रचलन बहुत होने के कारण ढाढ़ियों का इनके गायन में रूझान होना स्वभाविक ही था। विभिन्न खुशी के अवसरों पर लोगों द्वारा ढाढ़ियों के अखाड़े लगवाए जाते थे जिन के अंतर्गत शादी-विवाह में इन कलाकारों को साथ ही ले जाते थे। पंजाबी प्रसिद्ध किस्साकार वारस शाह द्वारा लिखे गए एक किस्से में इस का जिक्र प्राप्त होता है:-

चढ़ घोड़ीयां खेडियां गढ़ तोरी
चडे गब्बरू जंज वणाए के ते
काठीयाँ सुरख बनात दीयां हथ नेजे
दारू पी के ध्रग वजाए के ते
कश्मीरी ते दखणी नाद वाजे
भेरी तूतियां, छैणे छणकाए के ते
ढाढ़ी भगतीए, कंजरीए, नकलीए ने
नाले डूम सरोद वजाए के ते।[8]

19वीं सदी से पहले का समय खुशहाली व शांति का समय था। इस दौरान ही ढड्ड व सारंगी के साथ लोक गाथाओं का गायन आम ही हो रहा था। राजनैतिक विवाद का अंत हो चुका था और एक सांझी सभ्यता विकास के पथ पर थी। पंजाबी साहित्य के प्रसिद्ध कवि कादरयार द्वारा रचित किस्से 'पूरन भगत' के अंत में लिखा है कि इह किस्सा पूरन भगत दा कीता कादरयर कोई पडदे वैतां, कोई गावे ढड्ड सारंगीयां नाल।

यहीं ढाढ़ी परंपरा विकास करती हुई अखाड़ों तक पहुँच गई जिस में ढाढ़ी कलाकारों की दो श्रेणियां बन गई जिसमें एक श्रेणी उन कलाकारों की थी जो खुद को गुरु के ढाढ़ी कहलाती थी व जिसका प्रचार सिर्फ सिक्ख धर्म तक ही सीमित था। इस श्रेणी से जुडे ढाढ़ी आज भी सुचेत रूप में ढाढ़ी कला को जीवित रखते हुए इस क्षेत्र में अपना विशेष योगदान दे रहे हैं।

इस के इलावा दूसरी श्रेणी वो थी जो पंजाब की विशाल सभ्यता से जुड़ी हुई थी व पंजाबी सभ्यता की लोक विरासत को ही गायन का विषय बनाया हुआ था। इन ढाढ़ियों के गायन में किस्से, गाथाओं इत्यादि का गायन किया जाता था। यह कलाकार आज भी पंजाब के विभिन्न क्षेत्रों में लगने वाले समारोहों में अपनी कला की प्रस्तुति दे रहे हैं।

इस प्रकार पंजाब की ढाढ़ी परंपरा जो की प्राचीन परंपराओं में से एक है, आज भी कुछ ढाढ़ी कलाकारों की मेहनत व लगन के कारण विकास के पथ पर है। इस कला से सम्बन्धित कलाकारों के पंजाबी लोक गायकी में दिए गए योगदान को भुलाया नहीं जा सकता।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. महान कोप, भाई काहन सिंह, पृ.-525
2. गुरमति संगीत दा संगीत वैज्ञान, पदम वरिंदर कौर- पृ. - 15
3. गुरु घर दे श्रद्धालू, - पंदोहल गुरमेल सिंह, पृ. - 72
4. पंजाब की संगीत परंपरा, पैन्तल गीता, पृ. - 107
5. पंजाबी वारां, पदम प्यारा सिंह, पृ. - 25
6. ढाढ़ी कुलजीत सिंह 'दिलबर' जी से प्राप्त जानकारी के आधार पर
7. सोहन सिंह सीतल, सिंह सिमरजीत, पृ. - 111
8. पंजाब दी लोक ढाढ़ी कला, थूही हरदियाल, पृ. - 20

सांगीतिक चिकित्सा

दत्य प्रकाश

सभी ललित कलाओं में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान है जिसमें गायन, वादन तथा नृत्य तीनों का समावेश होता है-

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते।

संगीत से न केवल आनन्दानुभूति बल्कि इसकी ध्वनिया अन्तःकरण व मनोभावों को प्रभावित करती हैं जिसका सीधा सम्बन्ध सांगीतिक चिकित्सा से है। आज बहुत जोरों से संगीत चिकित्सा का स्वरूप उभरकर सामने आ रहा है जबकि यह प्रक्रिया अत्यन्त प्राचीनकाल से ही प्रयोग में लायी जाती रही है। श्री उमेश जोशी का वक्तव्य है कि तांम्रकाल में जब कोई व्यक्ति बीमार पड़ता था तो उसका उपचार दवा द्वारा नहीं बल्कि संगीत द्वारा किया जाता था।[1]

मध्यकाल में भी सांगीतिक चिकित्सा का प्रचलन था तभी तो तानसेन द्वारा राग दीपक गाये जाने से उत्पन्न हानिकारक शारीरिक प्रभावों को कम करने के लिए उनकी सुपुत्री ने राग मेघ गाकर उन्हें शान्त किया अर्थात् उस समय के कलाकारों को यह पता था कि राग-दीपक गाने से शारीरिक विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती है तथा राग मेघ द्वारा उन विकृतियों को ठीक किया जा सकता है तभी तो उनकी पुत्री ने राग मेघ ही गाया। इससे सिद्ध होता है कि उस समय भी संगीतिक चिकित्सा की परिपाटी प्रचलित थी। प. ओंकारनाथ ठाकुर ने संगीत द्वारा इटली के राजा की अनिद्रा की बिमारी ठीक किया[2]

संगीत के सातों स्वर बात, पित्र व कफ के रागों को ठीक करने में सहायक हैं जैसे-षड्ज व गान्धार से पित्त के रोगों को, ऋषभ से पित्त व कफ-प्रधान रोगों को, मध्यम से वात व कफ-प्रधान रोगों को तथा पंचम से कफ-प्रधान रोगों को ठीक करने में सहायक माना जाता है। वात व पित्त वाले रोगों में श्रृंगार रस के राग खमाज, तिलंग, देश आदि सहायक हैं।[3]

डा. अनिल दफना ने एक म्युजिकल सी.डी. बनायी है जिसका नाम **'माइण्ड पावर म्युजिक'** है इसको सुनने से दिमागी शक्ति बढ़ती है। डा. ताम्बे रोगियों को ठीक करने के लिए दो म्युजिकल सी.डी. का प्रयोग करते है जिसके नाम हैं—**हीलिंग म्युजिक फॉर ऐनर्जी** और **हीलिंग म्युजिक फॉर रिलैक्सेशन।**[4]

Musical therapist cannot prescribe music as the Doctor prescribes a piles. Choice of music must depend upon the accurate evaluation of the various conditioning factors of individual listener. Every listener has his individual taste, his own pattern of associations.[5]

अर्थात रोगों के निदान हेतु कोई भी सांगीतिक चिकित्सा पद्धति तभी लाभकारी सिद्ध होगी जब उसका प्रयोग रोगी के पसन्द के अनुसार हो क्योंकि रोगी के पसन्द के अनुकूल की गई, सांगीतिक चिकित्सा का परिणाम ही निदानात्मक हो सकता है।

संदर्भ सूची-

1. जोशी डा. उमेश -भारतीय संगीत का इतिहास, पृ.-6
2. वर्मा डा. सतीश - संगीत चिकित्सा, पृ.-29
3. 'संगीत' मासिक पत्रिका, जनवरी 1972 का लेख, राग-रागीनियों द्वारा रोग चिकित्सा, लेखक- मधुव्रता मधुगंधा, पृ.-81
4. वर्मा डा. सतीश-संगीत चिकित्सा, पृ.-31
5. वही, पृ.-421

शोध छात्र, जे.आर.एफ., विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा

मिथिला में लोक संगीत की परम्परा

डॉ. पुष्पम नारायण

जगत जननी जानकी की मिथिला, विद्वानों, कवियों की जन्मभूमि रही है। मिथिला का कण-कण संगीत से भरा है। मिथिला के पेड़-पौधों के सुकोमल पल्लवों में संगीत समाया है। मिथिला प्रदेश के पंछियों का संगीत सुबह, मध्यरात्रि, शाम में कर्णरंध्र में समाता रहता है। मिथिला का हर मौसम गाता है जितनी भी ऋतुएं आती हैं जाती हैं, अपने संग संगीत लेकर आती हैं, जाती हैं। मिथिला प्रदेश का व्यक्ति-व्यक्ति गाता है। यहां तक की भैंसवार भैंस की पीठ पर बैठे गाते रहता है। हलवाहे हल चलाते समय गीत टेरते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मिथिला में ही कभी संगीत का उद्‌भव हुआ होगा।

भारतीय संस्कृति में मिथिला का महत्वपूर्ण योगदान है। मैथिली अत्यंत मधुर भाषा है, अतएव यहां प्रचलित लोकगीतों में सरसता अत्यंत हृदयस्पर्शी हैं। मैथिली साहित्य के आरंभ से ही लोक-साहित्य की सामग्री प्राप्त होती है। महाजातक में ब्राह्मणों द्वारा त्योहारों, मेलों आदि के अवसर पर जन-मनोरंजन हेतु उच्च स्वर में गाने की प्रथा का वर्णन है।

विदेह एवं वज्जि राज्य के अधःपतन के उपरांत मिथिला सदैव पराधीनता के गर्त में डूबता उतराता रहा, जिसका भाग्योदय कर्णाट युग में हुआ।[1] इस नये राजवंश की स्थापना के साथ ही संगीत को राजकीय संरक्षण प्राप्त हुआ जिससे इसका काफी विकास हुआ। कर्णाट राजकुल के संस्थापक नान्यदेव स्वयं संगीत शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान थे। उनके शासनकाल में कला को काफी संरक्षण दिया गया। छन्दबद्ध ग्रन्थ 'भरत नाट्यशास्त्र' के प्रणेता स्वयं नान्यदेव ही थे। उक्त पुस्तक में गायन विद्या के सभी पहलुओं पर विशद् विवेचना की गयी है।[2] पुस्तक के अंत में अंकित लेखक परिचय से पता चलता है कि वह 'सरस्वती हृदयालंकार' के प्रणेता थे। उनके उत्कीर्ण अभिलेख से यह भी ज्ञात होता है कि वे 'ग्रंथ महार्णव' के रचयिता थे। उन्होंने लगभग 160 रागों का समावेश अपने ग्रंथ में किया। राजा नान्यदेव द्वारा निर्देशित संगीत पथ को राजा हरिसिंहदेव, कवि शेखराचार्य ज्योतिरीश्वर ठाकुर इत्यादि ने अवाध गति से आगे बढ़ाया। बी.सी. बंगाली के लेख 'भारत ओ चीन' जो विश्वभारती के संग्रहालय में है, उन्होंने लिखा है कि 618 ई. से 907 ई. के बीच बहुत से ब्राह्मण संगीत शास्त्री जानग के नेतृत्व में चीन गये जहां उन्होंने भारतीय संगीत की छाप छोड़ी। बागची का इस विषय पर वाद-विवाद एक नई दिशा को इंगित करता है जिससे यह सिद्ध होता है कि भारतीय संगीतज्ञ जो चीन गए थे उनमें से अधिकांशतः मिथिला के थे।[3]

भारतीय संगीत इतिहास का काल विद्वानों ने 9वीं ई. से 17वीं ई. तक का माना है। भारतीय संगीत के अध्ययन की दृष्टि से इस अवधि को विद्वानों ने महत्वपूर्ण माना है। मिथिला के राजा भी संगीत चिंतक, विद्वान तथा संरक्षक हुए हैं, जिनमें कर्णाट वंश में राजा नान्यदेव से लेकर हरिसिंह देव तक छह पीढ़ियों में संगीत चिंतन की परम्परा रही। जिसे महाकवि विद्यापति ने अपनी पुस्तक 'पुरुष परीक्षा' में इस प्रकार इस वंश के संगीत संरक्षण और ज्ञान की चर्चा की है-

'हरो वा हरि सिंहो वा गीत विद्या विशारदौ
हरिसिंह गते स्वर्गम् गीतवित् केवलं हरः।[4]

विभागाध्यक्ष, विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा।

अर्थात् संगीत के दो ही आचार्य है : 'हर' यानि महादेव या 'हरिसिंह देव'। हरिसिंह देव के स्वर्गवास के पश्चात् अब केवल महादेव ही इस विद्या के आचार्य रह गए है। मिथिला में कर्णाट वंश के संस्थापक राजा नान्यदेव थे। इनका काल इतिहासकारों ने 1097 ई. से 1135 ई. माना है। इन्होंने मिथिलेश्वर की उपाधि धारण की। ये अपने समय में महान संगीतवेत्ता और कला संरक्षक थे। संगीत पर लिखित इनकी दो ग्रंथों की चर्चा मिलती है, गान्धार ग्रामिक श्रुति एवं स्वरों की व्यवस्था नान्यदेव द्वारा ही वर्णित किया गया है।

मिथिला में कर्णाट वंश के अंतिम राजा हरिसिंह देव (राज्यकाल 14वीं सदी) के दरबारी विद्वान ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने 'वर्णरत्नाकर' नामक अपने ग्रंथ में संगीत संबंधी अनेक मौलिक बातों का वर्णन किया है। जिनमें रागों तथा श्रुतियों के वर्णन के साथ, सात प्रकार के गान दोष, चौदह प्रकार के गीत दोष का उल्लेख किया गया है। इन्होंने नृत्य नाम के एक राग का भी वर्णन किया है। वर्ण रत्नाकर में गमक के सात प्रकार बताये गए हैं, जिसके नाम है-लील, कंपित, स्फुरित, त्रिभिन्न, तिरिप, हाथत, आंदोलित। प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर ग्यारहवीं शताब्दी से मिथिला के संगीत का विकास प्रारंभ होता है।[5]

वस्तुतः मिथिलावासियों का उच्चतम आदर्श ही मैथिली संस्कृति की मूल प्रेरणाएं हैं। मैथिली लोक संगीत की सक्रिय गतिविधि तथा प्रचार-प्रसार की दृष्टि से महाराज हरिसिंह देव का राज्यकाल विशेष रूप से उल्लेखनीय है। स्वयं महाराज संगीत शास्त्र के ज्ञाता थे। इसका प्रमाण विद्यापति विरचित पुरुष परीक्षा में 'नृत्य-विद्य-कथा' से मिल जाता है। उनके आश्रित कविशेखर ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने अपने वर्णरत्नाकर में गीत और नृत्य का सांगोपांग सजीव वर्णन किया है जिससे तत्कालीन समृद्ध संगीत साधना का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

महाराज हरिसिंह देव के नेपाल गमन के पश्चात् वहां उनके वंशजों की छत्र-छाया में मैथिल संगीत साधना विशेष रूप से फूलने-फलने लगी। नेपाल में हरिसिंहदेवोपरान्त शक भूपाल (भूपाल सिंह) हुए और उनके बाद हुए रत्नधन तथा दमयन्ती के पुत्र जगद्धर जिन्होंने संगीत-सर्वस्व नामक ग्रंथ की रचना की थी।[6]

मल्ल नरपतियों में जगज्ज्योतिर्मल्ल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्हें भी काव्य और संगीत दोनों का ज्ञान था। इन्होंने मैथिल सम्प्रदायानुकूल 'स्वरोदयटीका', संगीत भाष्कर, संगीत सारार्णव, संगीतचन्द्र, संगीत सार संग्रह आदि अनेक संगीत शास्त्रीय ग्रंथों की रचना की। इनकी 'गीत पंचाशिका' मैथिली राग-रागिणी के स्वर निरूपण की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। रागतरंगिणी से 76 वर्ष पूर्व की इस रचना में जहां मैथिली के रागों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है वहीं लगनी, कोहबर, झूमरि आदि का भी उदाहरण दिया गया है जो उस समय नेपाल में प्रचलित था।

ओइनवार राजपति संगीत के परम अनुरागी हुए। विशेषतः महाराज शिवसिंह जिनके आश्रय में महाकवि विद्यापति ठाकुर ने कोमलकान्त पदावली की रचना की। महाकवि की रचना को जयत नाम के गायन-कलाविद् संगीत की कसौटी पर कसकर उसे लोकप्रियता प्रदान करते थे। महाकवि एवं स्वनामधन्य संगीताचार्य विद्यापति ने मिथिला के संगीत को एक नई दिशा प्रदान किया। चौदहवीं शताब्दी में लोक-शैली के रूप में लोरिक गाथा का प्रचलन था। परंतु विद्यापति का युग मैथिली लोकगीतों का स्वर्ण युग था।

महर्षि याज्ञवल्क्य के अनुसार[7]
वीणा वादन तत्वज्ञः श्रुति जाति विशारदः।
तालज्ञश्चा प्रयासेन मोक्षमार्ग नियच्छति।।
गीताज्ञों यदि गीतेन नाप्रोति परमंपदम्।
रूद्र स्यानुचरो भूत्वा तेनैव सह मोदते।।

अर्थात् जो मोक्ष कठिन वैराग्य से प्राप्त होता है। वह गान विद्या के माध्यम से अनायास ही सुलभ हो सकता है। भारतीय संस्कृति के वैशिष्ट्य और इसकी प्राचीनता को सुरक्षित रखने में मिथिला का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मिथिला की अपनी पृथक सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक एवं ऐतिहासिक परम्पराएं हैं, जिन्हें बनाए रखने में सर्वाधिक श्रेय मैथिली लोकसंगीतों को ही दिया जा सकता है।

उमापति उपाध्याय विरचित 'पारिजात हरणम्' नाटक की भूमिका में स्व. पं. चेतनाथ झा ने लिखा है-''आब ई वक्तव्य जे मिथिला मध्य गान विधाक चर्चा कहिया से। महाशयगण! ब्राह्मणक उत्पत्तिक पूर्वहि सं जखन वेद नित्ये अछि ओ ब्राह्मण सब ब्रह्मचर्यक अवस्थहि सँ भरल, जकर अभ्यास सब ब्राह्मण कें तनिका गान विद्या करतले और जाहि मिथिला मध्य आधा ब्राह्मण यजुर्वेदी ओ आधा ब्राह्मण सामवेदी ताहिठाम गान विधाक कथा कोन।''[8]

उपर्युक्त गद्य का हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है– 'अब यह वक्तव्य है कि मिथिला मध्य गान विद्या की चर्चा कब से शुरू हुई। महाशयगण! ब्राह्मण की उत्पति के पूर्व से ही जब वेद नित्य है और सभी ब्राह्मण ब्रह्मचर्यावस्था से ही वेद गान के अभ्यासी, तब जबसे मिथिला मध्य महर्षि याज्ञवल्क्य विरचित शुक्ल यजुर्वेद, जिस बीच प्रत्येक मंत्र उदात्त, अनुदात्त, स्वरित पुरित, जिसका अभ्यास सभी ब्राह्मणों को उन्हें गान विद्या सहज ही सुलभ हुआ। जिस मिथिला में आधा ब्राह्मण यजुर्वेदी और आधा ब्राह्मण सामवेदी वहां गान-विद्या की कौन कहे।'

मिथिला के संगीतज्ञ पं. महाकवि लोचन ने अपने ग्रंथ 'रागतरंगिणी' में प्रसंगवश छः रागों का उल्लेख किया है-

भैरवः कौशिकश्चैव हिन्दोलो दीपकस्तथा।
श्रीरागो मेघरागश्च षडेते हनुमन्मताः।।[9]

संगीत का प्रभाव पशु पर भी देखा गया है। संगीतज्ञ बैजू बावरा के विषय में कहा गया है कि वे अपने संगीत के प्रभाव से मृग को आकर्षित कर लेते थे। उनके स्वर और वीणा के झंकार से मनुष्य ही नहीं वरन् पशु-पक्षी सभी अपना सुध-बुध खो देते थे। संगीत मनुष्य में ही नहीं अपितु सभी जीवों में आनन्द का आविर्भाव करता है। पद स्वयं ईश्वर का ही स्वरूप है। संगीत मानव के दुख का नाश कर सुख का संचार करता है। ईश्वर का स्वरूप होने के कारण जो व्यक्ति संगीत का अभ्यास व साधनारत होता है उसे तप, दान, यज्ञ, कर्म, योग आदि के कष्ट बिना सहे ही मोक्ष मार्ग प्राप्त होता है।[10]

संगीत की व्यापकता और इसके प्रभाव के विषय में भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद गांधर्व महाविद्यालय के स्वर्ण जयन्ती समारोह के अवसर पर अपने भाषण में कहा था कि कभी-कभी हमें ऐसा महसूस होता है कि विधाता ने हमलोगों में संगीत को इस प्रकार समावेशित कर दिया है कि इसके बिना हमारा न जीना संभव है और न ही हम कोई काम ही कर सकते हैं।[11]

मिथिला का प्राचीन इतिहास बहुत व्यापक है। साहित्य की उत्पत्ति से लेकर संगीत का इतिहास अति प्राचीन है। लोक संगीत लोकजीवन से सर्वदा एक दूसरे से संयोजित रहा है। लोक संगीत समाज में सबसे पहले कब आरंभ हुआ, इस संबंध में कोई क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध नहीं है। प्रायः यह देखा गया है कि सभ्यता एवं संस्कृति का विकास जैसे-जैसे होता गया, गीत-संगीत भी जन-जीवन के संग संबंधित होता गया। स्थान और क्षेत्र के अनुसार नये-नये लय बनते रहे। समाज में यह लय (धुन) अध्ययन अध्यापन से नहीं वरन् अनुकरण मात्र से पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ता गया। पुरुष और महिला समाज के प्रत्येक उत्सव पर लोक संगीत का गान कर अपने अगले पीढ़ी को सिखाते रहे। लोक संगीत सीमा के अंतर्गत नहीं रहकर सदा से स्वतंत्र रहा है। सरलता और भाव-सुन्दरता लोकसंगीत का मुख्य गुण रहा है। मिथिला में अनेक प्राचीन लोक कथा उपलब्ध है, जिसका गीत आज भी जन-जीवन के कण्ठ मध्य अवस्थित है जिसे सुना जाता है। हजारों वर्ष से चला आ रहा मिथिला की लोकगीत परम्परा आज भी स्थापित है।[12]

मिथिला की सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में संगीत का महत्व सर्वोपरि है। यही कारण है कि मैथिली साहित्य का विकास गीत से हुआ एवं इसका इतिहास गीतमय बन सका। मैथिली रागरागिणी का प्राचीनतम उल्लेख 'चर्यापद' में उपलब्ध है। मैथिली रागरागिणी और इस हेतु प्रयुक्त गीत रचना के पश्चात् सुप्रसिद्ध 'गीतगोविन्द' के रचयिता महाकवि जयदेव (1120 ई.) का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। महाकवि विद्यापति की एक उपाधि 'अभिनवजयदेव' भी प्रसिद्ध है।[13]

नेपाल में महाराज हरिसिंहदेव के अनन्तर शुक्रभूपाल (भूपाल सिंह) हुए, तत्पश्चात् रत्नधर और दमयन्ती के पुत्र जगद्धर हुए, जिसने 'संगीत

सर्वस्व' नामक ग्रंथ की रचना की थी। नेपाल के मल्लवंशीय शासकों में अनेक संगीतशास्त्र के मर्मज्ञ व अनुरागी नरपति हुए, जिनका गौरवपूर्ण उल्लेख मुम्बादिक आतंक में प्राप्त होता है। मल्लनरपति में जगज्योतिर्मल्ल (1613ई.-37ई.) विशेष उल्लेखनीय हुए कारण वे काव्य और संगीत दोनों ही विधा के विशिष्ट वेत्ता थे। इनके द्वारा रचित 'गीतपंचाशिका' मैथिली रागरागिनी के स्वरूप निरूपण की दृष्टि में विशेष उल्लेखनीय ग्रंथ है, कारण इसका प्रामाणिक विवरण सर्वप्रथम मिथिला में रचित 'रागतरंगिणी' में प्राप्त होता है। इसकी रचना 1624ई. में हुआ था, जबकि इससे पूर्व नेपाल में 'गीतपंचाशिका' की रचना (150ई.) हो चुकी थी, अर्थात्, 'रागतरंगिणी' से 74 वर्ष पूर्व ही इसकी रचना काल है।

मिथिला में 'रागतरंगिणी' की रचना म. महिनाथ ठाकुर (1668-90ई.) एवं राजकुमार नरपति ठाकुर (1690ई. - 1701 ई.) के लिए हुआ था, जिसके लिए पण्डित लोचन ने 'ध्वनिगानसिन्धु' उपाधि का प्रयोग किया था। महाकवि लोचन के संगीतज्ञ के रूप में इस हेतु विशेष स्थान प्राप्त है, कारण वे पहली बार भारतीय संगीत-धारा में मिथिलादेशीय संगीत का स्वतंत्र व्यक्तित्व की शास्त्रीय विवेचना कर उसके स्वरूप को प्रामाणिक रीति से उपनिबद्ध किया एवं मैथिली पदावली के छन्द एवं मैथिली रागरागिनी के अभेद सम्बन्ध को निरूपित किया।[14]

महाकवि लोचन के पश्चात मिथिलादेशीय संगीतशास्त्रीय ग्रंथ की रचना उपलब्ध नहीं है, परंतु इनसे पूर्व खण्डवला राज्यकुल का मिथिला पर शासन आरंभ होने के अनन्तर मिथिलादेशीय संगीत का आकर-ग्रंथ 'श्रीहस्तमुक्तावली' की रचना हुई थी, जिसका टीका दौहित्र अनन्त के प्रार्थना करने पर घनश्याम ने लिखा था। 'श्री हस्तमुक्तावली' की रचना प्रायः म.म. महेश ठाकुर के पुत्र शुभंकर ठाकुर ने किया था। जिनके द्वारा रचित नृत्य-संबंधी ग्रंथ 'संगीत दामोदर' उपलब्ध है।[15]

महाकवि लोचन ने अपनी रागतरंगिणी के तृतीय तरंग में मैथिल लोकसंगीत तथा मिथिला के अतिविशिष्ट रागों की चर्चा की है। कवि लोचन के अनुसार मैथिली गीत की यात्रा भवभूति से शुरू होती है-

'विख्यात भूदेव सुवंशसूति,
विद्या विभूतर्भवभूत रासीत्।
स देवनामाः किल सिद्धि योगात्,
काव्यं पुराण प्रतिमं चकार।।'[16]

प्रसिद्ध ब्राह्मण वंश में उत्पन्न, विद्या से अलंकृत भवभूति नाम के विद्वान हुए। देवताओं की सिद्धि प्राप्त कर उन्होंने पुराणोपम काव्य की रचना की। उसके काव्य को पढ़कर सुमति के कलाविद् ने उसे कथा का स्वरूप दिया और तत्कालीन राजाओं को जाकर सस्वर सुनाया। इस प्रकार सुमति कथक कहलाने लगे।

'अतस्त दानीं सुमतिः कलावान्।
कायस्थसुनूः कथकोः वभूव।।'[17]

सुमति के पुत्र उदय हुए। उदय के पुत्र जयत को महाराज शिवसिंह ने पाण्डितवर कविशेखर विद्यापति के निकट रहने का आदेश दिया। इन्हीं संगीत वेत्ताओं ने स्वर समूहरूपी समुद्र के भीतर पैठकर जागृत सुन्दर स्वर समूह के द्वारा विकसित अनेक रागों की उद्भावना की। उस गान के लिए महाकवि विद्यापति के द्वारा जो ध्रुवपद बनाया गया, उसे गानेवाले सर्वप्रथम गायक जयत हुए।

'तज्ज्ञानार्थं तु विद्यापति कवि कृतिना कल्पितास्तु ध्रुवायाः।
तासामेकोग्र-गाताभवदिह जयतः संसदि श्रीनृपस्य।।'[18]

जयत के सुपुत्र कृष्ण पिताश्री के समान ही गुणज्ञ, कलामर्मज्ञ और संगीत शास्त्र के ज्ञाता हुए। अपने गुणों के कारण वे गायक नियुक्त हुए।

जगतादजनि वितृष्णः कृष्णो निजदेशि गायकः सदसि।[19]

इनसे उत्पन्न हुए निर्मल बुद्धि वाले, कामदेव के समान कायाधारी गायक श्रेष्ठ, उत्कृष्ट ज्ञानवान पं. हरिहर मल्लिक। इनके तीन पुत्र खंगराम, घनश्याम तथा बल्लीराम हुए। इन तीनों में घनश्याम गायक हुए। गायक पुत्र घनश्याम को भी तीन पुत्र-रत्न प्राप्त हुए। लच्छिराम, राघवराम तथा टीकाराम। दैवयोग से ये तीनों पुत्र संगीतज्ञ हुए और स्वदेशी रागों को गाने वाले हुए।

'रामान्ता लछि-राघव, टीकाख्याः शील सम्पदः।
स्वदेशि गायकास्ते तु घनश्याम सुतास्त्र्यः।'[20]

महाकवि पं. लोचन ने विद्यापति कवि की काव्य रचनाओं में तथा उनके अनुगमन करती लिखी गई तत्सदृश प्रसिद्ध गीतों में प्रयुक्त रागों को श्रमपूर्वक संकलित किया है तथा 'एतद्देशीय राग' की संज्ञा देकर उनका नामोल्लेख भी किया है।

भैरवी, बड़ारी, कौशिक, देशाख, सुखदायक रामकली, ललिता, केदार, कामोद, श्री राग, वसन्त, मालव, आसावरी, मदमस्त आंखों वाली मलारी, भूपाली, गुर्जरी आदि।

अपनी रागतरंगिणी में महाकवि पं. लोचन ने इन रागों के मैथिल स्वरूप को स्पष्ट किया है तथा उनकी रागिनियों तथा गायन शैली को भी व्याख्यायित किया है। मैथिली लोक संगीत के भीतर यदि कोई गुणज्ञ संगीतज्ञ देखे तो आज भी वे सभी राग किसी न किसी रूप में यहां सुरक्षित मिलेंगे। पूर्व आधार पर गानेवाले मिथिला के कतिपय संगीतज्ञ जीवित नहीं है, परंतु उनकी परछाई के रूप में आज उनके शिष्यों को देखा जा सकता है।

विद्यापति और लोकसंगीत

मिथिलांचल में विद्यापति का युग मैथिली लोकगीतों का स्वर्ण-युग माना जाता है। यद्यपि चौदहवीं शताब्दी में लोक शैली के रूप में लोरिक गाथा का प्रचलन था। कुछ मैथिली लोक साहित्यकार तथा गीतकार विद्यापति को लोक गीतकार नहीं मानते अथवा विद्यापति के पदों को लोकगीत की श्रेणी में नहीं रखते परन्तु परम्परा एवं लोक व्यावहारिकता की दृष्टि से विद्यापति के अधिकांश गीत शुद्ध लोकशैली के हैं। प्रायः सभी अवसरों पर गाये जाने वाले गीत विद्यापति काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है। उनके पदों में भक्ति एवं श्रृंगार रस का बाहुल्य है। विद्यापति रचित महेशवाणी, नचारी, देवी गीत, बटगमनी इत्यादि जगत प्रसिद्ध है। विद्यापति के समकालीन जीवनाथ, भीष्म, कंस नारायण, श्रीधर इत्यादि ने भी लोकगीतों की रचना की। बीसवीं सदी में महेशवाणी से प्रभावित गीतकारों में जीवन झा, विन्ध्यनाथ झा, आनन्द झा का नाम अग्रणी है। भगवती गोसाउनि से संबंधित गीतों की रचना में जीवन झा, तुलापति सिंह, दुर्गादत्त सिंह तथा तिरहुति, समदाउन, चौमासा, लगनी, मलार आदि की रचनाओं में चन्दा झा, जीवन झा, चक्रधर झा, विलोचन झा, आनन्द झा तथा बाबा नागार्जुन का नाम अग्रणी है। लोकगीतों से प्रभावित काव्य रचनाओं के रचनाकारों में डॉ. ब्रज किशोर वर्मा 'मणिपद्म', ईशनाथ झा का नाम भी उल्लेखनीय है।[21]

महाकवि एवं स्वनाम धन्य संगीताचार्य विद्यापति ठाकुर राजा शिवसिंह के समय में ही हुए थे। इन्होंने मिथिला के संगीत को एक नई दिशा प्रदान किया। विद्यापति जयदेव के काव्य रचना से अत्यंत प्रभावित थे, जिन्होंने गीत गोविन्द की रचना में राधाकृष्ण के दिव्य प्रेम को मानवीय आकृति एवं आवरण देकर अध्यात्मवाद का निरूपण किया था। भक्ति और श्रृंगार ये दोनों पक्ष विद्यापति के साहित्य का अत्यंत प्रमुख तत्वों में से एक है। विद्यापति के संगीत में वर्णित राग-रागिनी का जो निरूपण किया गया है, वो राधा और श्रीकृष्ण के अलौकिक प्रेम के आधार पर है। आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति हेतु राधा और श्रीकृष्ण के मानवीय श्रृंगार में भक्ति का निरूपण किया गया है। फलस्वरूप शब्द, स्पर्श, रूप, रसगंध आदि के आधार पर भक्ति साहित्य के निर्माण की एक परम्परा स्थापित हुई जो आज सांगीतिक साहित्य के रूप में उपलब्ध है।[22]

महाकवि कोकिल विद्यापति के गीत आज मिथिला के जन-जन में बसा हुआ है। अबुल फजल ने अपने 'आईने-ए-अकबरी'[23] में मिथिला के संगीत का वर्णन किया है, जिसमें विद्यापति के संगीत को 'देशी संगीत' में सर्वोच्च स्थान प्रदान किया हैं विद्यापति द्वारा रचित गीत साहित्य-गीत होते हुए भी लोकगीत, लोकगीत होते हुए भी साहित्य गीत माना गया है। विभिन्न अवसर पर प्रयुक्त व्यवहार-गीत निश्चित रूप से लोकगीत है, परंतु इसका शब्द विन्यास, अभिव्यक्ति रीति और भाव सौष्ठव निश्चित रूप से साहित्यिक। अबुल फजल अपने आईने-ए-अकबरी में देशी संगीत की चर्चा करते हुए 'लाचारी (नचारी) के विषय में लिखा है। जिसका ग्लैडविन के द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित पंक्ति इस प्रकार है-

"Those in the Tirhut language called Lachari were composed by Bedyapet and are on the violence of the passion of love."[24]

प्रचलित अर्थ में उक्त व्याख्या अशुद्ध प्रतीत होता है, किन्तु जगज्ज्योतिर्मल्ल के 'गीतपंचाशिका' के अनुसार नचारी का जो व्यापक अर्थ है, उसकी पुष्टि होती है। इस प्रकार नचारी के प्रसिद्धि का यह सबल प्रमाण है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि विद्यापति का श्रृंगारिक पद तब तक अखिल भारतीय स्तर पर ख्याति प्राप्त कर चुका था।

उमापति उपाध्याय की रचना मैथिली भाषा में अति प्राचीन है। उन्होंने गेयपदों की रचना की है। स्वयं उनकी कामना है-

"आशूद्रान्तं कवीनां भ्रमतु भगवती भारती भङ्गिभेदें।"

उनकी रचनाओं को शूद्र भी गाते रहे हैं। उमापति के बाद कवि कोकिल विद्यापति का प्रादुर्भाव हुआ। विद्यापति को अभिनव जयदेव इसीलिए अभिहित किया जाता है कि उनके गीत इस मिथिला भूखण्ड की नर-नारी सभी के मुंह से सुने जाते हैं। भगवान शिवभक्ति परक नचारी, तिरहुत, बटगमनी आदि अनंतकाल तक गाये जाते रहेंगे। 'त्रिवेणी' के रचयिता आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपनी पुस्तक में लिखा है- "जयदेव की देववाणी की स्निग्ध पीयूषधारा जो काल की कठोरता में दब गयी थी, अवकाश पाते ही लोकभाषा की सरसता में परिणत होकर मिथिला की अमराइयों में विद्यापति के कोकिल कंठ से प्रकट हुई और आगे चलकर ब्रज के करील कुंजों में फैले, मुरझाये मनों को सींचने लगी।[25]

रमानाथ ठाकुर ने 'टेल्स फ्रॉम विद्यापति' में लिखा है कि-

"Vidyapati Thakur (1350-1440) has been immortal as the great poet who wrote sweet songs in the language actually spoken in the land. He has been called "The Chekoo" of Mithila and his sweet warbling' ushered spring in the Vernacular Literature of Northern India."[26]

त्रिभुवन विश्वविद्यालय काठमाण्डू, नेपाल के पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष श्री कृणचन्द्र मिश्र ने अपनी अभिव्यक्ति में विद्यापति के विषय में कहा है कि "अपनी काव्य-कला की महानता के कारण विद्यापति विश्व के बेजोड़ कवि हैं। सौन्दर्य, प्रेम और श्रृंगार के गायक के रूप में 'मैथिल कोकिल' है। मगर इनके साथ ही वे एक महान सामाजिक सांस्कृतिक व्यक्ति भी है।[27]

मैथिली भाषा ऐतिहासिक विदेह जनपद की भाषा है। इस पवित्र भूभाग को लोक परम्परित काव्य और संगीत ने रसप्लावित किया है। जिसमें हमारे यहां विद्यापति, चंडीदास, शंकरदेव, भीष्म, वंशमणि, पुलकित लाल दास 'मधुर', लाल दास, चंदा झा, भोला लाल दास, मुंशी रघुनंदन लाल दास आदि ने अपनी रचना से इसे सींचित किया। हिमालय के प्राकृतिक सौन्दर्य, पाद - प्रदेश में प्रवाहित कमला-कोशी, गंगा-गंडकी आदि नदियों के कल्लोल, हरा-भरा वन प्रांतर एवं खेत-खलिहानें की समृद्धि सुषमा, शील शक्ति सौन्दर्य से सम्पन्न नायक-नायिकाओं के शौर्य-पराक्रम की भावभूमि में वीर, श्रृंगार एवं करूणा की अंतर्धाराएं, मुक्ताकाश में उड़ते तरूण मेघों के मलार, फागुन और चैत की वासंती सुषमा, उत्तर की हिम हवा और दक्षिण के गेहूं तथा गुलाब के गंधों को समेकित कर लोक कंठों को समर्पित कर दिया जाए तो उन कंठों से जो स्वर स्पंदित होंगे वही हमारा मैथिली लोक संगीत व काव्य होगा। अतः मैथिली लोक संगीत एवं लोक काव्य उतना ही नैसर्गिक है, जितना वनफूल, उतना ही मुक्त है जितना आकाश का पंछी, उतना ही पवित्र और प्रवहमान है जितना की गंगा और कमला की धाराएं। लोक परंपरा एवं शास्त्रीय मान्यताओं के अनुसार मिथिला के उत्तर में हिमालय, दक्षिण में गंगा, पूर्व में कौशिकी तथा पश्चिम में गंडकी प्रवाहित है।

'गंगा बहथि जनिक दक्षिण दिस पूर्व कौशिकी धारा।
पश्चिम बहथि गंडकी, उत्तर हिमवत बल विस्तारा।।[28]

अमता घराना का योगदान :

महाराजा लक्ष्मीश्वर सिंह के समय में, दरभंगा 'संगीत और संगीतज्ञों' का महान केन्द्र था। उन्होंने संगीत कला के विकास के लिए बहुत से वाद्य यंत्र खरीदे

तथा अपने दरबार में देश के प्रमुख संगीतज्ञों की नियुक्ति की। महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह स्वयं सितार के अच्छे वादक थे। वे सितार बड़े ही सुर में बजाते थे और थोड़ा-थोड़ा सुरीला गाना भी गाते थे। उस समय में 'खंडारवाणी'[33] के ध्रुपद गानेवाले कामता मल्लिक, शुद्ध ध्रुपद गानेवाले क्षितिपाल मल्लिक और उनके भाई राजित राम जी, गोबरहारवाणी के देश प्रसिद्ध संगीताचार्य थे, जिन्होंने मिथिला का परचम देश और विदेश में फहराया था। संगीताचार्य मल्लिक मिथिला के एक सुप्रसिद्ध गांव अमता के रहने वाले थे। इनके वंशज आज भी अमता गांव में रहते हैं। जो अमता घराना के नाम से विश्वविख्यात है। सरोद वादक प्रो. चंद्रकांत लाल दास (अंधराठाढ़ी मधुबनी निवासी) ने राधाकृष्ण मल्लिक और करताराम मल्लिक इन दोनों भाईयों के बारे में कहा है कि ये दोनों भाई मूलतः राजस्थान के रहनेवाले थे, जो बाद में अवध नरेश सिराजुद्दौला के यहां रहने लगे। भूपत खां (महारंग) जो नियामत खां (सदारंग) के दूसरे पुत्र थे, इनसे ये दोनों भाई ध्रुपद एवं ख्याल की शिक्षा प्राप्त की। ध्रुपद गायन से इन दोनों भाई की प्रतिभा चमक उठी। जब इन दोनों भाईयों की प्रसिद्धि का समाचार मिथिला नरेश महाराज माधव सिंह (1775-1807 ई.) को प्राप्त हुआ तो इन्होंने अपने करीबी अवध नरेश सिराजुद्धौला से आग्रह कर इन दोनों भाईयों को दरभंगा बुलाया। मल्लिक द्वय ने अपने गायन से मिथिला नरेश को मंत्रमुग्ध कर दिया। प्रसन्न होकर महाराज ने अमता गांव जागीर में इन भाईयों को देकर राजदरबार का गायक नियुक्त कर डाला। यह अमता गांव दरभंगा से 20 मील दूरी पर अवस्थित है। प्रो. दास लिखते हैं-

"The family of Radhakrishna and Karta Ram produced great Dhrupad singers, Veenkars and Pakhawajia and they remained constantly attached to the court of Maharaja of Darbhanga.[29]

दरभंगा के मल्लिक ध्रुपदियों की परम्परा पुरानी मानी जाती है। मल्लिक घराने के पूर्व पुरुषों में कोई दो सौ वर्ष पूर्व राधाकृण और करताराम दो भाई हो गये, जिन्होंने ध्रुपद की तालीम (नेमत खां सदारंग के पुत्र) भूतप खां महारंग से कोई तीस वर्ष तक पायी।[35] इस कथन से प्रो. दास की उक्ति की पुष्टि होती है।

अमता घराना के विषय में प्रो. सी. एल. दास लिखते हैं-

"Ram Chaturji hails from one of the oldest musical families of the country which have nourished classical music for centuries. His ancestors Pandit Radha Krishna and Kartaram came to Darbhanga from the court of Oudh in the last decade of the eighteenth century and did miracles through music. [30]

अमता घराना के मल्लिक ध्रुपदिया में राम नेवाज, सीताराम, राधाकृण, भीम मल्लिक, गजराज मल्लिक, लोचन मल्लिक, करताराम, कन्हैया लाल, नेहाल, खुशी मल्लिक, भरोसा मल्लिक, वेनी मल्लिक, राजाराम मल्लिक, छितपाल मल्लिक, राजित राम मल्लिक, रामेश्वर पाठक, रामचतुर मल्लिक, अभय नारायण मल्लिक, यदुवीर मल्लिक, महावीर मल्लिक, झुमक, रामकुमार, राम लाल, विदुर मल्लिक, सियाराम तिवारी आदि अनेकानेक व्यक्ति का नाम उल्लेखनीय है।

अमता घराना के विख्यात गायक पं. राजित राम शर्मा मल्लिक गायन के साथ-साथ रचना भी पं. मल्लिक ने अपने गुरूदेव क्षितिपल मल्लिक की इच्छा स्वयं स्पष्ट किया है-

'मेरे गुरूदेव की बड़ी इच्छा थी कि जिसमें राग-रागिनी के अनेकों संगीत हो ऐसी एक छोटी-सी संगीत-पुस्तिका की मैं रचना करूं। तथा और भी अनेकों की प्रेरणा और उन्हीं के उत्साह दिलाने से यद्यपि परम पूजनीय श्रद्धास्पद सूर-तुलसी-चैतन्य-नानक, ब्रह्मानन्द, विद्यापति इत्यादि भगवान के परम भक्त और महाकवियों की सूरसागर, विनयपत्रिका प्रभृति संगीत के ग्रंथ मौजूद हैं तथापि अपनी भक्ति का उद्‌गार प्रकट करने के लिए इस 'भक्तिविनोद' पुस्तिका की रचना मैं अपनी टूटी-फूटी तोतली वाणी में की है। मैं कोई कवि नहीं जो मुझे कवि होने का दावा है। तथापि मेरे कुलाम्नाय से जो संगीत चर्चा

होती आयी है उसी के आधार पर मैं इस भक्ति विनोद के रूप में अपना आंतरिक भाव प्रकट किया है।[31]

पं. राजित राम शर्मा मल्लिक को कविश्वर चन्दा झा से भी प्रेरणा मिली थी, जिसका उल्लेख उन्होंने स्वयं किया है-

'वैकुण्ठवासी मैथिली कविशिरोमणि चन्दा झा जी ने राग-रागिणी के विषय में एक पुस्तक की हस्तलिखित कॉपी दिखाया था, सुने हुए के आधार पर 'राग-रत्नाकर' नामक एक संगीत की बालबोधिनी पुस्तक, जिसमें राग-रागिणी का शास्त्रीय रीति से वर्णन हुआ है उसे भी भक्तविनोद के साथ दूसरे खण्ड के रूप में मैंने लगा दी है। इस 'राग रत्नाकर' में राग-रागिणी' की उत्पत्ति तथा स्वर, ताल, मूर्च्छना, राग-रागिणी का स्वरूप इत्यादि संगीत के अनेकों विषयों का वर्णन है।[32]

इसी घराने के पं. रामचतुर मल्लिक मिथिला के पहले संगीतज्ञ हुए जिन्हें भारत के राष्ट्रपति द्वारा वर्ष 1970 ई. में पद्मश्री की उपाधि से सम्मानित किया गया। इन्होंने मिथिला के संगीत को देश के अन्य भाग में प्रचारित करने में अहम भूमिका निभाया। पद्मश्री मल्लिक जी के ध्रुपद एवं धमार की रिकॉर्ड अन्य देश में भी गया है। इसके संबंध में एक उल्लेख द्रष्टव्य है-

"Mr. Herber de Fraysseix, Music representative of the French Radio, made the recording at a studio on S.P. Verma Road.

Pandit Ramchatur Mallick sang two pieces, Alap and Dhrupad in raga Darwari Kanhra and Dhamar in raga Multani. Mr. Abhay Narain Mallick, a disciple of Pt. Mallick, gave a vocal support and the Pakhawaj accampaniment was provided by Mr. Ramasheesh Pathak.

Akademi award winner Padmashree Ram Chatur Mallick record his recital of Dhrupad and Dhamar on the French Radio gramophone for the Unesco. The discs are to be made in Paris.' (The Indian Nation dated 16-9-1976)[33]

अमता घराना मूलतः ध्रुपदियों का है यद्यपि ये लोग होरी और ख्याल भी गाया करते थे। इसी समय भक्ति रस के ललित पदों की रचना करनेवाले और भजन गानेवाले सन्त लक्ष्मीनाथ गोसाई बड़े प्रसिद्ध हुए। इनके अलावा मिथिला के बाबू तंत्रधारी सिंह, राय बहादुर महामाया प्रसाद, आचार्य जानकी प्रसाद राय, पंडित रूपकांत जी, पंडित रामचन्द्र झा, श्री दयानाथ झा एवं रामदेव झा आदि अपने समय के प्रसिद्ध संगीतज्ञ हुए। इन लोगों ने मैथिली लोक संगीत को शास्त्रीय संगीत के साथ आगे बढ़ाने में अपना सहयोग प्रदान किया है।

संदर्भ

1. ठाकुर डॉ. उपेन्द्र, हिस्ट्री ऑफ मिथिला, पृ. 162
2. क्वार्टली जनरल ऑफ दि आन्ध्र हिस्टोरिकल रिसर्च सोसाईटी, 1-55, 56
3. ठाकुर डॉ. उपेन्द्र, हिस्ट्री ऑफ मिथिला, पृ. 162
4. क्वार्टली जनरल ऑफ दि आन्ध्र हिस्टोरिकल रिसर्च सोसाईटी, 1-55, 56
5. मिश्र डॉ. अजय, हिन्दी पदावली साहित्य पर मैथिल लोक संगीत के प्रभाव, पृ.-80
6. मिश्र डॉ. अजय, शोध प्रबंध, पृ.-76
7. उमापति, पारिजात हरणम्, भूमिका, पृ. 2-3
8. लोचनकृत रागतरंगिणी से उद्धृत
9. श्रीवास्तव, हरिश्चन्द्र, प्रभाकर प्रश्नोत्तर, पृ. 130
10. झा डॉ. चण्डेश्वर : मिथिलाक संगीत परंपरा (1963 प्र. संस्करण), पृ. 20
11. श्रीश, डॉ. दुर्गानाथ झा : मैथिली साहित्यक इतिहास (1991), पृ. 11
12. श्रीश, डॉ. दुर्गानाथ झा : मैथिली साहित्यक इतिहास (1991), पृ. 12
13. श्रीश, डॉ. दुर्गानाथ झा : मैथिली साहित्यक इतिहास (1991), पृ. 13
14. कवि लोचन : राग तरंगिणी, तृतीय तरंग, पृ. 65
15. कवि लोचन : राग तरंगिणी, तृतीय तरंग, पृ. 65
16. कवि लोचन : राग तरंगिणी, तृतीय तरंग, पृ. 65
17. झा पं. लोचन : राग तरंगिणी, तृतीय तरंग, पृ. 66
18. झा पं. लोचन : राग तरंगिणी, तृतीय तरंग, पृ. 66
19. काव्या, डॉ. लावण्यकीर्ति सिंह : मिथिला की लोक संस्कृति विशेषांक (शोध पत्रिका), 2007, मिथिला शोध संस्थान, दरभंगा, पृ. 63

20. झा राजेश्वर : विद्यापतिक संगीत में वर्णित नायक-नायिका भेद एवं राग-रागिनी वर्गीकरण, पृ. 55
21. दरभंगा डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, पृ. 124
22. श्रीश डॉ. दुर्गानाथ झा, मैथिली साहित्यिक इतिहास (1991), पृ. 99
23. सिंह, बुन्नीलाल : मिथिला की लोक संस्कृति विशेषांक (शोध पत्रिका), मिथिला शोध संस्थान, दरभंगा, 2007, पृ. 71
24. सिंह, बुन्नीलाल : मिथिला की लोक संस्कृति विशेषांक (शोध पत्रिका), मिथिला शोध संस्थान, दरभंगा, 2007, पृ. 72
25. सिंह, बुन्नीलाल : मिथिला की लोक संस्कृति विशेषांक (शोध पत्रिका), मिथिला शोध संस्थान, दरभंगा, 2007, पृ. 72
26. झा कविश्वर चंदा, मिथिला भाषा चरित रामायण से उद्धृत
27. डॉ. कमल देव : मिथिला की लोकसंस्कृति विशेषांक (शोध पत्रिका), मिथिला शोध संस्थान, दरभंगा (2007), पृ. 86
28. झा डॉ. चण्डेश्वर : मिथिलाक संगीत परम्परा (1963), मैथिली अकादमी, पटना, पृ. 128-129
29. सिंह, गजेन्द्र नारायण : विहार की संगीत परंपरा : एक मूल्यांकन, साप्ताहिक हिन्दुस्तान
30. दास प्रो. सी एल, द इण्डियन नेशन, संडे, जून 20, 1976
31. मल्लिक, राजित रामशर्मा : भक्त विनोद (भूमिका), पृ. 1
32. मल्लिक, राजित रामशर्मा : भक्त विनोद (भूमिका), पृ. 2
33. झा डॉ. चण्डेश्वर : मिथिलाक संगीत परम्परा (1963), मैथिली अकादमी, पटना, पृ. 137

''संगीतकला'' बहुआयामी

डॉ. अश्विनी कुमार सिंह

यह विश्व अनन्त प्रकाश के गर्भ में पलने वाला और उसी की गोदी में खेलने वाला बालक है। ग्रह-नक्षत्रों का, निहारिकाओं का, प्राणी और पदार्थों का निर्वाह इस आकाश की छत्र-छाया में ही हो रहा है। सृष्टि से पूर्ण आकाश ही था, आकाश में ऊर्जा रूप में हलचले उत्पन्न हुई।

प्राचीन काल में ''ध्वनि'' शब्द का अर्थ लोग चमत्कारिक रूप में लेते थे किन्तु धीर-धीरे विद्वानों के प्रादुर्भाव होने पर 8वीं शताब्दी के आसपास सांगीतिक ग्रंथों में संगीतोपयोगी ध्वनि ''नाद'' मानव शरीर में स्थित आत्मा से सम्बद्ध होकर प्रयुक्त हुआ अतः कहा जा सकता है कि ''नाद'' शब्द की धारणा को नया आयाम मिला। विभिन्न नाद दर्शन में नाद से अभिव्यक्ति का जो सिद्धान्त रखा गया उससे संगीत का प्रभावित होना स्वभाविक था। क्योंकि संगीत अभिव्यक्ति की तीन विधाएँ-गीत, वाद्य और नृत्य नाद के अधीन है।

संगीत एक महान तपस्या है जिसे निःस्वार्थ भाव से सिद्ध किया जा सकता है, किन्तु यह व्यवसाय भी है। बहुत से लोग गा बजाकर या नाच-कूदकर इससे अपनी जीविकोपार्जन करते हैं। हमारे यहाँ अनेक अवसरों पर मेले होते हैं। जिनमें संगीत का ऐसा ही रूप देखने को मिलता है। व्यवसायिक कलाकार धन कमाने की भावना से संगीत को यंत्र के रूप में लेते हैं। यहाँ तक की साधु या भिखारी भी संगीत के माध्यम से दान-दक्षिणा प्राप्त करते हैं।

व्यवसाय के रूप में संगीत का एक उत्तम पक्ष है। कुछ लोग संगीत का ज्ञान प्राप्त करके उसे अध्यापन कार्य में बदल लेते हैं। जैसे कोई स्कूल या अकादमी खोलना या किसी विद्यालय या महाविद्यालय में इस विषय का अध्यापक हो जाना, जिससे अनेक छात्रा-छात्राओं को संगीत सीखने का लाभ प्राप्त होता है। ऐसे कलाकार किसी महाविद्यालय नाटक-कंपनी, रेडियो, दूरदर्शन या चलचित्र से भी जुड़ जाते हैं और पूरी अपनी प्रतिभा से बड़े कलाकार के रूप में अपना स्थान ग्रहण करते हैं।

पृथ्वी तथा अंतरिक्ष में उपस्थित तत्वों में तथा मानव शरीर में उपस्थित नाद का मानव द्वारा निरंतर निरीक्षण तथा आत्मज्ञान ही अर्थहीन ध्वनियों से लेकर स्वरों तथा सुरों तक का वैज्ञानिक आधार हे। समस्त कलाओं को ''लय'' की मूलभूत से जोड़ते हुए, उनका मानव के मनस तथा उसी विकासशील जिज्ञासाओं से सम्बन्ध भी इस विषय में दर्शाया गया हैं इसमें गायन, वादन, नृत्य, नाटक, काव्य, साहित्य, चित्रकला इत्यादि कलाओं तथा धर्मों, धार्मिक ग्रंथों तथा दंत-कलाओं में संगीत के सम्बन्ध में व्यक्त आलेख का वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है।

ध्वनि के समस्त पक्षों को प्रस्तुत करते हुए ध्वनि के मूल उद्‌गम स्त्रोतों तथा ध्वनि में तथा बाह्य वातावरण तथा मानव शरीर में उपस्थित भीतर के वातावरण को भी वैदिक विज्ञान के माध्यम से उद्‌गत किया गया हैं ध्वनि उत्पन्न करने वाले तत्वकारक, शारीरिक अवयव वैज्ञानिक है। ध्वनि में ''सन्नाटे'' (Silence) के महत्त्व तथा उसके भीतर उपस्थित नाद को, विद्वानों तथा ग्रंथों की उक्तियों के माध्यम से भी स्पष्ट अध्ययन में किया गया है।

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, फेकल्टी ऑफ परफोर्मिंग आर्ट्स, एम.एम.विश्वविद्यालय, बड़ौदा (गुजरात)

Prana (Naad) is the first experience of cosmic intelligence. Reflected upon by Karma (Language and Action), Parana givis individuality and appears as individual mind thus, the individual mind is found to be a limited reflection of the unlimited cosmic mind or pure intelligence. Just as Prana is the manifestation of eternal ocean of unmainfested being, so mind is the cosmic reflection of intelligence of Karma. This shows that before the creation of mind these existed in principal the agency of Karma. This leads us to conclude that was creation before creation. These existed a day before this day and a night before this might. The cycle of creation and dissolution is the eternal cycle in the eternity of being.

संगीत में मनोविज्ञान का महत्वपूर्ण स्थान है "अगर हम ग्रीक भाषा में मनोविज्ञान शब्द को देखे तो वहाँ "Psyche" का अर्थ "आत्मा" तथा "Logas" का अर्थ "ज्ञान तथा विज्ञान" कहा गया है। इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम "रूडोल्फ गोयकिल" ने 1950 ई. में दार्शनिक रूप में किया हे। शाब्दिक अर्थों में मनोविज्ञान को 'आत्मा का विज्ञान" कहा गया है। मनोविज्ञान का यह अर्थ इसके जन्म से लगभग सोलहवीं शताब्दी के वाद तक भी प्रचलित रहा।[2]

मनोविज्ञान के विषय के आत्मा को विज्ञान (Science of Soul) के रूप में परिभाषित करने पर अनेक तर्क-वितर्क एवं आलोचनाओं का सामना करना पड़ा। जैसे आत्मा का आकार, रूप, स्थिति एवं कार्यों का वैज्ञानिक अध्ययन असंभव है। दैहिक शास्त्र (Physiology) शरीर संरचना में आत्मा की कोई व्याख्या नहीं करता, इसिलिए आत्मा का विज्ञान (Science of Soul) वाद में "मन का विज्ञान" (Science of Mind) के रूप में सामने आया।[3]

संगीत में मनोविज्ञान के साथ-साथ अन्य विधाओं का भी संगीत में योगदान हैं संगीत के द्वारा चिकित्सा का भी स्थान है। संगीत में गायन तथा वादन दोनों पक्ष संगीत चिकित्सा में सहायक होते हैं। टायफायड तथा मलेरिया के लिए हिण्डोल, मारवा तथा पूरिया राग उपर्युक्त है। क्षय रोग में विलावल, रामकल, मुल्तानी आदि तथा हिस्टीरिया में दरवारी, पूरियाँ तथा खमाज उपयोगी है। रक्तचाप में तोड़ी भैरव एवं मेघमल्हार आदि रागों का विशेष महत्व है।[4] संगीत में व्यवसाय के भी काफी मार्ग है आधुनिक युग विशिष्टीकरण का युग है। आज के समय मे प्रत्येक क्षेत्र में असंख्य भाग एवं उपभाग वनकर उसके विशेषज्ञों का निर्धारण एंव शिक्षा-दीक्षा भी उस विशेष भाग-उपभाग के अनुरूप किए जाने का प्रावधान है। संगीत कला में भी विशिष्टीकरण के मत को प्रोत्साहन हेतु अपनाया जा रहा है। जिसके परिणाम स्वरूप अनेक सांगीतिक व्यवसाय हमारे समक्ष आते हैं। इन व्यवसायों एवं जीवन-जगत से इनके सम्वन्धों की चर्चा इस रूप मे की जा सकती है। संगीत शिक्षण एवं इसका व्यवसायिक स्वरूप-किसी भी विद्या का अस्तित्व एवं संवर्धन तभी संभव है जव उसका पीढ-दर-पीढी शिक्षण होता रहे। भारतीय संस्कृति में शिक्षक का पद ब्रह्मा-विष्णु-महेश के समान माना गया है। संगीत जैसी गुरूमुख से सीखी जानेवाली कला में तो गुरू अर्थात् शिक्षक का स्थान सर्वोपरि है। वर्त्तमान समय में विद्यालयों शिक्षक संस्थाओं, विश्वविद्यालयों आदि में अनेक शिक्षक कार्यरत है। ये सभी पूरी तन्मयता से संगीत शिक्षण की सेवा में लीन होकर जीविकोपार्जन कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त आजकल व्यक्तिगत शिक्षण अर्थात् प्राईवेट ट्यूशन भी अन्य विषयों की भाँति संगीत के क्षेत्र में देखने को मिलता है। इस शिक्षण विधि में विद्यार्थी को शिक्षक किसी निर्दिष्ट सथान पर व्यक्तिगत रूप से संगीत शिक्षा प्रदान करते हैं।

आज के युवा पीढ़ी में बुद्धि चातुर्य निःसंदेह विद्यमान है, किन्तु सही तालिम के अभाव में और लम्वी अवधी तक संगीत शिक्षण न मिलने के कारण ये युवक-युवतियाँ कला की पराकाष्ठा पर पहुँचने में असमर्थ है। उचित समय एवं सुव्यवस्थित शिक्षण से अर्थात् एक सुयोग्य कुशाग्र शिक्षक के सानिध्य में विद्यार्थी परीक्षण साधना के रूप में प्राप्त करें तो संगीत एवं संगीतकार दोनों का ही विकास सम्भव है। हमारे समाज में संगीत के शिक्षण सम्बन्धी व्यावसायिक सम्भावनाएँ अन्य सांगीतिक व्यवसायों

से अधिक है। संगीत में आध्यात्म का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। समस्त विभान क्षेत्र मानता है कि वायुमंडल में उत्पन्न कोई भी ध्वनि कभी समाप्त नहीं होता। यह एक कम्पन है जो तरंगों के रूप में हमारे शरीर तथा इस वातावरण में विद्यमान है। यही मानव के मस्तिष्क तथा उसके विवेक को सार्थकता देता है तथा यही सार्थकता उसकी कलाओं में उसकी अभिवस्क्ति का रूप ले लेती है। इसलिए श्रीकृष्ण ने भगवद् गीता में कहा है कि मैं ही अंदर हूँ तथा मैं ही बाहर हूँ।

मैं न किसी से द्वेष न पक्षपात करता हूँ। मैं सभी के लिए समभाव हूँ। भक्त मुझ में बस रहा है और मैं भक्त में बस रहा हूँ -

समोऽहं सर्वभूतेषू नमे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तुमां भक्त्या मति ते तेषु चाव्यहम्।।[5]

यह कथन भी भीतर तथ बाहर के अंतरिक्ष का ही सार्थकता तथा ऊर्जा को प्रकट करता है। संगीत में यही तथ्य सर्वोपरि है।

इसी गुण के धारण करने से एक साधक त्रुटिहीन प्रस्तुति तथा साधन कर सकता है। स्फूर्त तथा शांत चित के लिए भी इस योग अर्थात् सामंजस्य की आवश्यकता होती है। "ओम" शब्द के उच्चारण से शरीर की मुख्य इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी होती है। मस्तिष्क की शक्तियाँ जागृत होती है। श्रद्धा से किया गया यह उच्चारण चेतना को जागृत करता है।[6]

ओम शब्द मानक देह में उपस्थित समस्त तंत्र-तंत्रिकाओं तथा संचार का अपने कंपन तथा उससे उत्पन्न तरंगों द्वारा शुद्ध करता है। "ओम" शब्द में विद्यमान तीनों अक्षर तथा मात्राएँ सभी तरह की ध्वनियों तथा उच्चारणों में प्रत्येक अक्षर के प्रारम्भ, मध्य या अंत में अवश्य रहते हैं। "ओम" शब्द संगीत के अति निकट तथा उसका प्रिय अलंकर है-

ऊँ - अक्षर (ध्वनि) का उद्गम कंठ से माना जाता है।

उ - अक्षर को हृदय से उत्पन्न माना जाता है।

म - अक्षर नाभि से उत्पन्न माना जाता है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. Yogy Maharshi Mahesh, The Science of being and art of living, sunject : What is being, chapter mind and being. P. 43
2. सिन्हा डॉ. वीरेन्द्र सामान्य मनोविज्ञान, पृ. 7
3. तिवारी डॉ. किरण, संगीत एवं मनोविज्ञान, पृ. 8
4. शुक्ला डॉ. शशि, भारतीय शास्त्रीय संगीत में निहित चिकित्सा तत्व, पृ. 242
5. श्रमद् भगवद् गीता, अध्याय श्लोक, 29
6. योग मंजरी, पृ. 9-10
7. तिवारी डॉ. किरण, संगीत एवं मनोविज्ञान, पृ. 137

बीसवीं शताब्दी में संगीत का स्थान

डॉ. प्रेम किशोर मिश्र

संसार प्रगतिशील है। प्रत्येक वस्तु प्रति क्षण प्रगति कर रही है। इसी भाँति हमारा संगीत का संसार भी आदि काल से प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है तभी तो उसका प्राचीन व आधुनिक रूप एक दूसरे से भिन्न है। आज संगीत के प्रचलित स्वरूप का आधार वह मार्ग है जिस पर चलकर उसने आज के युग में पदार्पण किया है। अपने जीवन को गहनतम गहराईयों को पार कर आज संगीत शनैः शनैः प्रगति में लीन है यहाँ तक कि संगीत के पुजारियों की संख्या इतनी अधिक हो चुकी है कि उनकी जीवनियाँ एवं कला-कौशल एक स्वतन्त्र विषय बनता जा रहा है। परन्तु संगीत को इस उच्च स्तर पर पहुँचाने व उसका प्रचार करने का गौरव जितना पं. विष्णु दिगम्बर पलुष्कर जी तथा पं. विष्ण नारायण भारतखण्डे जी को प्राप्त है उतना अन्य को नहीं।

गत चार शताब्दियों मे संगीत क्रमशः इस हीन अवस्था को पहुँच रहा था कि केवल धन सत्ता सम्पन्न विलासप्रिय नराधमों का मनोरंजन मात्र ही अवशेष था। उपरोक्त विभूतियों की कठोर साधना अन्ततः संगीत को उस गर्त से मुक्त करने में सफल हुई जिसके समक्ष जाना भी जन साधारण की दृष्टि में हेय था। जो माता-पिता, संगीतज्ञों की चरित्रहीनता को संगीत के विशेषणों में स्थान देकर अपनी संतान को इस दैवी संपदा से वंचित रखते थे, वे भी इन महापुरुषों में निर्मल चरित्र तथा निरन्तर संघर्ष से प्रभावित हुए और इस प्रकार शनैः शनैः संगीत भजन, कीर्तन का विशद रूप धारण करता हुआ समाज में सम्मानित हुआ।

प्रचार कार्य में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त होने के कारण संगीत को स्थायी रूप देने की इच्छा भी स्वाभाविक थी और इस प्रकार इस युग की प्रथम व अग्रण्य देन संगीत विद्यालयों के निर्माण के रूप में हुई। फलतः पं. भातखण्डे जी ने धनीमनी व्यक्तियों एवं विद्वान कलाकरों की सम्मति से मैरिस कॉलेज ऑफ म्यूजिक की स्थापना लखनऊ में की, साथ ही पं. विष्णु दिगम्बर जी ने पूना में गांधर्व महाविद्यालय की और इलाहाबाद में प्रयाग संगीत समिति की नींव डाली। संस्था के कर्णधारों ने अपने घोर परिश्रम एवं विचारशीलता से संगीत की इस सीमा तक सेवा की। भारतवर्ष की अन्य लगभग 150 संस्थाओं में इसका नाम अग्रगण्य है और जो अब प्रान्तीय एवं केन्द्रीय सरकार की विशेष कृपापात्र बन चुकी है। कारण यह है कि देश विदेशों के विद्यार्थियों ने इस समिति में शिक्षा प्राप्त करके विदेशों में भी इसका नाम उज्ज्वल किया है। फलस्वरूप सरकार ने इसे प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित करने की मान्यता दी तथा विकास योजना की प्रति फलित करने के हेतु अपूर्व आर्थिक सहायता प्रदान करके उसकी सेवाओं का वास्तविक मूल्यांकन किया है।

इस नवीन युग में विद्यार्थियों के मार्ग निर्दिष्ट करने के साथ-साथ उच्चकोटि के कलाकारों की भी यथोचित सेवा करने का विचार सुदृढ़ एवं परिपक्व अवस्था को प्राप्त हुआ। बम्बई, बड़ौदा, कलकत्ता, प्रयाग और जालन्धर आदि स्थानों में संगीत सम्मेलनों के ताँते बँध गये। यातायात के साधन सुलभ होने से कलाकारों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, वाद्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

कला प्रदर्शन करने में अभिरूचि हुई। इस प्रकार सामयिक संगीत सम्मेलनों द्वारा हमारे संगीत को भी प्रोत्साहन मिला और जनसाधारण द्वारा तिरस्कृत उसके विकृत स्वरूप में निहित माधुर्य को जीवन प्राप्त हुआ जो मनोरंजन का विशेष साधन बनता हुआ प्रतियोगिता का विषय बन गया। परिणामतः जो रसिक हृदय संगीत की व्याकरण तथा गणित कौशल की जटिलताओं को सरदर्द समझते थे तथा अभाव से उस ओर ध्यान नहीं दे सकते थे वे भी संगीत के समर्थक और सेवी बन गये।

इस युग में नवीन कलाकारों ने भी जन्म लिया। संगीत किसी एक के बन्धन में न रह कर सभी के लिए समानरूप से ग्रहण करने की कला बन गई है। यह बात दूसरी है कि कलाकार केवल कुछ ही बने। साथ ही ज्यों-ज्यों संगीत मानसिक क्षुधा पूर्ति का साधन बनता जाता था त्यों-त्यों उसके द्वारा धनोपार्जन करने वालों का भी समाज अपनी स्वार्थ सिद्धि के हेतु संगीत का समर्थक एवं सहायक होता जाता था। इससे क्रमशः संगीत में अभिरूचि रखने वालों की संख्या वढ़ती ही रही।

इसके अतिरिक्त बीसवीं शताब्दी में ग्रामोफोन के अविष्कार ने सभी को इच्छित वस्तु प्रदान की, संगीत प्रेमियों को कला मिली, कलाकारों को अत्यधिक यश, संगीतकारों को संगीत संभाले रखने का साधन और धन की इच्छा करने वालों को धन। सिनेमा के प्रचार ने तो संगीत की धारा ही वदल दी। निस्सन्देह इस प्रसार ने जन साधारण की दृष्टि में मार्गीय संगीत का महत्त्व कम कर दिया परन्तु जन साधारण के लिए वह एक प्रिय वस्तु अवश्य वन गई। पुत्र, पिता से अधक सुन्दर होने पर भी शोभित अपने ही स्थान पर होता है। इसी भाँति सिनेमा संगीत यद्यपि सुन्दर है परन्तु उसका स्थान शास्त्रीय संगीत से कभी भी ऊपर नहीं है। वह कितना भी रूचिकर क्यों न हो, शास्त्रीय संगीत का स्थान कभी नहीं ले सकता।

इस युग में ऐसे संगीत प्रेमी उत्पन्न हुए जिन्होंने शास्त्रों की खोज करनी प्रारम्भ कर दी और संगीत की स्थिति को और भी सुदृढ़ एवं संगठित रूप देने के लिए राजकीय सहायता एवं सद्भावना प्राप्त की। राजकार्य एक चक्र के रूप में चलता है। संगीत ने भी उसी सुदर्शन चक्र का रूप धारण कर लिया और चल पड़ा भक्त को रक्षा करने के उद्देश्य से।

रेडियो के अविष्कार ने संगीत को जन साधारण के अत्यन्त निकट की सत्ता प्रदान कीं। संगीत की बिखरी हुई रूप रेखा को अव सुव्यवस्थित रूप प्राप्त हुआ है। कलाकारों की उनकी कला के अनुकूल श्रेणियाँ प्रदान होती हैं। पुरस्कार प्रदान किये जाते हैं। आज उनको अपना संगीत संसार के कोने-कोने में पहुँचा देन के समस्त साधन उपलब्ध हैं। युवकों के लिए पृथक प्रबन्ध है। नारियों के लिए, जिसको ईश्वर की ओर से संगीत एक भूषण के रूप में प्रदत्त है, रेडियो की ओर से विशेष स्थान प्राप्त है।

इस प्रकार सार्वजनिक सेवा के साथ-साथ केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकार ने संगीत को शिक्षा-विभाग में भी विशेष स्थान दिया। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार ने 'संगीत नाटक अकादमी' नामक संस्था को जन्म दिया। इसी संस्था द्वारा अनुसंधान कार्य, शिक्षण संस्थाओं का संगठन, राष्ट्रीय संगीत समारोह का संचालन एवं आयोजन होता है। इन कार्यों में विशेष सफलता प्राप्त करने पर कलाकार को पुरष्कार भी दिए जाते हैं। अच्छे कलाकार बनने वाले युवकों को उनकी योग्यता के अनुसार राजकीय सहायता भी मिलती है उपाधियाँ प्रदान की जाती हैं और भविष्य के लिए अच्छे गुणयुक्त विद्यार्थियों को अनुदान प्रदान कर उच्च संगीतज्ञों से शिक्षा दिलाई जाती है। सरकार की उदारता एवं सद्भावना के प्रतीक कलाकर भी है जो विदेशों में जाकर भारतीय संगीत का मस्तक ऊँचा कर आये हैं, कर रहे हैं और आशा है भविष्य में भी करते रहेंगे।

गुरू शिष्य परम्परा एवं संस्थागत शिक्षण प्रणाली

डॉ. प्रमोद कुमार तिवारी

शिक्षा शब्द संस्कृत की 'शिक्ष्' धातु से बना है जिसका अर्थ है-शिक्षा देना, निर्देश देना। 'मनुस्मृति' में कहा गया है-विद्ययाऽमृतमश्नुते। शिक्षा का अंग्रजी अनुवाद Education है। यह शब्द लैटिन भाषा का है जिसका अर्थ है विकसित करना तथा वह विशिष्ट विधि जो शिक्षा देने के लिए प्रयुक्त की जाए वही शिक्षण प्रणाली है।

वैदिक काल में शिक्षा का एक मात्र स्त्रोत गुरू होता है। अतः शिष्य गुरूगृह या गुरू आश्रम में जाकर विद्या प्राप्त करता था उसे गुरूमुखी विद्या कहा जाता है। वहाँ शिष्य को विद्या के साथ-साथ गुरू द्वारा संस्कार भी दिया जाता था। गुरूकुल में रहकर गुरूमुख से निःसृत वाणी को कठोर अनुशासन, नियमित एवं संयत जीवन व्यतीत करते हुए अनवरत रूप से ग्रहण करते जाना ही शिक्षा का एकमात्र साधन था। संगीत की दृष्टि से इस प्रकार की शिक्षा उचित है क्येंकि संगीत ऐसी कला है जो मस्तिष्क द्वारा कम तथा हृदय द्वारा अधिक ग्राह्य है। अतः मौखिक रूप से प्राप्त, अभ्यास व साधना द्वारा परिपोषित यह विद्या योग के समान ही साधन व साध्य बनकर संगीत को आध्यात्मिक स्तर पर पहुँचा देती है।

विभिन्न भौतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक विषयों की शिक्षा के समान ही कला, सम्बन्धी शिक्षा भी मान व विकास हेतु अनिवार्य हे। शिक्षा जहाँ हमारे भौतिक ज्ञान को परिष्कृत करती है वहीं कलाएँ हमारे व्यवहारिक ज्ञान एवं सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति में वृद्धि करती है। अन्य कलाओं की भांति संगीत एक श्रेष्ठ कला हे। जिसका अपना एक शास्त्र है। ये मौखिक एवं प्रदर्शन-प्रधान कला होते हुए भी अन्य विषयेां की भाँति अध्ययन अनुसंधान एवं अध्यापन का विषय रही है। वैदिक युग से चली आ रही हमारी संगीत परम्परा में गुरू से शिष्य को संगीत की शिक्षा दी जाती थीं इसके प्रश्चात धीर-धीरे संगीत का इतिहास बना, राग बने, ताल बने, शनैः शनैः प्रचार होने लगा। विभिन्न शैलियाँ बनने लगी विभन्न परम्पराएँ बनी, फिर गुरूकुल पद्धति ने हमारे यहाँ एक अहम जगह बना ली।

प्राचीन काल में शिक्षा पूर्णरूप से गुरू पर निर्भर थी एवं क्रियात्मक पक्ष पर अधिक बल दिया जाता था। वैदिक साहित्य में 'साम' प्रशिक्षण के तीन रूप प्रचलित थे।

1. पिता-पुत्र के रूप में
2. गुरू-शिष्य परम्परा के रूप में।
3. गुरूकुल की सामूहिक शिक्षा प्रणाली में।

भारत में संगीत की शिक्षा प्रणाली प्रमुख रूप से दो प्रकार की रही है-एक व्यक्तिगत पद्धति, जिसे गुरूकुल पद्धति के रूप में जाना जाता है और दूसरी संस्थागत पद्धति प्रायः 16वीं सदी के अन्त तक संगीत शिक्षा गुरू शिष्य परम्परा से ही दी जाती रही। यद्यपि संस्थागत शिक्षण की शुरूआत लगभग 1880 ई. के आसपास जामनगर में पं. आदित्यराम, बड़ौदा में मौलाबख्स तथा कलकत्ता में सौरेन्द्र मोहन टैगोर के द्वारा हो चुकी थी। तत्पश्चात् पं. विष्णु नारायण भातखण्डे एवं पं. विष्णु दिगम्र पलुस्कर जी में संगीत शिक्षण में अपना महत्वपूर्ण योगदान किया।

गुरू-शिष्य परम्परा में संगीत की प्रतिभा, योग्यता और लगन से युक्त तथा कलाकार बनने का लक्ष्य रखनेवाले व्यक्ति संगीत की शिक्षा प्राप्त करते थें वे गुरू के प्रति श्रद्धा के साथ परिश्रम और साधना करते थे। दिन-रात संगीत के वातावरण में रहने से संगीत के संस्कार पुष्ट होते थे और पर्याप्त मार्गदर्शन मिलता था। इस पद्धति में आधुनिक अर्थ में विशेष पाठ्यक्रम, पाठ्य पुस्तक परीक्षा प्रणाली, विशेष साधन और सुविधाएँ तथा उपाधि आदि में से कुछ नहीं था। फिर भी अन्त में व्यक्ति कलाकार बनकर

शोध छात्र, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

निकलता था। किन्तु आगे चलकर विकसित घराना पद्धति में इसका दूसरा पक्ष भी था। प्रायः व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास नहीं हो पाता था तथा लगातार एकांगी रह जाता था। समाज में प्रतिदिन व्यक्ति के रूप में जिन गुणों की आवश्यकता होती है उनका विकास न हो पाने से वह समाज से कटा रहता था। व्यक्ति की योग्यता और रूचि होने पर भी कभी-कभी वह गुरू की व्यक्तिगत रूचि, राग, द्वेष और मनमौजीपन का शिकार बन संगीत की शिक्षा से वंचित रह जाता था। इन कारणों से संगीत अन्य विषयों के स्तर का नहीं माना जाता था।

गुरू शिष्य परम्परा से ही आगे चलकर घराना पद्धति अस्तित्व में आई जो गुरू शिष्य परम्परा का ही एक सुव्यवस्थित एवं संगठित रूप था। भारतीय संगीत के इतिहास में वह राजपूतों का शासनकाल था। इसी समय उत्तर भारत में संगीत घराना पद्धति का जन्म हुआ। इस युग में एक कलाकार अपनी कला अपने वंशजों को ही देता था, क्योंकि उसके सामने अपने उत्तराधिकारियों की रोजी-रोटी कि चिन्ता थी। इस प्रकार वंशवाद से घरानावाद की नींव पड़ी।

संगीत शिक्षा गुरूकुल पद्धति के स्थान पर संस्था के माध्यम से दिये जाने का मुख्य प्रयोजन यह है -

1. संगीत को अन्य विषयों के समकक्ष लाना।
2. अनियमितता और मनमौजीपन को दूर रखना।
3. यथासम्भव अधिक सुलभ बनाना।
4. समाज में संगीतज्ञ को पुनः स्थान दिलाना।

वास्तव में गुरूकुल पद्धति की कमियों को दूर करना ही संस्थागत शिक्षण के उद्भव और विकास का मूल कारण रहा है। गुरूकुल पद्धति में यद्यपि पाठ्यक्रम, पाठ्य-सामग्री और मूल्यांकन के लिए कोई निर्धारित क्रम, बंधन अथवा नियम नहीं रहता था, फिर भी गुरू और शिष्य की परिपक्व रूचि, योग्यता और रूचि भेद के अनुसार इन तीनों को समावेश किसी न किसी रूप में होता था। इस प्रकार गुरू-शिष्य परम्परा तथा संस्थागत शिक्षण प्रणाली इन दोनों का संगीत के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

वैदिक काल में गुरू शिष्य के बीच एक आदर श्रद्धा व प्रेम की भावना निहित रहती थी। जो उनके समीप रहने के कारण और अधिक दृढ़ हो जाती थी परन्तु आज ग्रामों व शान्त वातावरण को छोड़कर बड़े-बड़े शहरों में विद्यालय बनाये जाते हैं और विद्यार्थियों को प्रतिदिन केवल कुछ घन्टों के लिए ही गुरू का साहचर्य प्राप्त होता हे। अतः श्रद्धा व प्रेम की भावना उतनी प्रबल नहीं हो पाती। शिक्षकों की अपनी समस्याएँ है जिनके कारण वह न तो उतना आदर्श जीवन व्यतीत कर पाते हैं और न ही शिक्षा के प्रति उतना प्रेम रख पाते। आज का विद्यार्थी घर में अपने माता-पिता के पास रहकर अपनी सम्पूर्ण आवश्यकताओं एवं सुख सुविधाओं व मनोरंजन की सामग्री का लाभ उठाते हुए जीवन व्यतीत करता है और शिक्षा को एक उपलब्धि की वस्तु मानकर ग्रहण करता है।

साधना व तपस्या की एकरूपता को वह नही जान पाता। फिर भी यदि वह चाहे और माता-पिता उसे सही मार्ग दिखाने के लिए उसका मार्ग दर्शन करे तो सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन करते हुए भी वह देशकाल की आवश्यकतानुसार संयमी जीवन, नियमित दिनचर्या और दुर्व्यसन से शिक्षा का पूर्ण लाभ उठाकर सच्चरित्र व सत्यनिष्ठ व्यक्ति बन सकता है।

अन्त में कहा जा सकता है कि गुरू-शिष्य परम्परा में गुरू-शिष्य अथवा उस्ताद शागिर्द सम्बन्ध शुद्ध और पवित्र होता था, उससे कोई व्यक्गित लाभ या स्वार्थ का कोई भी भाव नहीं होता था। गण्डा बाँधने और बँधवाने की रस्म में भी एक शुद्ध धार्मिक भावना होती थी। गुरू बाध्य था अपनी विद्या को स्वीकार और ग्रहण कराने के लिए शिष्य स्वयं एक सुपात्र बने। इस पारस्परिक, सम्बन्ध में प्राचीन आश्रय की शिक्षा की पवित्र भावना का अंश भी था। दर्शन, धर्म, आध्यात्म, ध्यान साधना, कला ज्ञान, गूढ़ विद्या, इन सबकी शिक्षा इस प्रकार गुरू शिष्य को देता था और शिष्य उसका अध्ययन और मनन करता था, यही थी प्राचीन काल की शिक्षा पद्धति।

संदर्भ सूची :

1. "संगीतस्वरित", डा. रमाकान्त द्विवेदी, साहित्यरत्नालय कानपुर प्रथम संस्करण 2004
2. "शिल्पायन" संगीत लेखमाला (सांगीतिक आलेखों एवं शोध निबन्धों का संग्रह) संकलन एवं सम्पादन-श्री संतोष कुमार
3. संगीत मैनुअल, डॉ. मृत्युंजय शर्मा, एच.जी. पब्लिकेशन, नई दिल्ली
4. कलाकुंज भारती (पत्रिका) मई 2014 योगेन्द्रनाथ 'योगी' एवं पद्मकान्त शर्मा, राजेन्द्रनगर, लखनऊ

बचपन में संगीत की उपयोगिता एवं प्रभाव : कुछ महत्त्वपूर्ण पहलू

डॉ. राजेश केलकर

संगीत कला का श्रेष्ठत्व भारतीय संस्कारों में सर्वोच्च एवं सर्वस्वीकृत है और शायद इसी कारण मानवीय जीवन के प्रत्येक महत्वपूर्ण पहलू हो या प्रसंग को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में जोड़ दिया गया है। आज पूरे विश्व की आधुनिक सभ्यता में संगीत के लाभालाभ के विषय में तरह तरह के शोध कार्य हो रहे है, अत्याधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों के माध्यम से संगीत की उपयोगिता निःसन्देह साबित भी हो रही है वहाँ यह कहना आवश्यक होगा की भारतीय संस्कृति में हमेशा संगीत को जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत सभी षोडश-सोहल संस्कारों का अविभाज्य हिस्सा माना जाता था। आज वैज्ञानिक अभ्यास के आधार पर संगीत की विभिन्न उपयोगिता जैसे की व्यक्तित्व विकास, चरित्र निर्माण, शारीरिक एवं मनः स्वास्थ्य, उत्पादकता, कौशल, कार्यक्षमता इत्यादि के लिए नित नए संशोधन हो रहे है। तेजी से आगे बढ़ते जमाने में बच्चों के अंदर भावनात्मकता एवं सामाजिक कौशल तथा कुल मिलाकर चौमुखी विकास होना एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। इसके लिए संगीत बहुत ही उपयोगी माध्यम हो सकता है। यहाँ संगीत का सुमधुर, कर्णप्रिय होना, अधिक तीव्र या जोरदार आवाज़ का न होना अनिवार्य आवश्यकता हें अन्यथा उसका परिणाम विपरीत हो सकता है। क्योंकि हरेक बात को प्रयोगशीलता के नाम पर विकृत करने की एक परम्परा समाज में बन गयी है। उदाहरणार्थ पश्चिमी रॉक म्यूजिक या डीजे इत्यादि की आवाज़ मन को शांत करने के बजाय भड़काने या अनियंत्रित उत्तेजना के लिए उपयुक्त हो सकती हैं। इंटेल इंटेरनेशनल साईंस एण्ड इंजिनियरिंग फेयर द्वारा करीब डेढ़ हज़ार बच्चों पर विभिन्न प्रकार के संगीत के प्रभाव पर अध्ययन किया। शास्त्रीय संगीत और अन्य प्रकार के संगीत जैसे - रॉक भड़काऊ संगीत के द्वारा होनेवाले परिणाम एकदम अलग थे। शास्त्रीय संगीत के प्रभाव में बच्चों के शरीर के श्वेत रक्तकण अधिक पाये जाते है। किसी भी मधुर संगीत के कारण शरीर में डोपामाइन नामक हारमोन का स्राव होता है जो न केवल उत्साहवर्धन होता है पर तनाव भी दूर करता है, स्वास्थ्य बेहतर होता है। संगीत के कारण बच्चों के समाज में अलग से ही न्यूरोलोजिकल एवं शारीरिक पहचान बनती है।

मानवी शरीर पर संगीत के सब से अधिक प्रभाव के पीछे का रहस्य हे "ध्वनि या नाद" की शक्ति। कहते है कि मनुष्य के विकास में सभी ज्ञानेन्द्रियों में हमारे कान (कर्णेन्द्रिय) सब से अधिक प्रभावकारी है, जो कि ध्वनि के ग्राहक और वाहक है। अनेक प्रयोग सिद्ध अभ्यास, सर्वेक्षण अभ्यास इत्यादि के माध्यम से बच्चों और युवाओं के बौद्धिक, सामाजिक, व्यक्तिगत विकास में संगीत बेहद प्रभावकारी है यह सिद्ध हुआ है। अत्याधुनिक तकनीकी साधनों के द्वारा मस्तिष्क के अभ्यास के अलावा में मात्रात्तक एवं गुणात्मक मनोवैज्ञानिक शैक्षिक अध्ययन किया गया। जिससे यह पता लगता है कि संगीत सीखने का कौशल अन्य अनेक प्रकार के कौशल को प्रभावित कर सकता है और विशेष कर के बच्चे और युवाओं के लिए अत्यंत सहायकारी सिद्ध होता है। संगीत से भाषा कौशल, साक्षरता,

विभागाध्यक्ष (कंठ्य संगीत), फेकल्टी ऑफ परफर्मिंग आर्ट्स, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वड़ोदरा

शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक विकास, सृजनात्मकता, आत्मविश्वास, संवेदनशीलता, समाज कौशल, साङ्घिक-सामूहिक भावना, स्व-अनुशासन एवं शांतता-विश्राम इत्यादि के लिए लाभ होता है। यह सब लाभ तभी हो सकते है जब संगीत से आप को लगाव हो और आनंद प्राप्त होता हो। हमारे जीवन में संगीत का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है परन्तु सबसे से महत्व कि बात यह है कि हम संगीत का उपयोग कैसे कर सकते है। संगीत के प्रभाव के संदर्भ में यूरोप एवं अमेरिका में कई महत्त्वपूर्ण संशोधन हुए है। यह अब सिद्ध हो चुका है कि संगीत के कारण मन एवं शरीर संवाद में रहकर कार्य करते है। प्रारम्भिक विकास में बच्चे ध्वनि की सूक्ष्मता, शब्दों के अर्थ इत्यादि समझने लगते है। शिशु अवस्था में बच्चें किसी गीत के अर्थपूर्ण शब्दों को नहीं समझते परन्तु गीत कि धुन की आनन्द लेता है। बच्चें थोड़े बड़े होते ही गायन, वादन या नृत्य के जरिये बच्चे कौशल में तथा स्वयं की अभिव्यक्ति करने में सक्षम होने लगते है। यहाँ तक मस्तिष्क को शान्ति मिलती है और स्मृति अधिकाधिक सक्षम होने लगती है। इन सब से अधिक उन्हें जो विशुद्ध आनंद मिलता है वह एक सबसे महत्त्वपूर्ण बात होती है। विभिन्न संशोधनों के परिणाम स्वरूप संगीत से बच्चों पर अनेक क्षेत्र में सकारात्मक प्रभाव पाये गए है। नीचे इसके कुछ अंश है।

संगीत एवं पढ़ाई-अभ्यास कौशल :-

संगीत से स्मरणशक्ति को बढ़ावा मिलता है और एकाग्रता भी निर्माण होती है। संगीत व गणित का गहरा सम्बन्ध है। वह चाहे भारतीय संगीत में अलंकार निर्मित हो या ताल में निबद्ध बन्दिशों के शब्दों क्रिया या लयकारी हो गणित अपना काम करता है। बल्कि संगीत कला का गणित से करीबी सम्बन्ध है। विद्यार्थी ताल की मात्रा, खाली का अंदाज़, लय, सप्तक इत्यादि को समझ कर फिर उसके आधार पर छोटी सी स्वारावलियाँ, आलाप, छोटी तानें इत्यादि का प्रयोग कर के उन्हें सीख कर आगे अधिक जटिल कृतियाँ पैदा करने में भी सक्षम होते है। अंकों के अंतराल की तरह ही संगीत के स्वरों और लय के मात्रा बिन्दुओं में अंतराल होते हैं। संगीत सीखते समय अप्रत्यक्ष रूप से विद्यार्थियों को भौतिकी सीखने को मिलती है। तंतुवाद्यों को छेड़ने कि क्रिया बच्चों को होर्मोनिक्स एवं सहकम्पन इत्यादि का ज्ञान देती हैं अन्य वाद्यों को सीखते-सीखते उनके वैज्ञानिक सिद्धान्तों को भी समझने का मौका मिलता है। संगीत से इंटेलिजेंस कोशंट (आई क्यू) भी प्रबल होता है। विशिष्ट सांगीतिक पैटर्न से न्यूरो तंत्र सक्षम होता है और अंत में गणित में समझदारी बढ़ाने में फायदेमंद होती है। बच्चों को हम लोरी गाकर बच्चों को सुलाते समय हमें लगता है कि हम उसे सुलाने के लिए गा रहे हे। पर हमें यह पता भी नहीं रहता कि उसी क्षण से उस नन्हें बालक को उसके जीवन में संगीत से जोड़ने कि प्रक्रिया शुरू कर रहे है और ध्वनि की एक भाषा का ज्ञान देना हम शुरू कर रहे है। भाषा सीखने की प्रक्रिया भी ऐसे ही शुरू होती है। कहते है कि विख्यात विज्ञानी अल्बर्ट आन्स्टाइन भी अपनी गणित सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाने के लिए किसी वाद्य इत्यादि बजाकर संगीत का सहारा लेते थे। यहाँ एक बात कहने योग्य रहेगी, कि विशेषतः भारतीय संगीत की प्रस्तुति में स्फूर्त सर्जनात्मकता होती है। ध्रुपद गायक या आगरा घराने के खयाल गायक लय के साथ जिस सजता से खेलकर मुखड़ा पकड़कर 'सम' पर आते है वह अपने आप में एक आश्चर्य की बात होती है। यहाँ पर यह कहना बहुत महत्त्वपूर्ण होगा कि पारम्पारिक घरानेदार गायक-वादक शालेय पढ़ाई में ज्यादातर अनपढ़ ही रहे है। गत शताब्दी के महान गायक अफताब ए मौसीक़ी उस्ताद फ़ैयाज़खान या उस्ताद विलायतहुसैन खान का शालेय शिक्षण न होते हुए भी लय-ताल में इतने प्रवीण थे कि कितने भी कठिन से कठिन तालों में सहजता से गा सकते थे।

आत्म सम्मान एवं आत्मविश्वास :-

संगीत द्वारा बच्चों की अपनी सभी समस्याओं का समाधान चाहे ढूंढा नहीं जा सके पर उन्हें अपने कठिन समय में परिस्थितियों का सामना करने में अवश्य सक्षम बनाया जा सकता है। संगीत द्वारा

बच्चें सामाजिक होने लगते है और साथ-साथ अन्य लोगों में अच्छे सम्बन्ध, मित्रता बना सकते है। अपनी सफलताओं के समय या नाकामी के समय भी अपने आप को सम्हालने में बच्चा सफल हो पाता है। पालकों में अधिकतर मान्यता होती है कि बच्चों को खेल कूद में प्रोत्साहन देने से उनका आत्मविश्वास बढ़ता है। पर ऐसा सभी बच्चों में होना जरूरी नहीं है। यह बात संगीत से भी सिद्ध हो सकती हें संगीत एक ऐसा विषय है कि जो अधिकतर बच्चों को प्रिय होता है। बच्चों को किसी न किसी कला के साथ या विशेषतः संगीत से जोड़कर उनके आत्मविश्वास में वृद्धि लायी जा सकती है। संगीत के द्वारा बच्चों में अपने आप के प्रति सकारात्मकता पैदा होती है और अपनी विशेष पहचान बना पाते है। समूह में तालिम, अभ्यास, प्रस्तुति उनका आत्मविश्वास एवं आत्मसम्मान बढ़ा सकते है। इससे बच्चों की वक्तृत्व क्षमता भी बढ़ती है। अपने आप के प्रति आदर सम्मान भी बढ़ता है।

संगीत एवं शरीर कौशल :

पियानो, सरोद, वीणा, की-बोर्ड, ताल वाद्य, सितार-सरोद जैसे विभिन्न वाद्यों के कारण शरीर के अंगों (हाथ, पंजे ई.) तथा आर्गन-पॉव पेटी, ड्रम्स इत्यादि वाद्य बजते समय मस्तिष्क के साथ इन अंगों के होनेवाले समन्वयन के कारण मोटर कौशल विकसित होता है। इन वाद्यों का बजते समय दिमाग के साथ दोनों हाथों एवं पाँव का संकलन अपने आप में अनुभव का विषय है। इस से शारीरिक और मानसिक व्यायाम अपने आप हो जाता है। गायन से या फूँक वाद्य जैसे कि बांसुरी या शहनाई के बजाने के कारण श्वासोच्छवास में ताकत तथा नियंत्रण हो जाता है। अनायास प्राणायाम हो जाता है। इन वाद्यों के कारण अनजाने में उत्तम शारीरिक व्यायाम हो जाता है। इन वाद्यों को बजाते समय मन एवं शरीर में होनेवाला संकलन उन्हें स्मार्ट बनाता है और कई अन्य शौक जैसे कि नृत्य, खेल इत्यादि सीखना उन्हें आसान बना देता हे। संगीत गाते बजाते श्वसन के साथ-साथ पूरा शरीर लयबद्ध हो जाता है और शरीर, मन, बुद्धि इत्यादि में संकलन और संतुलन का अनुभव करता है।

संगीत एवं रचनात्मकता :-

संगीत सुनने के बाद तुरंत मिलने वाला परिणाम है शांति और शांति ही रचनात्मकता की नींव या जननी है। म्यूजिक इंटेलिजेंस लैब-ज्योर्जिया, अमेरिका के श्री पराग चोरडिया के अनुसार रचनात्मकता के लिए संगीत अनिवार्य चाहे न हो परन्तु सब से बड़ा योगदान देनेवाला माध्यम अवश्य है। उनके अनुसार सिलिकोन वेली के अधिकतर तकनीकि डिजाइनर्स तथा इंजिनियर्स संगीत के साधक-अभ्यासक या चाहक है और कम्प्यूटर क्षेत्र में उनका रचनात्मक योगदान असामान्य है। साइंस और टेक्नोलोजी में अभिनव उत्पादों के लिए आप को रचनात्मक सोच होना आवश्यक है। संगीत इस आवश्यकता के लिए पोषक होता है। संगीत में नवसर्जन की प्रक्रिया में मस्तिष्क अति व्यस्त रहता है और यही हमारी रचना क्षमता बढ़ाता है। नवसर्जन प्रक्रिया के दौरान मस्तिष्क के वह हिस्से निष्क्रिय रहते है जो कि स्वप्न और ध्यान अवस्था में भी निष्क्रिय रहते है और वह हिस्से अधिक सक्रिय रहते है जो कि भाषा एवं मोटर कौशल इत्यादि को नियंत्रित करते है। संगीत में उपयुकत विभिन्न स्वर एवं उनके कोमल तीव्र स्वर तथा सप्तक इत्यादि, लय, ताल के द्वारा विभिन्न स्वरावलियों को गाने से अनंत विभिन्न सांगीतिक आकृतियाँ पैदा होती है। भारतीय संगीत तथा अमरीकी जाज़ संगीत में स्फूर्त सर्जन ही होता हे। यहाँ तक कि भारतीय शास्त्रीय संगीत में तो प्रत्येक क्षण नवसर्जन होता है। शास्त्रीय संगीत सीखने से और रियाज करने से बच्चे की प्रवृत्ति ही बन जाती है कि कुछ न कुछ नवसर्जन करें। इस सर्जनशीलता या रचनात्मकता का प्रतिबिंब उसकी हरेक प्रवृत्ति में झलकता है।

संगीत और समाज कौशल :-

संगीत द्वारा वच्चों को अपने समाज, संस्कृति, परम्परा, मूल्यों और देश से सहज जोड़ा जा सकता है। संगीत सुनने से अलग-अलग समय की भाषा, लहजा,

संस्कार-संस्कृति समझने का मौका मिलता है। जब बच्चे अन्य बच्चों के साथ मिलकर गाना-बजाना सीखते हैं, साधना करते हैं और प्रस्तुत करते है तो उनके अनेक नए मित्र बनते है और कहीं न कहीं समूह-संघ भावना निर्माण होती है। अनेक वाद्यों के अलग सुर, ध्वनियाँ एकसाथ बजकर अलग ही धून पैदा करती है वह भी कहीं न कहीं बच्चों मे संघ भावना निर्माण करती है। इस से परस्पर भावनिक, एकता, प्रेम तथा मित्रतापूर्ण सम्बन्ध दूसरों के साथ परिणामकारक संवाद साधने के लिए श्रवण क्रिया अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। संगीत को सुनकर बच्चे कहीं न कहीं अपनी भावनाओं के साथ संगीत की विविध ध्वनियों का सम्बन्ध जोड़ना शुरू करते है। इसी के कारण दूसरे लोगों की भाषा द्वारा उनके भाव समझने में सफल होते है। इससे ऐसे बच्चे अन्य लोगों के साथ सकारात्मक सम्वाद साध पाते है। परिणामतः बच्चों में आत्मविश्वास तथा स्वाभिमान निर्मिति में सहायता होती है। बच्चों को कम उम्र से ही संगीत से जोड़ना चाहित। 4-5 वर्ष का छोटा सा बच्चा अनेकों श्रोताओं के सामने अपना गाना-बजाना प्रस्तुत करता है तब उसका आत्मविश्वास देखना अपने आप में लाक्षणिक होता है।

कुल मिलाकर बच्चों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकास के लिए पहली महत्वपूर्ण सीढ़ी संगीत है। बचपन से ही बच्चों को अपने परिवार द्वारा घर में पृष्ठभूमि में संगीत बजाकर इस महान कला के संस्कार देना शुरू कर सकते है। संगीत से होनेवाले लाभ अद्‌भूत है बशर्ते बच्चों को वैसी शिक्षा-दीक्षा योग्य शिक्षक के द्वारा योग्य वातावरण में दी जाए।

संदर्भ :-

Shonckoff, J.P. & Phillips, D.A. (Eds.) (2000). From Neurones to Neighborhoods: The science of early childhood development. Washington, DC: National Academy Press.

Henrick, J. (1998). *Total learning, developmental curriculum for the young child* (5th Ed). Columbus, OH: Merrill.

Ducenne, L. (2005). "The Role of Age, Music, and Parenting on Children's Compliance and Self-Regulation." Unpublished Thesis, George Mason University.

Pianta, R.C. & Cox, M.J. (Eds.), (1999). *The Transition to Kindergarten.* Baltimore, MD: Paul Brookes.

Gerry, D., Unrau, A., & Trainor, L. J. (2012). Active music classes in infancy enhance musical, communicative and social development. *Developmental Science, 15(3),* 398-407.

Calaprice, Alice. *The Expanded Quotable Einstein.* Princeton, N.J.: Princeton Univesrity Press. 2000.

Levitin, Daniel J. *This Is Your Brain on Music: The Science of a Human Obsession.* New York: PlumeèPenguin, 2007.

Campbell, Don and Alex Doman. *Healing at the Speed of Sound: How What We Hear Transforms our Brains and Our Lives.* New York: Plume, 2012.

संगीत की अभ्यास विधि

श्री प्रविण आहिरे

कला कोई भी हो सिद्ध करने के लिए अभ्यास की आवश्यकता होती हैं। कला को सिद्धि तभी प्राप्त हो सकती है जब अभ्यास सही ढंग से हो। इसलिए किन-किन परिस्थितियों में तथा किन-किन विधियों से अभ्यास सम्भव है, इत्यादि बातों पर विचार करना अति आवश्यक है।

"संगीत" यह गुरूमुखी विद्या है जब तक गुरू के सामने बैठकर बकायदा सीना-व-सीना तालीम नहीं ली जाती तब तक सब व्यर्थ है। प्राथमिक स्थिति में गुरू के सामने ही बैठकर रियाज़ करना चाहिए। जो छात्र पूरी निष्ठा के साथ गुरू भक्ति के साथ गुरू पर श्रद्धा रखकर गुरू के बताये रास्ते पर चलते हैं, वे ही छात्र सफलता की ओर बढ़ते हैं।

संगीत की शिक्षा अनेक छात्र ग्रहण करते हैं परन्तु सभी अच्छे कलाकार या संगीतज्ञ नहीं बन पाते। इससे यह स्पष्ट होतो है कि सिर्फ अभ्यास करना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु अभ्यास किस तरह से किया जाए इस अभ्यास विधि के ज्ञान से सफलता प्राप्त हो सकती हैं जिस साधक को इस अभ्यास विधि का ज्ञान होता है वह साधक थोड़े समय में ही अच्छी सफलता प्राप्त कर लेता है तथा अधिक से अधिक रागों का तथा तालों का अभ्यास कर लेता है। अभ्यास विधि का ज्ञान से संगीत की शिक्षा सरल और सुगम हो जाती है। इसलिए अभ्यासविधि काज्ञान आवश्यक ही नहीं परन्तु अनिवार्य है।

संगीत के अभ्यास की विधियाँ इस प्रकार है :-

- छात्र को प्रथम एक घंटा बैठने की आदत डालनी चाहिए। आजकल के छात्रों को एक घंटा बैठने को कहा जाए तब उन्हें बड़ी असुविधा लगती है। इसके वाद का अभ्यास है आसन सिद्धि, आसन सिद्धि में यह होता है कि ऐसी कोई एक जगह की वहाँ का वातावरण शांत, रमणीय हों जहाँ आप एक जगह एक आसन पर बैठकर रोज़ अभ्यास कर सकें। वैसे देखा जाए तो आसन कई प्रकार के होते हैं। फिर भी आपको जो अनुकूल हो, जिससे आपका मन, शरीर, प्रसन्न हो। ऐसे आसन पर बैठकर आपकी साधना करनी चाहिए।
- यह अभ्यास करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि आपके द्वारा जो जगह चुनी गई है तथा जो आसन चुना गया है। उसी पर ही रियाज़ होना चाहिए। इस अभ्यास के दौरान समय का भी बड़ा महत्त्व है। वैसे तो अभ्यास के लिए ब्रह्म मुहूर्त (सुबह) अच्छा माना जाता है, फिर भी अगर आपको यह अनुकूल न हो तो कोई भी एक समय दिन में निश्चित कर लें तथा उस समय ही रियाज़ करें। निरंतर इस अभ्यास से आप अपने आप में आये हुए परिवर्तन (जैसे-वाणी में, व्यवहार में, मानसिकता में इत्यादि में महसूस करेंगे)।
- इस अभ्यास के बाद का जो अभ्यास है वो है, स्वर और ताल के रियाज़ का अभ्यास।
- सर्वप्रथम षड़ज की साधना करनी चाहिए, इस अभ्यास को प्रथम पाँच मिनट से शुरू करके प्रतिदिन एक-एक मिनट बढ़कर जब

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, फेकल्टी ऑफ पर्फोमिंग आर्ट्स, एम.एस. यूनिवर्सिटी ऑफ बरोडा, वड़ोदरा

आधे घंटे पर आ जाये तब उसको हर रोज़ षड़ज की साधना आधा घंटा तक रोज रखें।

- इसके बाद सरल अलंकारों का अभ्यास अनुरूप ताल के साथ करें। इस अभ्यास के पूर्ण होने पर जटिल अलंकारों का अभ्यास ताल के साथ करना चाहिए। इस अभ्यास में लय साधारण हो इसका ध्यान रखना अति आवश्यक है।
- संगीत की साधना में स्वर प्रस्तार (विस्तार) का भी बड़ा महत्त्व है। संगीत के प्राथमिक छात्र को स्वर के प्रस्तार का रीयाज़ अति आवश्यक है। इस साधना से स्वरों पर अद्‌भूत प्रभुत्त्व आ जाता है।

स्वर प्रस्तार की विधि इस प्रकार है :-

1. प्रथम स्वर का प्रस्तार 1 = (1x1) सा
2. (2x1) दो स्वरों का प्रस्तार 2 = (2x1) सारे, रेसा
3. (3x2x1) तीनों स्वरों का प्रस्तार 6 =(3x2) सारेग, गरेसा, सागरे, गसारे, रेसाग, रेगसा
4. (4x3x2x1) चार स्वरों का प्रस्तार 24 = (6x4 = 24)

सारेगम	रेसागम	गसारेम	मसारेग
सारेमग	रेसामग	गसामरे	मसागरे
सागरेम	रेगसाम	गरेसाम	मरेसाग
सागमरे	रेगमसा	गरेमसा	मरेगसा
सामरेग	रेमसाग	गमसारे	मगसार
सामगरे	रेमगसा	गमरेसा	मगरेसा

(5x4x3x2x1) पाँच स्वरों का प्रस्तार 120 = (24x5 = 120)

सारेगमप	सागरेमप	सामरेगप	सापरेगम
सारेगपम	सागरेपम	सामरेपग	सापरेमग
सारेमगप	सागमरेप	सामगरेप	सापगरेम
सारेमपग	सागमपरे	सामगपरे	सापगमरे
सारेपगम	सागपरेम	सामपरेग	सापमरेग
सारेपमग	सागपमर	सामपगरे	सापमगरे
रेसागमप	रेगसामप	रेमसागप	रेपसागम
रेसागपम	रेगसापम	रेमसापग	रेपसामग
रेसामगप	रेगमसाप	रेमगसाप	रेपगसाम
रेसामपग	रेगमपसा	रेमगपसा	रेपगमसा
रेसापगम	रेगपसाम	रेमपसाग	रेपमसाग
रेसापमग	रेगपमसा	रेमपगसा	रेपमगसा
गसारेमप	गरेसामप	गमसारेप	गपसारेम
गसारेपम	गरेसापम	गमसापरे	गपसामरे
गसामरेप	गरेमसाप	गमरेसाप	गपरेसाम
गसामपरे	गरेमपसा	गमरेपसा	गपरेमसा
गसापरेम	गरेपसाम	गमपसारे	गपमसारे
गसापमरे	गरेपमसा	गमपरेसा	गपमरेसा
मसारेगप	मरेसागप	मगसारेप	मपसारेग
मसारेपग	मरेसापग	मगसापरे	मपसागरे
मसागरेप	मरेगसाप	मगरेसाप	मपरेसाग
मसागपरे	मरेगपसा	मगरेपसा	मपरेगसा
मसापरेग	मरेपसाग	मगपसारे	मपगसारे
मसापगरे	मरेपगसा	मगपरेसा	मपगरेसा
पसारेगम	परेसागम	पगसारेम	पमसारेग
पसारेमग	परेसामग	पगसामरे	पमसागर
पसागरेम	परेगसाम	पगरेसाम	पमरसाग
पसागमरे	परेगमसा	पगरेमसा	पमरेगसा
पसामरेग	परेमसाग	पगमसारे	पमगसारे
पसामगरे	परेमगसा	पगमरेसा	पमगरेसा

स्वरों की प्रस्तार की संख्या यंत्रम् :-

1 2 3 4 5 6 7 - खंड

सा रे ग म प ध नि - स्वर सप्तक

1 2 6 24 120 620 5040 - संख्या

तीन स्वरों के अन्य प्रस्तार :-

1. सारेग, रेगम, गमप, मपध, पधनि, धनिसां
   सारेग, गरेसा, सागरे, गसारे, रेसाग, रेगसा
   रेगम, रेमग, गरेम, गमरे, मरेग, मगरे
   गमप, गपम, मगप, मपग, पगम, पमग
   मपध, मधप, पमध, पधम, धमप, धपम
   पधनि, पनिध, धपनि, धनिप, निपध, निधप
   धनिसां, धसांनि, निधसां, निसांध, सांधनि, सांनिध

इस ढंग से :-

1. सारेसा, सारेसा, सासारे, सांसारे, रेसासां, रेसांसा
2. सागसा, सांगसा, सासांग, सांसाग, गसासां, गसांसा
3. सामसां, सांमसा, सासांम, सांसाम, मसासां, मसांसा
4. सापसां, सांपसा, सासांप, सांसाप, पसासां, पसांसा
5. साधसां, सांधसा, सासांध, सांसाध, धसांसा, धसांसा
6. सानिसां, सांनिसा, सांसानि, सांसानि, निसासां, निसांसा

सागप, रेमध, गपनि, मधसां

1. सागप, पगसा, सापग, पसाग, गसाप, गपसा
2. रेमध, धमरे, रेधम, धरेम, मरेध, मधरे
3. गपनि, निपग, गनिप, निपग, पगनि, पनिग
4. मधसां, सांधम, मसांध, सांधम, धमसां, धसांम

1. सागध, धगसा, साधग, धसाग, गसाध, गधसा
2. सागम, मगसा, सामग, मसाग, गसाम, गमसा
3. सागनी, नीगसा, सानीग, निसाग, गसानी, गनीसा

1. सामप, पमसा, सापम, पसाम, मसाप, मपसा
2. सामप, धमसां, सापम, धसाम, मसाध, मधसा
3. सामनी, नीमसा, सानीप, नीसाम, मसानी, मनीसा

1. सारेम, मरेसा, सामरे, मसारे, रेसाम, रेमसा
2. सारेप, परेसा, सापरे, पसारे, रेसाप, रेपसा
3. सारेप, धरेसा, साधरे, धसारे, रेसाध, रधसा
4. सारेनी, नीरेसा, सानीरे, नीसारे, रेसान, रेनीसा

इस प्रकार सारेगम, रेगमप, मगमध, मपधनि, पधनिसां

सारेगम का स्वर प्रस्तार हमने आगे देखा, इसी प्रकार रेगमप का गमपध का इस रचना विधि के अनुसार हो सकता है।

रे ग म प	ग रे म प	म रे ग प	प रे ग म
रे ग प म	ग रे प म	म रे प ग	प रे म ग
रे म ग प	ग म रे प	म ग रे प	प ग रे म
रे म प ग	ग म प रे	म ग प रे	प ग म रे
रे प ग म	ग प रे म	म प रे ग	प म रे ग
रे प म ग	ग प म रे	म प ग रे	प म ग रे

ग म प ध	म ग प ध	प ग म ध	ध ग म प
ग म ध प	म ग ध प	प ग ध म	ध ग प म
ग प म ध	म प ग ध	प म ग ध	ध म ग प
ग प ध म	म प ध ग	प म ध ग	ध म प ग
ग ध म प	म ध ग प	प ध ग म	ध प ग म
ग ध प म	म ध प ग	प ध म ग	ध प म ग

म प ध नी	प म ध नी	ध म प नी	नी म प ध
म प नी ध	प म नी ध	ध म नी प	नी म ध प
म ध प नी	प ध म नी	ध प म नी	नी प म ध
म ध नी प	प ध नी म	ध प नी म	नी प ध म
म नी प ध	प नी म ध	ध नी म प	नी ध म प
म नी ध प	प नी ध म	ध नी प म	नी ध प म

प ध नी सां	ध प नी सां	नी प ध सां	सां प ध नी
प ध सां नी	ध प सा नी	नी प सां ध	सां प नी ध
प नी ध सां	ध नी प सा	नी ध म सां	सां ध प नी
प नी सां ध	ध नी सा प	नी ध सां प	सां ध नी प
प सां ध नी	ध सां प नी	नी सां प ध	सां नी प ध
प सां नी ध	ध सां नी प	नी सां ध प	सां नी ध प

इस प्रकार अलग-अलग स्वर संगीत से आप अलग-अलग स्वर प्रस्तार बना सकते हैं तथा इसका रियाज़ करें।

लोकगीतों में बिदाई गीत

संध्या रानी मिश्रा

लोकगीत मनुष्य और उसके समाज के संपर्क में नित्य प्रति आनेवाले प्रकृति और पारस्परिक जीवन के पारंपरिक संबंधों और जीवन व्यवहारों की संवेदनशील अभिव्यक्ति है। जन्म से लेकर मृत्यु तक सभी संस्कारों और चक्की चलाने तक समूचे कर्म-विधान ऋतुओं के सौंदर्य से लेकर मनुष्य पर उनके प्रभाव और मनोविज्ञान तथा पति-पत्नी, भाई -बहन, माँ-बेटी-बेटा, घर-परिवार के संबंधों तक लोकगीतों का विस्तार-प्रसार में लोकगीत, भारतीय ग्रामीण संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। इस धरोहर में ग्रामीण-जीवन का सच्चा प्रतिविम्ब अंकित रहता है लेकिन ये धरोहर लुप्त-प्राय होने के कगार पर है। आर्थिक संकट की समस्या से निजात पाने के लिए बड़ी तेजी से ग्रामीणों का पलायन शहर की ओर हो रहा है। रोजी-रोटी की तलाश में ग्रामीण शहर की ओर भाग रहे हैं, बड़ी तीव्र गति से लोगों शहरीकरण हो रहा है, इस स्थिति में ग्रामीण -संस्कृति का विलुप्त होना स्वाभाविक है। पहले गांवों में विवाह एवं अन्य संस्कारों के अवसर पर महिलाएं आठ-दस दिन पहले से ही रात-रात भर उस संस्कार से सम्बन्धित लोकगीत, देवी-देवता के गीत एवं झूमर आदि गाकर मनोविनोद किया करती थीं, इससे होने वाले संस्कारों में सरसता एवं जीवन्तता आती थी। एक खुशी का माहौल वना रहता था। लेकिन अव शहरीकरण, वाजारीकरण एवं आधुनिकता की अंधी दौड़ में लोग संस्कारों के नाम पर पैसा चाहे जितना भी व्यय करें, उसमें एक रस्म अदायगी ही रहती है। लोगों के पास इतना समय नहीं रहता है कि वे ग्रामीण - संस्कृति की सुरक्षा की भावना से कोई काम करे। विवाह का आयोजन अव ज्यादातर होटल, धर्मशाला और विवाह-भवन में किया जाता है, रात भर का खेल रहता है। सुवह सव कुछ समेट कर लोग अपने घर चले जाते है। लेकिन गांव में अभी भी जो वचे-खुले लोग हैं, वहां विवाह के अवसर पर बड़ा ही खुशनुमा माहौल रहता है।

वेटी का व्याह होने के पश्चात जव उसकी विदाई की वेला आती है, जिसे समदाउन कहा जाता है, उस समय का दृश्य तो वड़ा ही हृदय-विदारक होता है। समदाउन के गीतों में इतनी करूणा भरी रहती है कि कोई भी पत्थर-हृदय पसीजे विना नहीं रहता है। आज तो समदाउन शब्द था अर्थ भी लोग नहीं जानते हैं। ऐसे अवसर पर सबकी आंखें नम हो जाती है। कलेजा मुंह को आ जाता है।

किसी भी भाषा का लोकगीत हो, उसमें विदाई के गीत सर्वाधिक मार्मिक एवं करूण होते हैं। विदाई के गीतों में घर-परिवार, पास-पड़ोस सभी लोग वेदना की ही व्यंजना करते हैं। लाड़-प्यार से पली बेटी जव पिया के साथ जाने लगती है तो वावा का गमछा, माँ का शहरी पटोर और भैया की चदरिया रोते-रोते भींग जाती है। गीत की पंक्ति इस प्रकार है-

केकरा के भींजलै माय गै दोवर गमछवा, केकरा के शहरी पटोर।
केकरा के भींजलै माय गे लाली चदरिया, केकरा के कसेवो न जाय ।।

वेटी तो 'वन' की कोयल के समान होती हैं। वन एवं अमराई की शोभा जिस तरह कोयल की मधुर कूक से होती है, उसी तरह कन्या के घर में

शोधछात्रा, विश्वविद्यालय संगीत विभाग, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

रहने से, उसकी चहकती हुई मधुर आवाज से पिता-माता का घर सुशोभित होता रहता है।

वह हिरणी की तरह कुलांचे भरती है। लेकिन कोयल के चले जाने पर अमराई उदास और सूनी-सूनी-सी प्रतीत होती है। बेटी के विदा हो जाने पर मां-बाबा की हवेली और देहरी सूनी हो जाती है। उस करूण बेला में सभी रोते-कलपते -सिसकते हुए दिखाई पड़ते है। हवेली के सूनेपन का बयान गीत की इन पंक्तियों में किया गया है -

कथी बिनु सुन रे भेलै रे बगीचबा,
कथी बिनु सुन रे भेलै बाबा के हवेलिया।
कोयलो बिनु सुन रे भेलै बाग रे बगीचबा,
धिया बिनु सुन भेलै बाबा के हवेलिया।

कन्या की विदाई के समय सभी परिजन एवं प्रियजन शोकातुर रहते हैं, लेकिन दुलहा बाबू खुश हो रहे हैं कि हमारी धानी (पत्नी) हमारे साथ जा रही है।

कानी-कानी बोलै अम्मा, बेटी हमारी जाय, लोगों रे परदेशिया। हांसी -हांसी बोलै दुलहा बाबू धानी हमरी जाय, लोगों रे परदेसिया।

डोली चल पड़ती है, लेकिन कन्या के हृदय से नैहर का मोह नहीं छूटता है। बेटी विदाई के समय लोकगीतों में जो करूण-रस की धारा प्रवाहित होती है, इससे मानव-जगत ही नहीं प्रकृति भी उदास और गमगीत होकर आंसू बहाती है। इन लोकगीतों में बेटी विदाई का दृश्य बड़ा ही हृदय-विदारक एवं करूणा जनक होता है।

मां के घर में स्वतंत्रता से जीवन व्यतीत किया है, एक अनजान, अपरिचित व्यक्ति के साथ सदा के लिए बांध दी जाती है। सुख की कल्पना के साथ-साथ मां-बाप से बिछड़ने का दुख। अपरिचित घर, नया वातावरण, नये-नये सम्बन्धियों के प्रति मन में भय का संचार भी होतो है, जो आंसू की नदी को और भी बेगवती बना देता है। वेटी के विदा होते समय कहीं पिता रोते हैं, कहीं माता सिर पटकती है, कहीं भाई रोता है तो कहीं गांव की स्त्रियां आसू वहाती नजर आती है। सचमुच में ऐसी हृदय विदारक वेला में जब महर्षि कण्व भी अपने आंसुओं को नहीं रोक सके तो साधारण लोगों की चर्चा की क्या।

घरवा में रोवै अम्मा बहिनियां,
सभवा में बाबा हमार।
पनिया भरैतै पनभरनी जे रोबै
घोड़बा कानै घोड़सार।
रने-बने रोबै सखी रे सहेलिया
जोड़ी बिजोडी करलै जान।

इन तरह गीतों में ऐसा प्रतीत होता है कि करूण -रस साकार शरीर धारण कर उपस्थित हो गया है लेकिन आज की परिस्थिति अलग है सभी ग्रामीण संस्कृति समाप्त हो गई है। बड़ी ही विडम्बना है की इस परम्परा को किस तरह कायम रखा जाय। बेटी ओहार लगे हुए डोली पर चढ़ती है और थोड़ी दूर जाने पर उलट कर देखती है और पति से पूछती है—

प्रभु हे। कती दूर छूटि गेलै भाई-बांप, सहोदर भाई-बहिनो है।

लगता है बेटी की तरह ही हमलोगों का यह ग्रामीण-संस्कृति की स्वस्थ परपम्परा भी हमलोगों से छूट गई है, और हम आगे बढ़ गये है।

भारतीय संगीत-पद्धति की चिकित्सकीय उपादेयता

शिल्पी सिन्हा

भारतीय संगीत की प्रेरणा और प्राण शक्ति की क्षमता को पहचान कर पाश्चात्य विद्वानों की मान्यताएँ भी भारतीय दर्शन की पुष्टि करने लगी हैं। भारतीय संगीत में अनेकों राग हैं, तथा प्रत्येक राग की अपनी अलग-अलग प्रकृति एवं प्रवृत्ति है। पाश्चात्य देशों में इन दिनों शरीर और मन के रोगों के उपचार के लिए एलोपैथी, होम्योपैथी, नैचुरोपैथी आदि चिकित्सा पद्धतियों की तरह संगीत से रोगोपचार की विधि खोज ली गयी है, तथा उसका सफलतापूर्वक उपयोग किया जा रहा है। विगत अनेक वर्षों से मनोरंजन का साधन बना हमारा भारतीय संगीत अब विभिन्न प्रकार के रोगों की चिकित्सा करने में भी प्रयुक्त होने लगा है।

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं और अन्य प्रचार माध्यमों में संगीत चिकित्सा के क्षेत्र में हो रहे शोधकार्यों एवं प्रयोगों के समाचार और लेख प्रायः पढ़ने को मिलते हैं। हमारे देश में वैदिक काल से ही इस चिकित्सा पद्धति का प्रयोग होता रहा है। मध्यकाल में यह विलुप्तप्रायः हो गयी थी, लेकिन वर्त्तमान समय में इस विषय पर पुनः शोधकार्य प्रारम्भ हुआ और इसे फिर से स्थापित करने का पूरा प्रयास किया जा रहा है। संगीत के माध्यम से विभिन्न रोगों के मरीजों पर जो प्रयोग किए जा रहे हैं, वे संभावनाओं से परिपूर्ण हैं, एवम् इनके चमत्कारी परिणाम भी हासिल हुए हैं।

संगीत के चिकित्सकीय प्रयोग हिन्दुस्तान में भी अपनाए जाने के विषय हैं। विदेशों में तो संगीत-चिकित्सा-पद्धति को सहर्ष अपनाया जा चुका है, परन्तु भारत में संगीत-चिकित्सा के प्रति अभी जागरूकता नहीं आई है।

संगीत को चिकित्सकीय साधन के तौर पर स्थापित करने वालों का मानना है कि संगीत व्यक्ति विशेष को शारीरिक एवम् मानसिक स्तरों पर प्रभावित करता है। मनोवैज्ञानिक रूप से संगीत की ध्वनि हृदय-गति और श्वसन-गति को नियंत्रित करती है, एवम् मरीज के शरीर पर इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि संगीत मन की तीनों अवस्थाओं, यथा- चेतन, अवचेतन तथा अचेतन पर प्रभाव डालता है। मानसिक रोगोपचार में मधुर/उत्तेजनापूर्ण संगीत सुनने से कई पुरानी स्मृतियाँ और सम्वेग पुनर्जीवित हो जाते हैं, तथा संगीत के माध्यम से रोगी की दबी हुई इच्छाओं एवं संवेगों को चेतन स्तर पर लाने का प्रयास किया जाता है। मनोरोगियों पर संगीत का प्रभाव इतना सघन होता है जो कई बार अन्य उपचार विधियों से संभव नहीं हो पाता है।

कई सिद्ध चिकित्सा वैज्ञानिकों का आज मानना है कि संगीत स्नावयिक-मानसिक तनाव के निराकरण की अचूक औषधि है। मानसिक रोगों से पीड़ित व्यक्तियों के लिए तो कई बार संगीत रामबाण औषधि की तरह सिद्ध हुआ है, कि इसके श्रवण से मानसिक रोगों से पीड़ित व्यक्तियों को तत्काल मानसिक तनाव के कुप्रभावों से मुक्ति मिलती है। संगीत के द्वारा रोगी के शरीर में उत्पन्न एड्रिनेल की मात्रा में कमी पाई गई है। कई आधुनिक चिकित्सा वैज्ञानिकों ने इस बात का दावा किया है कि संगीत के माध्यम रोगियों के दर्द का शमन किया जा

शोधछात्रा, जे.डी. वीमेन्स कॉलेज, पटना

सकता है। संगीत का प्रभाव मनुष्य के केन्द्रीय स्नायु-तंत्रिका-तंत्र पर पड़ता है। संगीत के माध्यम जो ध्वनि-तरंगें उत्पन्न होती हैं, वे स्नायु-तन्त्र के सम्वेद-प्रवाह पर वांछित प्रभाव डालकर न केवल उनकी सक्रियता को बढ़ाती है, वरन् विकृत चिंतन को रोकने के अलावा मनोविकारों को भी मिटाती हैं। सुरमयी/तालबद्ध ध्वनियाँ स्नायु-तन्तुओं की सम्वेदनशीलता और गतिशीलता बढ़ाती हैं। हृदय रोग और रक्तचाप के नियन्त्रण/संतुलन में संगीत की ध्वनि-तरंगें विशेष रूप से लाभदायक सिद्ध हुई हैं। मनोवैज्ञानिक रूप से संगीत की ध्वनि हृदय-गति और श्वसन-गति को नियन्त्रित करके शरीर पर सकारात्मक प्रभाव छोड़ती है।

संगीत चिकित्सा से यह अनुभव किया गया है कि संगीत द्वारा महिलाओं की गर्भावस्था के पूरे नौ माह बहुत आरामदायक होते हैं। आधुनिक युग में गर्भवती स्त्रियों के सम्पूर्ण स्वास्थ्य के लिए तथा गर्भस्थ शिशु के सम्यक् विकास के लिए गर्भवती स्त्री को पूरे नौ माह तक विशेष संगीत-चिकित्सा कोर्स दिया जाता है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत के व्यापक व्यवस्थापन अन्तर्गत विविध प्रकार के राग हैं, और प्रत्येक राग की अपनी अलग प्रकृति व प्रवृत्तिगत खूबियाँ हैं। प्रतिदिन 20 मिनट अपनी पसन्द का संगीत सुनने से बहुत सारे रोगों से बचा जा सकता है। ऐसी भी सिद्ध मान्यताएँ हैं कि रोग विशेष का संबंध किसी-ना-किसी ग्रह विशेष से होता है। इसी तरह की वैचारिक स्थापना संगीत-शास्त्र में भी है कि संगीत के सुरों व रागों का संबंध भी किसी-ना-किसी ग्रह विशेष से होता है। आज कई विशेषज्ञ यह सिद्ध कर चुके हैं कि किसी व्यक्ति विशेष को जिस ग्रह विशेष से संबंधित रोग व्युत्पन्न होते हैं, उसे उस ग्रह से संबंधित राग, सुर अथवा गीत सुनाए जायें, तो व्यक्ति शीघ्र स्वस्थ होता है। यथा- हृदय रोग में राग दरबारी या राग सारंग, अनिद्रा की स्थिति में राग भैरव या राग सोहनी, एसिडिटी में राग खमाज सुनाया जाना रोगी के लिए लाभदायक होता है। उसी प्रकार शारीरिक दुर्बलता में राग जयजयवन्ती, स्मरणशक्ति कम होने पर राग शिवरंजनी, रक्त की कमी होने पर राग पीलू, मनोरोग होने पर राग बिहाग व राग मधुवन्ती पर आधारित गीत सुना जा सकता है। राग भूपाली ऊँचे रक्तचाप के रोगियों के लिए लाभकारी होता है। इसी प्रकार शास्त्रीय संगीत में ऐसे अनेकों राग हैं, जो किसी-ना-किसी रोग के लिए लाभदायक हैं।

संगीत-चिकित्सा-पद्धति में यह जरूरी नहीं है कि रोगी को शास्त्रीय संगीत समझ में आए ही। संगीत-चिकित्सा-पद्धति में रोगी को संगीत सुनने के विशेष निर्देश दिए जाते हैं, जिसका पालन करना आवश्यक होता है। संगीत की स्वर-लहरियों की मधुरता और लयबद्धता में कुछ ऐसी शक्ति है, जो शारीरिक एवं मानसिक लाभ पहुँचाने के साथ-साथ सहज ही आत्मा को भी ऊर्ध्वमुखी बना देती है।

भारत में संगीत चिकित्सा के प्रति अभी जागरूकता नहीं आई है। विदेशों में तो संगीत-चिकित्सा को सहर्ष अपनाया जा चुका है। हमारे देश में लोगों को संगीत-चिकित्सा पद्धति को समझने व इसका महत्व जानने की जरूरत है।

संगीत चिकित्सा

झरणा मिश्रा

मानव जीवन का सर्वप्रथम लक्ष्य है—शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक शांति। सुरीली, मधुर ध्वनि जिसे सांगीतिक भाषा में नाद कहा जाता है, वह नाद विश्वव्यापी है। शब्द या ध्वनि पृथ्वी का विषय ही नहीं वह आकाश का गुण है। अतः वह आकाशीय तत्व जिससे संगीत की उत्पति हुई है- वह परम निर्मल, शान्ति-प्रदायिनी एवं जगत हितकारी होता है।

संगीत हमारे जीवन का अभिन्न अंग है। जन्म से लेकर मृत्यु तक मानव जीवन संगीतमय होता है। एक मानव जब इस पृथ्वी पर जन्म लेता है तब हर्ष-उल्लास के साथ-साथ गीत- संगीत का प्रचलन देखने को मिलता है, ठीक उसी तरह एक व्यक्ति जब इस पृथ्वी को छोड़कर जीवन की अंतिम यात्रा करता है तब भी हरिनाम संकीर्तन के साथ लोग 'हरिबोल' के गीत प्रतिध्वनि के साथ उसे अंतिम विदाई देता है।

संगीत चाहे शास्त्रीय हो या लघु या फिल्मी किसी मानव चित्त को मनोरंजन प्रदान करता है।

अगर चित्त यानी मन शांत, सुखी रहता है तो मानव शरीर भी स्वस्थ्य रहता है। हमारे शास्त्रीय संगीत का प्रकृति एवं मानव शरीर के साथ घनिष्ठ संबंध है। भारतीय राग संगीत का मूल अर्थ है- रंगना यानी राग अपने रंग में मानव चित्त को रंग देता है, चित्त प्रसन्न हो उठता है और यदि मनुष्य का चित्त सर्वदा प्रसन्न रहेगा तो मानव शरीर रोग से मुक्ति पा सकता है।

वर्तमान समाज में High Blood Pressure, Sugar, महामारी का रूप ले चुका है। आज के रोजगार उन्मुख समाज सुख समृद्धि के चरम सीमा पर पहुँचने की कोशिश में अपना शारीरिक-मानसिक शान्ति खो चुका है। सुबह से लेकर मध्य रात्रि तक केवल दौड़ और दौड़ जिन्दगी में विश्राम का समय है ही नहीं।

बीमारियाँ मानसिक तनाव, चिंता अवसाद आदि से होता है। परन्तु संगीत एक ऐसी विधा है जिससे मानसिक संतुलन बना रहता है।

कर्णप्रिय संगीत लोगो के मानसिक और शारीरिक स्वस्थ्य के लिए महत्पूर्ण है, इससे मानसिक शक्तियों को पुनः उर्जित करने का गुण होता है। कुछ संगीत उतेजना उत्पन्न करते है तो वहीं कुछ मन को शान्त करते है, कोई प्रेरणा दायक होता है तो कुछ संगीत मनुष्य को समाधि की ओर ले जाता है, अतः संगीत का इन्ही गुणों को संगीत चिकित्सा पद्धति में शामिल किया जा रहा है।

वेदों में शरीर के सात चक्रों का वर्णन किया गया है जो मानव शरीर के विभिन्न भागों का संचालन करते है। संगीत के सात सुरों का इन सात चक्रों पर विभिन्न प्रभाव पड़ता है 'सा' मूलाधार 'रे' स्वाधिष्ठान 'गा' मणिपुर 'मा' अनाहत 'पा' विशुद्ध 'धा' आज्ञा और 'नि' सहत्रचक्र को सुचारू रखने में मदद करता है।

वेदो में संगीत को योग माना जाता है जिससे मानव शरीर स्वस्थ्य रहता है। मानव शरीर मूलतः वात, वित, कफ, प्रधान होता है। हमारे राग संगीत इन देशों को निवारण में विशेष सहायता करते है। स्वर तथा लय किसी न किसी रूप में विश्व के सभी संगीतों में विद्यमान हैं, लेकिन राग पद्धति केवल

संगीत विभाग, भारत सेवक समाज महिला महाविद्यालय, धनबाद, झारखण्ड

भारतीय शास्त्रीय संगीत की विशेषता है। प्रत्येक राग का एक विशिष्ट रूप, रस होता है, अतः समयानुसार रागों को सुनकर रोगों पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

प. अहोबल ने भारतीय संगीत की 22 श्रुतियों का मनुष्य के शरीर की 22 धमनियों से संबंधित होने को वर्णन किया है। आदिकाल से ही मनुष्य औषधि एवं चिकित्सा पद्धति का संगीत से समन्वय करके मनुष्य का उपचार करता आ रहा है, संगीत के माध्यम से शरीर एवं मन को तरोताजा रखने की प्रवृति बहुत ही प्राचीन है। ऊँ ध्वनि से मानव मन-मस्तिष्क पर बहुत शक्तिशाली प्रभाव पड़ता हैं। यह ऊँ नाद भारतीय शास्त्रीय संगीत में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया है।

समग्र विश्व ब्रहमाण्ड में अनवरत यह ऊँ ध्वनि गूंजती रहती है जिसे हम साधारण मनुष्य सुन नहीं पाते हैं परन्तु आध्यात्मिक मार्ग में उन्नत मनुष्य इसे श्रवण कर सकते हैं। अतः ऊँ नाद ही अनुरणन वातावरण में एक निश्चित प्रभाव डालती है जिसका प्रभाव मनुष्य पर भी पड़ता है।

नारदमुनि संगीत मकरन्द में आयु, धर्म, बुद्धि, धन, लाभ, आदि के लिए सम्पूर्ण जाति का राग, शत्रु का विनाश, भय, शोक, रोगमुक्ति हेतु औड़व जाति का राग गायन एवं युद्ध जय, सौन्दर्य, यौवन प्राप्ति के लिए षाड़व जाति का राग गायन का उपचार किये है। विभिन्न प्रकार राग गायन में यदि मत्रोंच्चारण एवं ईश्वर स्तुति का समावेश किया जाये तो मानव शरीर को आत्मिक शान्ति मिलती है।

अतः वैदिककाल से ही हमारे भारतीय संगीत चिकित्सीय गुणों पर आधारित है सामवेद, ऋग्वेद, अथर्ववेद, में उल्लिखित मंत्रों में शारीरिक उपचार शक्ति विद्यमान था तथा वर्तमान समय में भी शोध कर्ताओं ने संगीत चिकित्सा संबंधी शोधकार्य कर रहे है। तरह- तरह के परीक्षण, निरीक्षण, विभिन्न संस्थाओं की निर्माण, राष्ट्रीय संगठन NAMT (National association of Music Therapy) 1950 में स्थापित कई अन्य राष्ट्रीय संगठन जैसे- इंस्टीटयूट फॉर म्युजिक एडं न्यूरोलॉजिक फंक्शन, नोडोर्फ- रोबिन्स सेन्टर फॉर म्यूजिक आदि।

चिकित्सा पद्धति में संगीत की भूमिका

संगीता कुमारी

दुनिया की प्राचीनतम् विधाओं में एक भारतीय संगीत की विशालतम् व गौरवशाली परंपरा आज भी नित नवीन शोधों व प्रयोगों से निरंतर समृद्धि की ओर बढ़ी जा रही है। जिसके फलस्वरूप भारतीय संगीत की विविध चमत्कारिक शाक्तियाँ पुनः उद्घाटित हो रही है। यह संगीत को कला मात्र समझने वाली पीढ़ी के लिए चिर अकल्पनीय है। संगीत की चिकित्सकीय क्षमता भी उन्हीं शक्तियों में से एक है।

आदिकाल से ही संगीत का आधारभूत संबंध "रंजन" से है। इस रूप में मानसिक थकान, तनाव, अनिद्रा आदि रोगों से मुक्ति दिलाने में मनोरंजन के सक्षम व सर्वथा उपयुक्त साधन के रूप मे संगीत आज भी सर्व स्वीकार्यता की हद तक लोकप्रिय है। किन्तु आज भी इसे चिकित्सा के साधन के रूप में स्वीकार किया जाना शेष है। 20वीं शताब्दी से अब तक संगीत की चिकित्सकीय उपयोगिता पर जितने शोध व प्रयोग हुए एवं हो रहे है यह अद्भुत है। इस तरह के इतने प्रयोग 20 वीं सदी से पूर्व में भी हुये इसका उल्लेख उपलब्ध ग्रन्थों मे लगभग अप्राप्य है। राग से रोग निवारण संगीत चिकित्सा की एक महत्वपूर्ण एवं प्रभावोत्पादक कड़ी है। हालाकि यह एक बड़ी आबादी के लिए आज भी कौतूहल का विषय है। आमजन मानस आज भी संगीत चिकित्सा के प्रति विश्वसनीयता की हद तक आश्वस्त नहीं हैं जबकि विदेशों को छोड़ भी दें तो भी सिर्फ अपने देश में ही कम से कम दर्जनाधिक ऐसी संस्थायें हैं जहाँ संगीत चिकित्सा पद्धति से विविध संगीत सहित राग द्वारा रोग निवारण जैसे कार्य सफलता पूर्वक किये जा रहे हैं।

इस अविश्वसनीयता का मुख्य कारण है संगीत के प्रति आम जनमानस में व्याप्त अवधारणा जिसके अनुसार संगीत कला, या ललितकला या प्रदर्श कला के रूप में जानी जाती है। फलतः सात शुद्ध एव पाँच विकृत कुल बारह स्वरो पर आधारित संगीत चिकित्सा पद्धति को लोग शंका की दृष्टि से देखते हैं। जबकि अपने देश सहित दुनिया भर में विभिन्न चिकित्सा संस्थानों में मनोरोग, हृदय रोग, कफ वात जन्य रोग इत्यादि ही नहीं यक्ष्मा, कैंसर जैसे असाध्य रोगों की भी चिकित्सा सफलतापूर्वक किये जा रहे हैं।

विडंबना है कि लोग विभिन्न प्रकार की किरणों यथा इन्फ्रारेड रेज, अल्ट्रा वायलेट रेज आदि से चिकित्सा को विश्वास के साथ स्वीकार करते हैं, वही लोग समान रूप से प्रभावी एवं असरकारक राग के स्वरों की चिकित्सकीय क्षमता पर कौतूहल मिश्रित आश्चर्य से मुँह ताकते नजर आते हैं।

चिकित्सा पद्धति-:

वास्तव में संगीत चिकित्सा पद्धति 12 स्वरो में से न्यूनतम 5 स्वरों से निर्मित राग पर आधारित है। इन स्वरों में कुछ स्वर शीत प्रभाव वाले हैं, तो कुछ उष्ण प्रभाव वाले। वहीं कुछ समशीतोष्ण प्रभाव वाले स्वर हैं। प्रयोग के दौरान आयुर्वेदिक रसायनो की भाँति विभिन्न प्रभाव वाले स्वरों से निर्मित राग के स्वरों से अल्ट्रा वायलेट रेज की तरह अलग-अलग प्रकार की प्रभाव वाली किरणें/तरंगें निकलती हैं। ये किरणें/तरंगे समेकित रूप से रोगी पर एक साथ प्रभाव डालते है। यह ठीक उसी प्रकार होता है जिस

शोध छात्रा, वि.वि. संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा

प्रकार की टॉर्च से निकलने वाला प्रकाशपुंज एक साथ समान रुप से संपूर्ण शरीर पर पड़ता है। संगीत की स्वर लहरी से उत्पन्न होनेवाली तरंगे एक तरफ सुषुम्ना तंत्र के माध्यम से मस्तिष्क में स्थित कॉर्टेक्स को उर्जावान बनाती है जिससे न सिर्फ शरीर में रोग रोधक क्षमता में वृद्धि होती है, अपितु रोगी में रोग से लड़ने की इच्छाशक्ति भी बढ़ती है। वही दूसरी तरफ ये शरीर में स्थित विभिन्न चक्रों व ग्रन्थियों में भी उर्जा का संचार कर देती है। फलतः उन चक्रों व ग्रन्थियों से सम्बन्धित शिथिल पड़ी नस-नाड़ियों/धमनी-शिराओं पर चमत्कारिक प्रभाव पड़ता है, और धीरे-धीरे ये नाड़ियां गतिमान व स्वस्थ होकर पूर्ववत कार्य करने लगती हैं।

मानसिक रूप ने सबलता प्रदान करने के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के मानसिक विकलांगता से ग्रस्त लोगों, अनिद्रा, थकान, डिप्रेसन, कफ-वात जन्य रोग से पीड़ित लोगों पर संगीत चिकित्सा के किये जाने वाले प्रयोग आशानुरुप सफल रहे हैं और इसके उत्साहवर्धक परिणाम भी मिले हैं। संगीत के चिकित्सकीय प्रभाव की व्यापकता का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि दुर्घटना जन्य विकलांगता को छोड़कर प्रायः सभी प्रकार की विकलांगता से पीड़ित लोगो पर संगीत चिकित्सा पद्धति से किये जानेवाले प्रयोग चमत्कारिक रूप से अपेक्षित परिणाम दे सकते हैं। लकवा, पोलियो, पार्किन्सन आदि जैसे विकलांगता के कारणों का सफल निदान या कहें सफल चिकित्सा इस पद्धति से किये जा सकते हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि संगीत चिकित्सा पद्धति में धैर्य की अहम भूमिका होती है। क्योंकि संगीत चिकित्सा पद्धति एक लम्बी प्रयोगात्मक प्रक्रिया है। इस पद्धति में रोग से सम्बन्धित रागों का सावधानी पूर्वक चयन किया जाता है, जरूरत के हिसाब से ध्वनि प्राबल्य निर्धारित किया जाता है आमतौर पर 3 से 4 सौ हर्टज की प्रबलता वाली मधुर ध्वनि रोग निवारण में अपेक्षाकृत शीघ्र फलदायी होती है। इस पद्धति में रोगी को प्रतिदिन 1 से 3 घंटे 30 से 90 दिन तक सुनायी जाती है। यह प्रक्रिया चरणबद्ध तरीके से सम्पादित होती है। समय सीमा आवश्यकता के अनुसार घटायी-बढ़ायी जाती है।

विदित हो कि वर्तमान समय में दुनियाभर के विभिन्न चिकित्सा केन्द्रों में इस पद्धति के तहत-सफलता पूर्वक किये जा रहे हैं।

1. राग भैरवी, सोहनी, तोड़ी से - सिरदर्द
2. पूर्वी, तोड़ी इत्यादी से - रक्तचाप/अनिद्रा
3. बहार, बागेश्वरी, मियांमल्हार से - उन्माद
4. खमाज, दरबाड़ी कान्हड़ा से - वातोन्माद
5. बिहाग, धानी आदि से - मिर्गी
6. तिलंग, मुल्तानी, रामकली आदि से- क्षय रोग
7. हिंडोल, मारवा आदि से - बुखार
8. मालकौंस, बागेश्वरी आदि से - कैंसर
9. गौड़, सारंग शुद्ध सारग आदि से - सर्दी, खाँसी आदि जैसे रोगों की चिकित्सा उतना ही नहीं पीड़ा रहित प्रसव, सामान्य एवं असाध्य रोगों की चिकित्सा के क्रम में दवा के असर की गति बढाने आदि के लिये दुनिया भर के सुविख्यात चिकित्सक संगीत का प्रयोग करते है और ऐसा करने की सलाह देते हैं। विकलांगों की चिकित्सा में भी संगीत चिकित्सा का लाभ लिया जा रहा है। यहाँ आवश्यकता है सिर्फ चिकित्सा के प्रयोग की सीमा को विस्तारित करने की आवश्यकता है। यह तभी संभव है जब संगीत चिकित्सा के प्रति हम अपनी परंपरागत मानसिकता से उपर उठकर एक नयी सोच विकसित करें। जिसमें संगीत को मनोरंजन के साधन से अलग इसकी वैज्ञानिकता, एवं इसकी चिकित्सकीय उपयोगिता को विश्वसनीयता की हित तक स्वीकार करें।

संदर्भित ग्रन्थ -

1) संगीत विशारद - बसंत, प्रकाशक - संगीत कार्यालय, हाथरस
2) संगीत रचना रत्नाकर - सिन्हा पं. राजकिशोर प्रसाद, प्रकाशक- स्टूडेंट फ्रैण्डस, पटना
3) राग शास्त्र प्रवीण - पाठक पं. जगदीश नारायण, प्रकाशक-पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद
4) अखण्ड ज्योति - गायत्री परिवार की मासिक पत्रिका

संगीत का प्रभाव

विंदिया कुमारी

संसार में जितनी भी कलाऐं हैं, उन सबों में संगीत कला सर्वोपरि है। संगीत कला ईश्वरी देन है, जिसकी अभिव्यक्ति केवल मनुष्य से ही नहीं अपितु प्रकृति में विद्यमान पेड़-पौधे नदियाँ, पशु-पक्षियों में भी निरन्तर निःसरित है। संगीत का प्रभाव इतना व्यापक है कि ये हमारे मन को एकाग्र, शान्त और आनन्दित-प्रफुल्लित करता रहता है। एकाग्रता और शान्ति आ जाने से मस्तिष्क तथा उससे जनित बुद्धि में विकास आ जाता है, फलस्वरूप साधक अन्य विषयों की जानकारी या अध्ययन दूसरों की अपेक्षा द्रुत गति से कर सकता है। संगीत के प्रभाव में आकर मुनष्य विशेष व्यवहारों का प्रदर्शन करता है। संगीत के इसी शक्ति का लाभ उठाकर आधुनिक काल में संगीतात्मक चिकित्सा पद्धति के विकास के प्रयत्न किए जा रहे हैं। संगीत के प्रभाव से केवल मानव ही नहीं वरन् पशुओं को को मुग्ध करने, पागल जंगली हाथियों को वश में करने से लेकर फूल खिला देना, वर्षा करा देना-पत्थर पिघला देने जैसा असंभव कार्य तक सपन्न कर सकना संभव है। मानवीय भावनाओं एवं संवेदनाओं को स्वरों द्वारा व्यक्त करने की अविरल धारा ही संगीत है। संगीत की स्वर लहरी हृदय निहित सप्तभाव को कोमल, सरल स्पर्श से सजीव और जाग्रत कर देती है। प्लेटो के अनुसार उनके शब्दों में -

"संगीत के माध्यम से आत्मा लय सिखाती है। संगीत चरित्र बनाता है, इसमें धर्म की प्रकृति आ जाती है, वह अन्याय नहीं कर सकता क्योंकि वह स्वर लहरी से बंधा है"। संगीत मानव की ज्ञानात्मक तथा रागात्मक शक्तियों को भी निश्चित रूप से प्रभावित करता है। यही कारण है कि संत पुरुषों तथा सभी धार्मिक संप्रदायों द्वारा संगीत को परम पवित्र कल्याणकारी तथा भक्ति का साधन स्वीकार किया गया। संगीत की इसी प्रभावोत्पादक क्षमता का लाभ उठाकर संगीत को अर्वाचीन काल में चिकित्सात्मक रूप में प्रयुक्त किया जाने लगा। सामान्य रूप से देखा जाता है कि किसी बात से जब मन दुखी होता है तो भक्त्यात्मक संगीत सुनने से मन को शांति मिलती है। उत्तेजना या उत्साह के समय उल्लासपूर्ण संगीत या राष्ट्रीय चेतना जागृत करने वाला संगीत या श्रम संबंधी प्रसंगो से युक्त संगीत मन को और अधिक उत्साही बना देता है। हृदय को कोमल भावनाओं को जागृत करने में श्रृंगारिक संगीत अधिक सहायक होता है।

निष्कर्षतः

हम कह सकते है कि यदि संगीत का अस्तित्व मिट जाए तो दुनियाँ बड़ी ही नीरस रूखी और कर्कश प्रतीत होने लगेगी। संगीत के परमाणुओं में मानव की वृत्तियों को प्रशस्त करने के साथ-साथ अत्मिक शक्ति का आविर्मान करने की शक्ति भी निहित है। चारित्रिक उत्थान एवं वासनाओं पर विजय प्राप्त करने का सर्वोत्म साधन भी संगीत ही है।

स्नातकोत्तर संगीत विभाग, ति.मां. भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

संगीत और चिकित्सा

लाल बहादुर सिंह

"गीतं वाधं च नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते।"
संगीत रत्नाकर

गायन वादन एवं नृत्य इन तीनों कलाओं के सम्मिलित रूप को **'संगीत'** कहते है।

संगीत के दो भेद है :-

मार्गी संगीत और देशी संगीत, मार्गी संगीत वह है जिसे भरत मुनि और ब्रहमा ने चलाया और वही नियमित है। देशी जिससें मनुष्य अपना चित प्रसन्न करने के लिए गाते बजाते और नाचते हैं। भारतीय अभिनय के तीन मुख्य अंग नृत्य, गीत और वाद्य को चार भागों में विभक्त किया गया है :-

1. आंगिक मुद्रा प्रदर्शन
2. सात्विक भाव प्रदर्शन
3. वाचिक शब्द प्रदर्शन
4. **वाह्य प्रदर्शन** आहार्य वाह्य प्रदर्शन का मुख्य साधन वस्त्रभूषण है और इसका विकास कलाकार और चित्रकार की तुलिका से हुआ है।

हृदय की अनुभूतियाँ तरंगित होकर जब प्रकृति के मध्य वहने लगती है तव संगीत का जन्म होता हैं। प्राचीन काल से ही मानव का प्रकृति से धनिष्ट सम्वंध रहा है। धरा पर मनुष्य मात्र ही विवेकी प्राणी माना गया है। हर व्यक्ति में स्वस्थ और सुन्दर रहने व दिखने की हार्दिक आकांक्षा निहित है।

प्रस्तुत आलेख "संगीत और चिकित्सा" से जुड़े विभिन्न बिन्दुओं पर प्रकाश डालते हुऐ संगीत, स्वास्थ्य एवं व्यक्ति के धनिष्ट संवन्ध के संदर्भ में संक्षेप में ध्यानाकृष्ट कराना चाहता हूँ।

भारतीय सभ्यता में संगीत :-

हमारे पूर्वज आर्य हैं। भारत के लिए आर्यो की महानत्तम देन सुदृढ़ घर्म की स्थापना है। यह धर्म पाँच युगों में होकर वीता है। वैदिक काल ही इसका प्रथम काल है। इसी काल में सामवेद की रचना हुई। यह वेद ही संगीतमय है।

युग पुरुष वापू संगीतज्ञ न थे, किन्तु उन्हें संगीत से महान प्रेम था। विश्व कवि रविन्द्र नाथ न केवल महान कवि थे बल्कि अच्छे संगीतज्ञ भी थे। इसी प्रकार भारतीय इतिहास में गुप्त काल को स्वर्ण युग कहा जाता है, क्योंकि समुद्र गुप्त न केवल महान पराक्रमी और विजेता थे बल्कि अच्छे संगीतज्ञ भी थे। हरि सेन ने अपने वर्णन में लिखा है कि समुद्र गुप्त अपनी गान्धर्व कला से देवताओं के गुरू तुम्बरू और नारद को भी लज्जित कर दिया था।

संगीत और जीवन :-

संगीत और जीवन का सम्बन्ध नैसर्गिक और शाश्वत है। जीवन संगीत से आरंभ हुआ और उसी के साथ अन्त होगा, इस कथन में तनिक भी अत्युक्ति नहीं है। जीवन जितना व्यापक और जटिल है, संगीत भी उतना ही। जीवन के नव रसों की अभिव्यक्ति की क्षमता संगीत में है। संगीत इस लोक को तो सार्थक करता ही है, साथ ही वह मोक्ष प्राप्ति का भी साधन माना गया है। संकीर्तन भजन संगीत के ही रूप है। भारतीय इतिहास में जितनें भी महान संगीतज्ञ हुऐ हैं। वे सभी संत थे, योगी थे अथवा भक्त थे। तभी

स्नातकोत्तर संगीत विभाग, ति.मां. भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

तो उनमें ये शक्ति थी कि संगीत द्वारा पशुओं को मोहित कर ले अथवा मेघ को बरसा दे और पत्थर को पिघला दे। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और संगीत उसका चिर संगी।

संगीत और प्राणायाम :-

संगीत में सबसे ज्यादा मनुष्य की श्वांस प्रणाली प्रभावित होती है। मोटे तौर पर इस श्वांस रोकने की प्रणाली या व्यायाम को योग शास्त्र में प्राणायाम कहा गया है। ऑक्सीजन पाने के लिए तेज और गहरी सांस चलाने वाले, दौड़ने से लेकर दंड बैठक करने तक के अनेकों व्यायाम किये जाते हैं, यह प्रक्रिया संगीत में खासकर गायन में प्राकृतिक रूप से एवं बड़ी आसानी से हो जाती है। गायन को एक प्रकार का योगाभ्यास तथा वक्ष एवं कंठ संस्थान के समीपवर्ती अवयवों का महत्त्वपूर्ण व्यायाम माना गया है।

प्राणायाम के महत्त्व को विश्लेषित करते हुए श्री राजकुमार जैन ने अपनी पुस्तक "योग और आयुर्वेद" में लिखा है - योगासनों के अभ्यास में जब साधक स्थिरता और सुदृढ़ स्थिति को प्राप्त कर लेता है तो वह अग्रिम योगांग "प्राणायाम" के अभ्यास में तत्पर होता है। प्राणायाम वस्तुतः प्राणवायु के निरोध की एक ऐसी विशिष्ट प्रक्रिया है जिससे अभ्यास की सफलता होने पर मनुष्य को सुदृढ़ आयु प्राप्त होती है। प्राणायाम का नियम फेफड़ों को शक्तिशाली रखता है एवं मानसिक तथा शारीरिक रोगों से बचाता है। प्राणायाम दीर्घ जीवन की कुँजी है।

संगीत और स्वास्थ्य :-

यदि आप स्वस्थ और सुन्दर रहना चाहते हैं तो गाइये और नाचिये। लंदन के सुप्रसिद्ध डाक्टर "वाल्टर बाल्स" ने अनुसंधान करके यह सिद्ध किया था कि गुदा की खराबियाँ, बदहजमीं, पीलिया एवं पेट सम्बन्धी अनेक बिमारियों को दूर करने के लिए गायन और नृत्य बहुत ही कारगर सिद्ध हुए हैं। गाना गाते समय लम्बी सांसे खिंचनी पड़ती है तो उससे शरीर के तन्तुओं को अधिक ऑक्सीजन स्वतः ही प्राप्त हो जाती है। आदिवासी तथा पिछड़ी जातियों के लोग अधिकत्तर स्वस्थ पाये जाते हैं इसका मुख्य कारण नाचना और गाना ही है।

संगीत द्वारा रोग उपचार :-

लूथर ने एक बार कहा था "संगीत कला, पैगम्बरों की कला है जो आत्मा की अशांतियों को शान्त करती है।"

सन् 1944 की बात है गाँधी जी उन दिनों अस्वस्थ थे। चिकित्सक अपना कार्य पूरी मुस्तैदी से कर रहे थे। श्री मनहर बर्वे ने भी अपनी सेवायें प्रस्तुत की। दूसरे दिन डॉक्टरी रिपोर्ट सारे समाचार पत्रों में बैनरलाइन में छपी। गाँधी जी पर संगीत का आशातीत प्रभाव पड़ा। गाँधी जी का मौन व्रत था। पास पड़े पूर्जे को उठाकर लिखे "आपका यह संगीत मेरे लिए तो औषधि है।"

संगीत द्वारा रोगोपचार होमयोंपैथी चिकित्सा पद्धति को आधार मानकर भी किया जा सकता है, जो कि प्रकृति के नियम पर आधारित है। यथा - A stronger dynamic power extinguishes a weaker dynamic power if both are similar in manifestation though defferent in kind.

इसी होम्योपैंथी चिकित्सा के आधार भूत सिद्धान्त पर हम संगीत द्वारा भी चिकित्सा कर सकते हैं। संगीत में मनुष्य के मन को, उसकी मानसिक स्थिति को प्रभावित करने की असीम शक्ति है। रोगी के मानसिक लक्षणों को आधार मानकर चुने गए रागों के द्वारा उसका उपचार करने पर हमें सफलता प्राप्त हो सकती है।

संगीत और चिकित्सा :-

यौगिक, आयुर्वेदिक, मंत्र, हौमयोपैथी एवं आधुनिक एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति की भांति "संगीत चिकित्सा" भी प्राचीन चिकित्सा का ही एक अंग रहा है। यह कोई वर्त्तमान में अविष्कारित चिकित्सा पद्धति नहीं है, इसका आविष्कार प्राचीन में ही हो चुका था। साथ ही साथ पूर्वोत्तर काल में इसके उपयोग के बहुत से प्रमाण भी हमें प्राचीन ग्रंथों से आज भी प्राप्त होते हैं। आइये संगीत चिकित्सा पर

किए गए शोध के कुछेक शोधार्थियों के विचार को जाने।

संगीत में निहित निद्रावर प्रभाव को ज्ञात करने के लिए एक प्रयोग हमारे प्रसिद्ध संगीतज्ञ पं. ओंकार नाथ ठाकुर जी ने किया था। जिन्होंने अपने गायन के प्रभाव से लम्बें समय से अनिद्रा रोग से पीड़ित इटली के राजा मुसोलिनी को सुला दिया था। नींद आना शरीर की स्वस्थता का बहुत ही महत्त्वपूर्ण लक्षण है। चूंकि प्रत्येक रोग का दुष्प्रभाव नींद पर ही होता है। डॉ. जेक्सन पाल ने अपनी पुस्तक "संगीत चिकित्सा" में लिखा है निद्रा सभी चिकित्साओं का प्रधान अंग है। नींद अत्यंत सुख कारक वस्तु है। यह अपने आप ही स्मस्त स्नायु चक्र को, सारे नर्वस सिस्टम को ठीक करती है।

शिकांगों के डॉक्टर मेकमूलर ने तो मानसिक रोगों की चिकित्सा प्रक्रिया में संगीत को ही एक माध्यम बनाया और अच्छी ख्याति प्राप्त की है। कहने का तात्पर्य यह है कि कोई भी कार्य या विद्या जिसके कारण मस्तिष्क को एकाग्र कर चिंता एवं विचारों से मुक्ति दिलाई जाय, वह नींद लाने में सहायक होता है, लेकिन इनमें संगीत का उपयोग ज्यादा प्रभावी पाया गया है। दूसरी प्रक्रियाओं की अपेक्षा संगीत मनुष्य को मन पसंद होने के कारण उसे विचार शून्यता देने के साथ-साथ आनंदित व प्रफुल्लित भी करता है, जिससे शरीर में अन्य हार्मोन्स के द्वारा परिवर्त्तन भी होते हैं जिससे स्वास्थ्य लाभ होता है।

अमेरिका के पिट्सवर्ग शहर के समीप डॉ. राल्फ लॉरेन्स ने भी संगीत से रोग निवारण की आर्श पद्धति के आधार पर एक आश्रम की स्थापना कर अनेक रोगियों को कष्टों से मुक्ति दिलाई है। संगीत चिकित्सा के प्रचार-प्रसार के लिए डॉ. लॉरेन्स ने एक मिशन की स्थापना की है, जिसका नाम है आर. फॉर. आर.। इस संस्था के पास लगभग 10 हजार टेप है जिसका उपयोग 500 से अधिक संस्थाएँ नियमित रूप से करती है। टेप निः शुल्क दिये जाते है तथा प्रायः सभी कार्यकर्ता अवैतनिक है।

डॉ. पाल ने "संगीत चिकित्सा" पुस्तक की रचना की, जिसका प्रथम बार प्रकाशन "म्युजिको मेडिकल इन्स्टीट्यूट" चेम्बर लेन लाहौर द्वारा किया गया था। इस पुस्तक में डॉ. पाल ने समस्त स्वरों की प्रकृति के अतिरिक्त शरीर पर उनके प्रभाव एवं उनके द्वारा रोगों की संगीत चिकित्सा का वर्णन किया है। डॉ. पाल ने अपने द्वारा उपचार किये गए एवं रोगों से मुक्ति प्राप्त रोगियों के पत्रों को भी प्रकाशित किया है। जिससे मानसिक, तंत्रिकातंत्र, जिगर, हृदय आदि के रोगियों के पूर्णतः रोग मुक्त होने की पुष्टि होती है।

डॉ. एरोल्ड आईवर का एक लेख लंदन की मेडिकल न्यूज पत्रिका में छपा था जिसमें उन्होंने संगीत द्वारा स्वास्थ्य संरक्षण और दीर्घ जीवन की संभावनाओं पर शोध पूर्ण प्रकाश डाला है। उन्होंने कुछ विश्व प्रसिद्ध गायकों की सूची प्रस्तुत की है और बताया है कि पूछने पर वे लोग अपने अच्छे स्वास्थ्य का आधार अपनी संगीत प्रिय अभिरूचि को ही बताते है। संगीत से होने वाले स्वास्थ्य वर्द्धक प्रभाव का अध्ययन करने वाले शोधकर्ता इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि संगीत न केवल मुनष्य को स्वस्थ रहने में मदद करता है, अपितु मनुष्य के जीवन को भी दीर्धता प्रदान करता है।

अमेरिका के हीं डॉ. एस. जे. लोड़न ने गायकों, वादकों एवं संगीत में रूचि लेने वालों का स्वास्थ्य परीक्षण करने पर यह पाया कि दूसरों की अपेक्षा व कहीं कम बीमार पड़ते हैं। डॉक्टर लोग हमारे शरीर में होने वाली क्रियाएँ जैसे हृदय की धड़कन, आँखों की पलकों का खुलना, बंद होना, सांस का निरंतर चलना आदि क्रमबद्ध प्रतिक्रियाओं को बायोंलॉजिकल क्लॉक कहते है। अब यह निःसंदेह सिद्ध किया जा चुका है कि संगीत मंद एवं तीव्र गति अनुलोमानुपात में इस "बायोलॉजिकल" को प्रभावित करते हैं।

जिस तरह संगीत चिकित्सा के उपयोग का वर्णन हमारे धार्मिक ग्रंथों से प्राप्त होते हैं उसी प्रकार ईसाई धर्म के प्रमुख ग्रंथ "बाइबिल" में भी संगीत चिकित्सा का संदर्भ दिया गया है। यथा-बाइबिल में भी संगीत चिकित्सा का विवरण मिलता है, उसमें डेविड नामक एक संगीतज्ञ का संदर्भ देते हुए कहा गया है कि जब राजा साओल का स्वास्थ्य दिन

प्रतिदिन गिरने लगा तो डेविड ने ही संगीत चिकित्सा द्वारा उसे स्वस्थ बनाया था। इस बात से यह सिद्ध होता है कि हमारे भारत वर्ष के अतिरिक्त ईसाई धर्म के मानने वाले राष्ट्रों में भी संगीत बहुत पहले ही उन्नति कर चुका था एवं उसका उपयोग चिकित्सा के रूप में भी किया जाने लगा था।

वर्त्तमान में इन विकसित देशों ने काफी उन्नति कर ली है। वहाँ न केवल संगीत चिकित्सा पर काफी प्रयोग तथा अनुसंधान हुए हैं, अपितु वर्त्तमान में हो रहे हैं एवं संगीत चिकित्सा को वहाँ अन्य चिकित्सा पद्धतियों से समानता का दर्जा प्राप्त है। वहाँ संगीत चिकित्सा के पद भी अस्पतालों में पृथक होते हैं तथा ये संगीत चिकित्सक सरकार द्वारा पंजीकृत एवं मान्यता प्राप्त होते हैं।

संगीत चिकित्सा अकेले प्रभावी सिद्ध होती ही है फिर भी इसमें एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि यदि इसे किसी अन्य चिकित्सा पद्धति के साथ भी प्रयोग किया जाय तो रोगी को कोई हानिकारक दुष्परिणाम नहीं होता, यह विशेषता अन्य चिकित्सा पद्धतियों में बहुत ही कम हैं।

'म्यूजिक इलेक्ट्रोथेरेपी' जिसे प्रथम वार चीन में प्रयोग किया गया को कई रोगों को सुधारने में उच्च सफलता वाला पाया हैं।

निष्कर्ष-

उज्जवल भविष्य के निर्माण में हमेशा जनरूचि की प्रधानता होती है। भूत के महत्त्वपूर्ण आदर्शों पर भविष्य का निर्माण होता है। वैदिक काल से ही संगीत एवं चिकित्सा दोनों विद्याए उन्नत हो चुकी थी। उस समय के संगीत में स्वाभाविकता अधिक थी अलंकारिता कम। मैं मानता हूँ कि जैसे-जैसे संगीत की पवित्रता, श्रेष्टता, स्वाभाविकता एवं कलात्मकता का ह्रास होता गया, परिणाम स्वरूप संगीत की प्रभावशीलता भी प्रभावित होती गई। संगीत और उसके साधक पूर्व की भांति निपुण, कर्त्तव्यनिष्ठ, चरित्र के धनी व प्रभावशाली नगण्य होते गए, फलस्वरूप संगीत का चिकित्सा रूप में उपयोग हमारे यहाँ कम होकर प्रायः लुप्त सा हो गया।

अस्तु संगीत आज हर दिलअजीज भावास्तु है, सर्व विदित है। संगीत को पाठयक्रम से जोड़कर सरकार ने जो श्रेष्टता प्रदान की है, सराहनीय पहल है। संगीतोन्नति के इस स्वर्णिम दौर में आवश्यकता है प्राचीन संगीत चिकित्सा से सर्वसाधारण को परिचित कराते हुए इसे पुनः समाज में स्थापित करने की।

संदर्भ :-

1. संगीत सागर, संगीत पत्रिका 1954
2. संगीत पत्रिका 1956
3. संगीत चिकित्सा (एक विश्लेषण)
   वांगमयू "शब्द ब्रह्म नाद ब्रह्म

संगीत चिकित्सा एवं आयुर्वेद

डॉ. लालति कुमारी

आयुर्वेद में स्वरों द्वारा चिकित्सा की प्रणाली प्राचीनकाल से ही गन्धर्व देव की सहायता से विकसित हुई है। शारीरिक मानसिक थकावट या तनाव के बाद मनोनुकूल संगीत के श्रवण से प्राप्त शान्ति एवं आनन्द भी इसी का द्योतक है। सामवेद में रोगों के निवारण के लिए रागों के प्रयोग का वर्णन है। आचार्य शारंगदेव ने अपने ग्रंथ संगीत रत्नाकर के स्वराध्याय में स्वरों की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए विभिन्न स्वरों से सम्बन्धित स्नायु चक्रों और शारीरिक अंगों का वर्णन विस्तारपूर्वक किया है। विशेषतः सामवेद की ऋचाओं का गायन हृदय रोगियों के लिए बड़ा लाभकारी होता है। सामवेद की स्वर लहरी शरीर के रक्त संचालन पर अनुकूल प्रभाव डालती है, जिससे रक्त में हिमोग्लोविन को अधिक ऑक्सीजन मिल जाती है।

आयुर्वेद के अनुसार दोष एवं धातु का संतुलन बिगड़ने की स्थिति में ही शरीर में रोग होता है। कोई भी चिकित्सा पद्धति इसे ही संतुलित करती है। चरक ऋषि ने मन और शरीर के सम्बन्ध में ओजस का उल्लेख किया है यह भी तांत्रिकीय कार्य प्रणाली का ही दूसरा रूप है।

पश्चिमी देशों में भी सांगीतिक चिकित्सा के महत्व को वैज्ञानिक रूप दिया जा रहा है। अस्पतालों में रोगियों को नियमित संगीत सुनाया जाता है, जिससे वे अपेक्षाकृत शीघ्र स्वस्थ हो जाते हैं। संगीत द्वारा चिकित्सा के अन्तर्गत मनोरोगों के लिए चीन में इलेक्ट्रोम्यूजिक चिकित्सा पद्धति अपनाई जा रही है। संगीत के माध्यम से कनाडा में गायों से अधिक मात्रा में दुग्ध उत्पादन किया जा रहा है।

अमेरिका के डॉक्टर रास. जे. लोडन संगीतज्ञों एवं संगीत प्रेमियों के स्वास्थ्य का परीक्षण कर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संगीत से जुड़े लोग औरों की अपेक्षा कम बीमार पड़ते हैं। न्यूयार्क के डॉक्टर राडवर्ड पोडोलॉस्की ने संगीत को सर्वोपयोगी व्यायाम माना है जबकि जापानी संगीतकार गिनीची सुजुकी के अनुसार संगीत सहिष्णुता और कोमलता के भावों को जागृत करता है। विभिन्न बरसोपयुक्त स्वरों अथवा रागों, तालों के प्रयोग से मनोरोगियों को अधिक लाभ हुआ है। संगीत चिकित्सा का प्रथम प्रयोग विश्वयुद्ध के बाद सैनिकों के लिए किया गया था। इसके बाद आज कई मनोचिकित्सक एवं संगीत चिकित्सक रोग निवारण हेतु विभिन्न अस्पतालों एवं प्रयोगशालाओं में संगीत का प्रयोग कर इलाज कर रहे हैं।

एकाकीपन दूर करने, प्रफुल्लित करने, अन्तर्मुखी को बहिर्मुखी बनाने, थकान दूर कर कार्य क्षमता बढ़ाने और शक्ति संचार करने में संगीत अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। स्मरण शक्ति के विकास में सहायक संगीत का ही यह परिणाम है कि कोई पद्यात्मक रचना अपनी संगीतात्मक शक्ति के कारण शीघ्र याद हो जाती है।

मनःस्थिति के अनुकूल प्रयोग में लाया गया स्वरसमूह शीघ्रातिशीघ्र लाभदायक होता है।

संगीत चिकित्सा पद्धति में रोगोपचार में सहायक राग -

हृदय रोग	-	भैरवी, शिवरंजनी
दमा	-	श्री केदार, श्याम-कल्याण
आधा सिर का दर्द	-	दरबारी कान्हड़ा, सोहनी, जैजैवन्ती
मानसिक रोग	-	ललित, केदार
चर्म रोग	-	मेघ-मलहार

इस तरह अनेकों उदाहरण देखने को मिलता है, जिससे यह सिद्ध हो जाता है कि मानव मस्तिष्क और शरीर दोनों संगीत से प्रभावित होता है।

पोस्ट डॉक्टरल फेलो, विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा

संगीत तथा सौन्दर्य के अन्तः सम्बन्ध पर एक दृष्टि

डॉ. रूचि मिश्रा

ललित कला का प्रमुख उद्देश्य सौंदर्य की अभिवृद्धि है, "कला की दृष्टि में सौन्दर्य व्यापार नहीं, स्थिति है। वस्तुस्थिति और मनःस्थिति का अद्भुत संयोग।" संगीत के सौन्दर्य पर दो निकायों ऑटोनॉमी (स्वायत्तवाद, कलावाद, निरपेक्षवाद), हैट्रोनॉमी (संदर्भवाद) के अन्तर्गत विचार किया गया है। ऑटोनॉमी को अगर संगीत के संदर्भों में समझाना हो तो यह कहा जा सकता है कि जहाँ स्वर-लय से प्राप्त विशिष्ट आनन्द को किसी प्रतीक-उपमा-संदर्भ से जोड़ने की चेष्टा ना की जाये वहाँ संगीत की स्वायत्ता प्रदर्शित होती है। इसके विपरीत संदर्भवाद के अन्तर्गत स्वर-लय के उपरान्त भी विभिन्न संदर्भों को (विशेषतः गायन में पद को) सम्मिलित करना तथा प्राप्त होने वाले विशिष्ट आनन्द को किसी प्रतीक-उपमा-संदर्भ से जोड़ते चले जाना आता है। हमारा भारतीय राग संगीत विभिन्न संदर्भों से आवेष्टित है, जिसमें अगर गायन की बात करें तो पद उससे जुड़ा अर्थबोध और तज्जनित नाट्यतत्व भारतीय संगीत में संदर्भवाद की व्यापकता को सिद्ध करते हैं।

महर्षि रविन्द्र नाथ टैगोर के अनुसार "Music is the purest form of Arts and therefore the most direct expression of beauty. Therefore the true poets seek to express the universe in terms of Music- अर्थात्- संगीत कला का शुद्धतम प्रकार है इसलिये यह सौन्दर्य को यह पूर्ण रूप से प्रकाशित करने वाला भाव भी है। इस कारण से सच्चे कवि समस्त ब्रह्माण्ड को इसी के द्वारा परिभाषित करने का प्रयास करते हैं।

भाव प्रदर्शन या सौन्दर्यानुभव कराने में संगीत का स्थान सभी ललित कलाओं की अपेक्षा विस्तृत एवं विशाल है। संगीत कला दृश्य-अदृश्य सूक्ष्मताओं, व्यक्त-अव्यक्त भावों को ध्वनि एवं लय की सहायता से प्रकट करती है। संगीत कला मुख्यतः स्वर योजना और भावाभिव्यिक्त है, जिसका परम लक्ष्य उस परमानन्द की प्राप्ति है। जब भी हम संगीत और सौन्दर्य के अन्तर्सम्बन्ध की बात करते हैं तो हमें यह ज्ञात होता है कि संगीत का सौन्दर्य मुख्यतः नाद और लय के सूक्ष्म तत्वों से अन्तःसम्बन्धित होता है एवं यही तत्व संगीत में प्राण प्रतिष्ठा करते हैं।

श्रुति से स्वर, स्वर से राग एवं राग से रस आदि वह विभिन्न सोपान हैं जिनसे सौन्दर्य पक्ष अन्तःसम्बन्धित है। बात चाहे संगीत के सूक्ष्म उपकरणों की हो या नाद, श्रुति, सप्तक, स्वर, राग, रागों के अलंकरण या उनके विस्तार की हो सबमें सौन्दर्य तत्व स्वयंभू रूप में विराजमान है क्योंकि राग संगीत का मूल उद्देश्य जन-मन का रंजन कर उसे परमानन्द का अनुभव कराने और खुद उसमें लीन हो जाने से ही है। संगीत के मौलिक तत्वों में सौंदर्य तत्व स्वतः ही समाहित होता है। संगीत एक ललित कला है अर्थात् सुन्दर और मनोहर कला है। अभिनव गुप्त इस संदर्भ में कहते हैं कि **संगीत कं न मोह्येत्** अर्थात् संगीत कला किसे मोहित नहीं करती। संगीत की मोहकता के संदर्भ की की ही व्याख्या करते हुए संगीतचूड़ामणि में कहा गया है कि-

योगध्यानादिकं यस्मात् सर्वलोकानुरींम्
तस्मादनन्तफलदं गीतं स्याद् भुक्तिमुक्तिदम्।।

असिस्टेंट प्रोफेसर, गायन विभाग, आर्य महिला पी.जी.कॉलेज, चेतगंज, वाराणसी

अर्थात्- योग, ध्यान आदि समस्त साधनों की अपेक्षा गीत ही अनंत फल देने वाला और भुक्ति-मुक्ति दायक है। संगीत कला एक अत्यन्त गूढ़ कला है। यह किसी अथाह सागर की तरह वृहद व विस्तृत है, इस कारण इसके किसी एक पक्ष को हम सौंदर्य का सर्जक नहीं कह सकते। इस कला के सौन्दर्य पक्ष की विवेचना में छोटे से छोटा तथ्य भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। संगीत कला के सौन्दर्य सर्जक तत्वों को हम दो वर्गों में बाँट सकते हैं- स्वर-राग, लय-ताल परन्तु जब हम शास्त्रीय गायन के सौंदर्य की बात करते हैं तो राग की शाश्वत परंपरा के अन्तर्गत ही इन सभी सर्जक तत्वों का समावेश हो जाता है और संगीत के मूल सौन्दर्य वाहक के रूप में राग-संगीत की परंपरा ही हमारे समक्ष उभरकर आती है। संगीत कला में यही राग तत्व सौन्दर्यानुभव का मूल आधार होता है। राग संगीत के अलावा राग सौंदर्य में वृद्धि करने वाले मौलिक एवं महत्वपूर्ण तत्वों की भी व्याख्या करना भी आवश्यक है जो राग की अवधारणा को स्वरूप प्रदान करते हैं और उसके पूरे व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। राग-संगीत के अन्तर्गत सौंदर्य वृद्धि करने वाले प्रमुख तत्वों की विवेचना निम्नलिखित है-

ध्वनि- संगीत कला का मूल आधार ध्वनि है। ध्वनि को ही सर्व जगत का कारण बताते हुए मतंग मुनि कहते हैं कि-

ध्वनिर्योनिः परा ज्ञेया ध्वनिः सर्वस्य कारणम्
आक्रान्तं ध्वनिना सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्।।

यह भी इस कला की विशेषता ही है कि ध्वनि को भी यहाँ साधारण अर्थ में ना लेकर विशिष्ट अर्थ में लिया गया है। ध्वनि का उपयोग जब संगीत के विशिष्ट अर्थ में होता है तब वह नाद के रूप में व्यक्त होता है।

नाद- संगीत में प्रयुक्त होने वाली विशिष्ट ध्वनि को नाद कहते हैं। संगीत में नाद के महत्व की व्याख्या करते हुए पं. लोचन कहते हैं-

न नादेन विना गीतं न नादेन विना स्वरः
न नादेन विना ज्ञानं न नादेन विना शिवः।।

अर्थात्- नाद के विना न स्वर की उत्पत्ति संभव है, ना ही गीत रचना संभव है, न नाद के विना ज्ञान प्राप्त हो सकता है और न नाद के विना (शिव) कल्याण की प्राप्ति हो सकती है। इस प्रकार भारतीय चिंतन में नाद को ही सब तत्वों का सार माना गया है।

नाद को परब्रह्म स्वरूप ओंकार स्वरूप माना गया है। चिदानंद रूपी इस नाद की उत्पत्ति का प्राकृतिक कारण कंपन है क्योंकि नियमितता सौन्दर्य का एक सर्वमान्य सिद्धान्त है अतः इन दोनों के अन्तःसम्बन्ध के कारण ही संगीत के सौन्दर्य चिन्तकों ने अनियमित ध्वनि को कोलाहल की संज्ञा दे कर संगीत के सौन्दर्य संसार से अलग कर दिया और नियमित ध्वनि को ही नाद की संज्ञा प्रदान कर के उसे संगीत कला में मान्यता प्रदान की। यही नाद संगीत कला का मूल स्त्रोत है। गीत, वाद्य और नृत्य ये तीनों कलाऐं ही नादात्मक हैं। नाद के पाँच प्रकार माने गये हैं- अतिसूक्ष्म, सूक्ष्म, पुष्ट, अपुष्ट तथा कृत्रिम एवं प्रत्येक के पाँच स्थानों का वर्णन भी संगीत ग्रंथों में किया गया है जो कि इस प्रकार हैं- नाभि, हृदय, कंठ, मूर्धा तथा मुख। संगीत में इन पाँच प्रकारों में से तीन प्रकारों का ही प्रयोग होता है जो कि इस प्रकार है- हृदय में मंद्र, कंठ में मध्य, और मूर्धा में तार जो क्रमशः द्विगुणित हैं। नाद प्रकारों में नाद का विविधतापूर्ण सौंदर्य निहित है। नाद के दो भेद कहे गये हैं आहत और अनाहत इसके अतिरिक्त नाद की तीन विशेषताऐं कही गई हैं जो यथास्थान सौन्दर्य वृद्धि में सहायक होती हैं। जो कि इस प्रकार हैं-

- **नाद का छोटा-बड़ापनः-** धीरे से उच्चारित नाद को छोटा नाद तथा जोर से उच्चारित नाद को बड़ा नाद कहते हैं। संगीत में भाव सौन्दर्य को और दीप्त करने की दृष्टि से इस नाद का महत्व है।
- **नाद का ऊँचा-नीचापनः-** श्रुति व स्वरों की रचना नाद के इसी गुण के आधार पर हुई है। नाद का यह गुण इन दोनों के बीच की ऊँचाई और नीचाई को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार संगीत के अन्तर्गत इस नाद का मौलिक रूप से महत्व है।
- **नाद की जाति या गुणः-** नाद के इस गुण की सहायता से हम किसी भी ध्वनि के मुख्य स्त्रोत को पहचान लेने में सक्षम हो पाते हैं कि यह ध्वनि किसकी है, जैसे किसी व्यक्ति विशेष की ध्वनि, हारमोनियम की ध्वनि, तबले की ध्वनि आदि। नाद का यह गुण वैविध्य सौन्दर्य का एक महत्वपूर्ण लक्षण है।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर हम यह कह सकते है कि नाद के इन गुणों द्वारा असंख्य सांगीतिक ध्वनियों की उद्भावना होती है जिससे विभिन्न भावों की उत्पत्ति होती है अतः भावोद्रेक द्वारा संगीत सौन्दर्य को उद्दीप्त करने में नाद का महत्वपूर्ण स्थान है।

श्रुति- श्रुति वह सुंदर ध्वनि है जिसका स्थान नाद और स्वर के मध्य में है। श्रुति की व्याख्या करते हुए पं. अहोबल संगीत पारिजात में कहते हैं-

श्रुतयः स्युः स्वरा भिन्ना श्रवणत्वेन हेतुना
अहिकुराऽलतत् तत्र भेदोक्ति शास्त्रसम्मता।।

अर्थात् जो सुनाई दे वह श्रुति है। आचार्यों ने एक सप्तक में श्रुतियों की संख्या बाईस मानी है और इन्हें पाँच जातियों में विभक्त किया है। इस विभाजन को श्रुतिजाति कहा गया, जो कि इस प्रकार हैं- दीप्ता, आयता, करूणा, मृदु और मध्य। सामान्य रूप से दीप्ता का अर्थ है भावों को उत्तेजित करने वाली, आयता का अर्थ विस्तृत करने, करूणा का आर्द्र करने, मृदु का कोमल और मध्या का अर्थ मध्यम भावों से है। इन्हीं भावों के आधार पर बाईस श्रुतियों को इन श्रुतिजातियों में निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है-

दीप्ता	तीव्रा, रौद्री, वज्रिका, उग्रा
आयता	कुमुद्वती, क्रोधा, प्रसारिणी, संदीपिनी, रोहिणी
करूणा	दयावती, आलापिनी, मदंतिका
मृदु	मंदा, रति, प्रीति, क्षिति
मध्या	छंदोवती, रंजनी, मार्जनी, रक्तिका, रम्या, क्षोभिणी

श्रुति ही राग सौंदर्य का आधार है क्योंकि श्रुतियाँ ही प्रयोग में आकर स्वर का रूप धारण करती हैं और रस का संचार करती हैं। स्वरों के साथ श्रुतिजातियों की स्थिति इस प्रकार की है-

दीप्ता, आयता, मृदु, मध्याषड्ज
करूणा, मध्या, मृदु ऋषभ्
दीप्ता, आयता गंधार
दीप्ता, आयता, मृदु, मध्या मध्यम
मृदु, मध्या, आयता, करूणा पंचम
करूणा, आयता, मध्या धैवत
दीप्ता, मध्या निषाद

इस प्रकार संगीतोपयोगी ध्वनि में से चयनित बाईस ध्वनियों को पाँच श्रुतिजातियों में विभक्त किया गया। इन श्रुतिजातियों के विभाजन का आधार इनसे संप्रेषित होने वाले भाव रहे। इनके अन्तर्गत आने वाली श्रुतियाँ भी वस्तुतः उन्ही भावों की पोषक होती हैं जिस प्रकार के भाव वाली श्रुतिजाति से वह सम्बन्धित होती हैं, बाद में यही श्रुतियाँ स्वरों के रूप में प्रयुक्त होकर सौन्दर्य की वृद्धि करती हैं।

स्वर- श्रुत्यन्तरभावी यः स्निग्धोऽनुरणनात्मकः
स्वतो रींयति श्रोतृचितं स स्वर उच्यते।।

अर्थात् श्रुतियों के बीच का वह अंतर जो स्निग्ध हो तथा अनुरणन सहित हो और जो सुनने वालों को प्रसन्न करे वह स्वर कहलाता है। स्वर की यह परिभाषा स्वर-सौन्दर्य की परिचायक है। शास्त्रों में स्वर को अनुरणनयुक्त, स्निग्ध, मनोहर, सुंदर, रंजक और प्रकाशयुक्त माना गया है। स्वर की सहायता से ही राग का मूल स्वरूप प्रकट होता है। स्वरों के कोमल व तीव्र रूपों, राग में लगने वाले वादी, संवादी, अनुवादी एवं विवादी आदि स्वरों की सहायता से राग का रूप और निखर कर आता है एवं स्वर ही गीत का आधार तत्व है, इस कारण स्वर का स्थान संगीत सौन्दर्य की वृद्धि में अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है।

सप्तक- एक स्थान में मूल स्वर सात होने के कारण उसे सप्तक कहा गया। मानव कंठ की क्षमता, सहजता, सीमा एवं स्वर-सौन्दर्य के आधार पर संगीत में तीन सप्तकों को मान्यता दी गई है, जो कि क्रमशः मंद्र, मध्य और तार हैं। भारतीय संगीत में सप्तक सौंदर्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि कुछ रागों की प्रकृति व भाव-सौंदर्य विशिष्ट सप्तकों में ही अधिक सुन्दर प्रतीत होता है। कुछ राग मंद्र सप्तक, कुछ मध्य एवं कुछ तार सप्तक प्रधान होते हैं, जैसे- राग दरबारी मंद्र, राग पूरिया मध्य और राग सोहिनी तार सप्तक प्रधान राग है। रागों का पूर्वांग और उत्तरांग प्रधान स्वरूप भी राग संगीत में सौंदर्य पक्ष को और उजागर करने में सप्तक की प्रमुखता की द्योतक है।

ग्राम- समूहवाचिनौ ग्रामौ स्वरश्रुत्यादिसंयुतौ
यथा कुटुम्बिनः सर्वः एकीभूत्वा बसन्ति हि
सर्वलोकेशु स ग्रामो यत्र नित्यं व्यवस्थितः।।

ग्राम एक समूहवाची शब्द है। सर्वप्रथम ग्राम का यही समूह/कुटुंब का सिद्धान्त सौन्दर्यशास्त्र के मूल लक्षण एकत्व, सुसंगठन की ओर संकेत करता है। ग्राम संवादी स्वरों का वह स्वर समूह है जिसमें स्वर व श्रुतियाँ आदि व्यवस्थित रूप से विद्यमान होते हैं और जो मूर्च्छना, तान, जाति, वर्ण, अलंकार आदि का आश्रय हो वह ग्राम कहलाता है। श्रुति व स्वरों के व्यवस्थित रूप से विद्यमान होने के कारण सौंदर्य का वह लक्षण प्रकट होता है जिसमें व्यवस्था को सौंदर्य का महत्वपूर्ण लक्षण माना गया है। मूर्च्छना, तान, जाति, वर्ण, अलंकार आदि का आश्रय होने के कारण ग्राम पूर्णतः श्रृंगार से सम्बन्धित हो जाता है जो सौंदर्यवाची है।

ग्राम के दो प्रकार माने गये हैं-षड़ज व मध्यम। ज्ञात हो की ृाड्ज ग्राम में षड़ज-पंचम संवाद और मध्यम ग्राम में ऋषभ्-पंचम संवाद रहता है। संवाद तत्व स्वयं ही सौंदर्य बोधक है एवं यही संवाद तत्व ही सौंदर्यशास्त्रीय समता, समानुपात आदि शब्दों का सांगीतिक पर्याय है। इस प्रकार ग्राम व्यवस्था के अन्तर्गत सौन्दर्य के मूल सिद्धान्त निहित है एवं ग्राम अनेक सौंदर्य तत्वों का आश्रय स्थल है।

मूर्च्छना- मूर्च्छना की व्याख्या करते हुए भरतमुनि कहते हैं-

क्रमयुक्ताः स्वराः सप्तमूर्च्छनेत्यभिसंज्ञिताः

अर्थात् सात स्वरों के क्रमानुसार प्रयोग को मूर्च्छना की संज्ञा दी जाती है। मूर्च्छना शब्द का निर्माण मूर्च्छ् धातु से हुआ है, जिसका अर्थ है चमकना और उभरना। वास्तव में इसकी रचना में जो नई स्वर व्यवस्था उभरती है वह मूर्च्छना की प्रमुख सौन्दर्यपूर्ण उपलब्धि है। किसी राग के अन्य स्वर को षड्ज मानकर किसी अन्य राग के स्वरूप के दर्शन कराना ही मूर्च्छना का प्रयोजन है, जैसे राग भैरवी की स्वरों में कोमल ऋषभ् को षड्ज मानकर तार सप्तक के कोमल ऋषभ् तक गायें तो राग यमन का स्वरूप प्रकट हो जायेगा। इस प्रकार मूर्च्छना से नये श्रुत्यंतर युक्त नई स्वरावली का चमत्कृत कर देने वाला सौंदर्य प्रकट होता है।

जाति- यस्माज्जायते रसप्रतीतिरभ्यत इति जातयः

मतंग मुनि ने जाति को रस की प्रतीति का कारण बताते हुए उसका निश्चित संबंध सौंदर्य के साथ जोड़ दिया है। जाति श्रुति, ग्रह, स्वरादि समूहों से निश्चित रचना है। जिस प्रकार मनुष्य जातियों में भिन्न भिन्न संस्कार, प्रकृति और गुण होते हैं उसी प्रकार स्वरों की जातियों का अपना रूप, स्वरूप व चलन होता है जो उनका अपना विशिष्ट सौंदर्य प्रदर्शित करता है।

राग- जन-मन के रंजन का हेतु होने के कारण विशिष्ट स्वर वर्णों से विभूषित रचना को राग कहा गया। इसे मतंग मुनि ने इस प्रकार से परिभाषित किया है-

स्वर वर्ण विशेषेण ध्वनिभेदेन या पुनः
रज्यते येन यः कश्चित् स रागः संमतः सताम्।।

राग के सौंदर्य गुणों को उजागर करती हुई एक परिभाषा संगीतराज ग्रंथ में प्राप्त होती है, जिसमें राग को इस प्रकार से परिभाषित किया है-

विचित्रवर्णालंकारो विशेषे (शो) यो ध्वनेरिह
ग्रहादि स्वरसंदर्भो रंजको राग उच्यते।।

अर्थात् जिस ध्वनि या स्वरावली में वर्ण, अलंकारों का वैचित्र्यपूर्ण प्रयोग हो, जिसमें ग्रहादि स्वरों का संदर्भ हो तथा जो रंजक हो वह राग है। राग के मनोहारी, चित्तरंजक गुण को हमारे शास्त्रों में वर्णित किया गया है। राग का सीधा सम्बन्ध रंजकता से है। अपने रंजनकारी मोहक स्वरूप द्वारा राग सुनने वालों के हृदय का रंजन करता है और संगीत-सौन्दर्य की वृद्धि करता है।

बंदिश- संगीत के मूल तत्वों स्वर-राग और लय-ताल का समन्वय स्थल बंदिश है। बंदिश वह दर्पण है जिसमें राग के स्वरूप व चलन को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। बंदिश के विधान में राग की आकृति का श्रृंगार होता है, जिसमें कलाकार पद, विभिन्न अलंकरण तत्वों व स्वयं की कल्पना के आधार पर किये गये स्वर विस्तार/स्वर प्रयोगों द्वारा नित नवीन सौन्दर्य भावों का सृजन व संप्रेषण करता है।

आलाप- इसका प्रयोग राग संगीत में अलंकरण के तत्व के रूप में होता है। राग के स्वरों को विलंबित गति में चैनदारी के साथ, मुक्त रूप से विस्तार करने को आलाप कहते हैं। आलाप को अनिबद्ध गान के अर्न्तगत माना गया है। इसके अर्न्तगत राग के स्वरों की क्रमशः बढ़त की जाती है जिससे राग का विस्तार

तो होता ही है साथ ही राग का सौंदर्य क्रमशः निखरता जाता है और प्रत्येक क्षण नये विस्तार के माध्यम से रसानुभव भी होता है।

तान- स्वरों को द्रुत गति में राग के स्वरूप के अनुसार गाने/बजाने की क्रिया तान कहलाती है। तान का मुख्यतः प्रयोग गले की तैयारी, गायन में विविधता दिखाने के उद्देश्य से किया जाता है। राग सौंदर्य की वृद्धि करने में तानों का अपना एक विशिष्ट स्थान है जिसके अन्तर्गत कलाकार राग के अन्तिम भाग में तानों का प्रयोग करके वैचिञ्य, चमत्कार, कलापक्ष और भाव पक्ष के द्वारा राग सौंदर्य की वृद्धि करते हैं।

वर्ण- स्वरों के विविध प्रकार के प्रयोग को वर्ण कहते हैं। पं. शारंगदेव इसे परिभाषित करते हुए कहते हैं- गानक्रियोच्यते वर्णः स चतुर्धा निरूपितः, भावार्थ के अनुसार- गाने की क्रिया को वर्ण कहते हैं जिसके चार प्रकार कहे गये हैं- स्थायी वर्ण, आरोही वर्ण, अवरोही वर्ण संचारी वर्ण। वर्णों के आधार पर राग के भावों को उजागर करने वाले अनेक स्वर समूह बनते हैं, वर्ण द्वारा ही आलाप, तान, बंदिश आदि का अलंकरण किया जाता है। वर्णों के प्रयोग से राग सौन्दर्य अपने विविधता को प्राप्त होता है, जिससे उसका सौंदर्य साकार हो उठता है।

अलंकार- यह शब्द स्वयं में सौन्दर्यवाची है। इसका आधार वर्ण ही हैं। संगीतरत्नाकर में अलंकार को इस प्रकार से उल्लेखित किया गया है-

विशिष्टं वर्णसंदर्भमलंकारं प्रचक्षते

अर्थात् विशिष्ट वर्ण-संदर्भ को अलंकार कहते हैं। गीत के संदर्भ में अलंकार के महत्व की व्याख्या करते हुए भरत मुनि कहते हैं-

शशिना रहितेव निशा क्विलैव नदी लता विपुश्पेव

अविभूशितेव चा स्त्री गीतिरलंकारहीना स्यात्।।

इस व्याख्या का अर्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार चंद्रमा बिना रात्रि, जल के बिना नदी, पुश्परहित लता तथा आभूषण बिना स्त्री शोभा नहीं देते उसी प्रकार अलंकार रहित गीत भी शोभा नहीं देता। अलंकार का प्रयोग संगीत की शोभा बढ़ाने के लिए किया जाता है। इसमें सौंदर्य के क्रम, समता और संतुलन आदि सिद्धान्त सम्मिलित होते हैं जिससे यह सौंदर्य वृद्धि करता है।

विविध अलंकरण तत्व- राग-संगीत की सौन्दर्य वृद्धि हेतु कई अलंकरण के तत्वों का विधान हमारे संगीतशास्त्र में किया गया है, जिनके विविध प्रयोग से राग-सौन्दर्य खिल उठता है उसमें विविधता, नवीनता और व्यापकता आती है, कुछ मुख्य तत्वों की व्याख्या निम्नलिखित है-

मींड- राग के सौन्दर्य वर्धन में मींड का महत्वपूर्ण स्थान है। एक स्वर से दूसरे स्वर तक ध्वनि को बिना खंडित किये हुए जाने की क्रिया को मींड कहते हैं। इसे निम्न प्रकार से लिखते हैं- प रे। जब मींड का प्रयोग आरोहित क्रम में हो तो अनुलोम मींड और जब अवरोही क्रम में हो तो विलोम मींड कहलाती है। मींड के सहयोग से स्वरों का विशिष्ट प्रयोग किया जाता है अनेक रागों में राग वाचक क्रिया के रूप में मींड का प्रयोग होता है, जैसे- कन्हड़ा में निशाद से पंचम स्वर तक मींड युक्त प्रयोग एवं कल्याण में पंचम से ऋषभ् स्वर तक का मींड युक्त प्रयोग। इस प्रकार मींड राग सौन्दर्य पक्ष की वृद्धि कराने वाला एक कारक है।

कण- कण तत्व का राग सौन्दर्य में महत्वपूर्ण स्थान है। यह एक सूक्ष्म तकनीक है जिसमें किसी स्वर का उच्चारण करते समय उसके आगे या पीछे के किसी स्वर को जरा सा स्पर्श करते हैं। राग के श्रृंगार तत्व के रूप में और राग को रंजकता व सुन्दरता प्रदान करने में कण तत्व का महत्वपूर्ण स्थान है।

खटका- खटके में स्वर का स्पर्श प्रधान रहता है, जब एक स्वर के ऊपर अन्य स्वर का आघातपूर्ण कण लगाकर उच्चारण किया जाता है तो वह क्रिया खटका कहलाती है।

इसका प्रयोग भी स्वरों के अलंकरण तत्व के रूप में होता है एवं राग-संगीत की सौंदर्य वृद्धि में इसकी भी महत्वपूर्ण भूमिका है।

मुर्की- इसके अन्तर्गत अत्यन्त शीघ्रता के साथ दो-तीन स्वरों का वक्र प्रयोग किया जाता है। इसे लिखने के लिए मूल स्वर के ऊपर बाईं ओर दो स्वरों का कण लगाया जाता है -रेसा नि इसका उपयोग भी राग के सौंदर्य वृद्धि में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

आविर्भाव-तिरोभाव- किसी राग के विस्तार के समय जब उसके समप्रकृतिक रागों के छोटे-छोटे स्वर समूहों को दिखाकर थोड़ी देर के लिए मुख्य राग से हटना 'तिरोभाव' कहलाता है एवं फिर मुख्य राग के स्वरों को कुशलता पूर्वक दिखाकर राग-रूप स्पष्ट करने को आविर्भाव कहते हैं।

गमक- स्वरस्य कम्पो गमकः श्रोतृचित्त सुखावहः

अर्थात् स्वरों का ऐसा कम्पन जो श्रोता के हृदय को प्रसन्न करे वह गमक कहलाता है। गमक के अन्तर्गत स्वरों के विविध प्रकार के उच्चारण करने के विधान को दर्शाया गया है जिससे **'श्रोतृचित्त सुखावहः'** श्रोताओं के हृदय का रंजन होता है। गमक संगीत सौंदर्य का एक श्रृंगारिक अवयव है, जिसके अन्तर्गत विशिष्ट ध्वनि भेद के द्वारा सौन्दर्य वृद्धि की जाती है।

स्थाय- स्थाय को राग का अवयव कहा गया है, जो कि राग विस्तार का एक महत्वपूर्ण तत्व है। इसे ठाय भी कहा जाता है। स्थाय अर्थात् छोटे-छोटे स्वर समुदायों द्वारा राग में वैचिञ्य और सौन्दर्य उत्पन्न किया जाता है। यह राग के अवयव हैं, सर्जक तत्व हैं एवं पूरक हैं। स्थाय के चार गुण हैं- स्थान, तान, गमक व मान। जिनका कार्य राग के स्वरूप की पहचान करना और स्वर श्रृंगार करने से है। इनमें वह सभी तत्व समाहित हैं जो राग संगीत के सौंदर्य को बढ़ाने के लिये आवश्यक हैं।

काकु-भिन्न कंठ ध्वनिधीर काकुरित्यभीधीयते।

कंठ की विभिन्नता के कारण ध्वनि में जो भिन्नता उत्पन्न होती है, उसे काकु कहते हैं। ध्वनि में मन के विभिन्न भावों जैसे - क्रोध, हर्ष, आश्चर्य, शोक आदि को प्रकट करने की अद्‌भुत शक्ति होती है। इन विभिन्न मनोभावों के कारण ध्वनि में जो विभिन्नता या विचित्रता उत्पन्न होती है उसे काकु कहते हैं। काकु का मूल अर्थ ध्वनि के उतार-चढ़ाव से है। संगीत में भावोत्पत्ति के लिये जब स्वरों को आवश्यकतानुसार मृदु, तीव्र, करूण आदि बनाया जाये तो उक्त प्रक्रिया को काकु कहते हैं। काकु विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति का कारण बन रसानुभूति का माध्यम बनकर श्रोता व प्रयोक्ता दोनों को सौन्दर्यनुभव कराता है।

लय- क्रियानन्तरविश्रान्तिर्लयः

अर्थात् क्रियाओं के बीच का अवकाश ही लय है। वह गति जो निरन्तर प्रवाहमान रहे और समान रूप से चलती रहे संगीत में ऐसी गति को लय कहते है, जो कि नियमित हो। लय को सौन्दर्य दृष्टि से परिभाषित करते हुये कहा गया है कि- लय सुंदर का चरम विधान है। इसी कारण सुंदर का सीधा सम्बन्ध हृदय की धड़कन से है। लय संगीत में अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसके बिना संगीत का सौंदर्य बना नही रह सकता। लय ही संगीत में काल तत्व का रूप निर्धारण करती है और तब ताल की रचना होती है।

संगीत में मुख्य रूप से तीन प्रकार की लय मानी गई है-

1. विलम्बित लय- जब क्रियाओं के मध्य का समयांतर चार सेकेण्ड या उससे अधिक होता है तो उसे विलंबित लय कहते हैं।
2. मध्य लय- जब क्रियाओं के मध्य का समयांतर दो सेकेण्ड के अंतराल होता है तो उसे विलंबित लय कहते हैं।
3. द्रुत लय- जब क्रियाओं के मध्य का समयांतर एक सेकेण्ड के अन्तराल से होता है तो उसे विलंबित लय कहते हैं।

लय स्वयं में गति का परिचायक है। संगीतज्ञों की सूक्ष्म सौंदर्य चेतना व प्रतिभा से लय का गतिमान स्वरूप श्रोताओं को आनन्द प्रदान करता है। लय के माध्यम से संगीत सौंदर्य अभिवृद्ध होता है।

लयकारी- जिस प्रकार स्वर विस्तार हेतु स्वरों का प्रयोग विभिन्न प्रकार से किया जाता है उसी प्रकार लय का प्रयोग जब विभिन्न प्रकार से हो तो उसे 'लयकारी' कहते हैं। लयकारियाँ अनेक हो सकती हैं, जैसे- दुगुन, तिगुन, चौगुन, आड़, कुआड़, बिआड़ आदि। इन विभिन्न लयकारियों के अनंतर की गति समसामयिक होती है। इन लयकारियों में समता में विविधता और विविधता में समता का पारस्परिक संबंध संगीत सौंदर्य की अभिव्यक्ति करता है।

ताल- काल को मापने व लय को प्रकट करने का कलात्मक रूप ताल है। निश्चित मात्राओं के उन समूहों को ताल कहते हैं, जिनका निर्माण धी, ना, किट, तक आदि वर्णो से होता है एवं जिन्हें तबला, परवावज मृदंग आदि वाद्यों पर बजाया जाता है। तालों के कई प्रकार हैं जैसे- एकताल, झपताल, चारताल, तीनताल। विशिष्ट गीत विधा के साथ

बजने वाली तालें संगीत सौंदर्य को और उभारती हैं और राग संगीत को गति प्रदान कर सभी को रससिक्त करती हैं

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन में हमने संगीत के कुछ मौलिक तत्वों की व्याख्या की जो राग-संगीत की सौन्दर्य वृद्धि के महत्वपूर्ण कारक हैं एवं संगीत व सौंदर्य के अन्तर्सम्बन्ध का प्रमाण भी। संगीत-सौन्दर्य की वृद्धि की जिज्ञासा उसके प्रति गूढ़ चिन्तन और उस गूढ़ चिन्तन के परिणाम स्वरूप उपजे विशिष्ट नियम के संयोग से एक साधारण सी ध्वनि नाद, नाद से श्रुति, श्रुति से स्वर और स्वर से सप्तक के रूप में नित सौंदर्य उपदानों के संयोग से युक्त होकर राग में परिवर्तित होती है एवं काकु, स्थाय, गमक व विविध अलंकरणों द्वारा उसका सौंदर्य और निखर उठता है फिर लय और ताल में बँधकर वो बंदिश का स्वरूप धारण करके, आलाप, तान द्वारा विस्तार को प्राप्त हो सबके हृदय को आह्लादित करती है और सौन्दर्य भाव की वृद्धि करती है परन्तु यह तो रही राग-संगीत में निहित मौलिक तत्वों की व्याख्या इसके पश्चात् कुछ ऐसे भी कारक हैं जो राग-संगीत के सौंदर्य पक्ष में परोक्ष रूप व्याप्त होते हैं। इनकी विवेचना इस प्रकार है-

स्वरित- स्वरित का अर्थ दो प्रकार से लिया जाता है। स्वरित अर्थात् षड्ज स्वर एवं स्वरित को तानपुरे के अर्थ में भी लिया जाता है। जहाँ एक ओर स्वरित की गूँज एक पृष्ठभूमि के रूप में राग प्रस्तुतिकरण में व्याप्त होकर राग-सौंदर्य की वृद्धि करती है, वहीं दूसरी ओर षड्ज राग का आधार स्वर है जो कभी भी वर्जित नहीं होता और राग-संगीत का आधार स्वर बनकर राग-सौंदर्य का मूल प्रमाण बनता है।

संवाद तत्व- भारतीय संगीत में स्वर-संवाद की विवेचना भरत मुनि के समय से ही प्राप्त होती है। रागों की रचना, वाद्यों को मिलाना, वादी-संवादी का आधार आदि सभी कुछ संवाद तत्व पर ही आधारित है। संवाद का अर्थ स्वरों के उन जोड़ो से है जो आपस में संवाद करते हैं। भारतीय संगीत में सा-प, सा-म का संवाद अति इष्ट और सा-सां का संवाद आदर्श माना गया है। इसके अतिरिक्त सा-ग, सा-ध का संवाद भी इश्ट माना गया है परन्तु सा-ध्र और सा-ग्र का संवाद इष्ट नहीं माना गया है। संवाद भाव से राग के स्वर मधुर, रागोचित और सौन्दर्य गुणों से युक्त होकर मानव मन को आनन्दानुभूति कराते हैं।

रागों का समय-सिद्धान्त- भारतीय संगीत में रागों के समय सिद्धान्त की मान्यता भी राग सौन्दर्य सिद्धान्त से जुड़ा हुआ एक प्रमुख तत्व है। इस सिद्धान्त में प्रत्येक राग का समय निर्धारित रहता है, और समयानुसार राग के गायन/वादन से राग संगीत अधिक हृदय-ग्राह्य और सुन्दर प्रतीत होता है। भैरव राग को प्रातःकाल, कल्याण को रात्रि के प्रथम प्रहर, सारंग को दोपहर, मल्हार को वर्षा ऋतु आदि निर्धारित समय के अनुसार प्रयोग में लाने से रागों का प्रभाव दुगुना हो जाता है। रागों के समय निर्धारण पर आधारित यह सिद्धान्त न केवल वैज्ञानिक है बल्कि मनोवैज्ञानिक भी है। कोमल तीव्र स्वरों के प्रयोग का अभिप्राय जहाँ वैज्ञानिक आधार से है वहीं निर्धारित समय पर राग के प्रयोग करने पर राग का रंजक लगना, जैसे प्रातः काल ईश स्तुति करने पर कोमल स्वरों के राग मनोवैज्ञानिक रूप से मानव को सुख प्रदान करते हैं, जैसे भैरव, भैरवी, तोड़ी आदि।

संदर्भ ग्रंथ-

- टैगोर रविन्द्रनाथ, रविन्द्रनाथ टैगोर ऑन आर्ट एण्ड ऐस्थेटिक्स; ए सेलेक्शन ऑफ लेक्चरर्स, एसे एण्ड लेटर्स, इण्टरनेशनल कल्चर सेन्टर, 1961
- वेलंकर, डी. के., जगदेवमल्ल कृत संगीत चूड़ामणि, ओरिएण्टल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा, 1958
- शर्मा प्रेमलता एवं ब्यौहार अनिल, मुनि मतंग कृत वृहद्देशी, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली, 2006
- कालरा श्रुति, सौन्दर्यशास्त्र के मूलाधार, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2011
- मिश्रा नीता, संगीत नाद रूप और ध्वनि पक्ष के विविध आयाम, निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1996
- शर्मा प्रेमलता एवं ब्यौहार अनिल एवं चेतना, डाह्यालाल शिवराम कृत संगीत कलाधर, संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली, 2006
- शर्मा प्रेमलता, कुंभा कृत संगीतराज, पाठ्यरत्नकोश, बी. एच. यू. प्रेस, 1963

आकाशवाणी के द्वारा शास्त्रीय संगीत के प्रचार व प्रसार के साधानों का योगदान

डॉ. श्रुति होड़ा

किसी भी कला को पूर्ण रूप से विकसित होने के कारण किसी न किसी माध्यम की आवश्यकता होती है। उनमें से एक माध्यम हैं ''आकाशवाणी'' सभी कलाओं पर आकाशवाणी का कुछ न कुछ प्रभाव आवश्यक पड़ा लेकिन श्रवण कला के नाते संगीत से इसका सम्बन्ध बहुत निकट का हो जाता हैं। विशेषकर शास्त्रीय संगीत संभी के लिए वरदान सिद्ध हुआ हैं।

''लोक संचार साधन'' का अभिप्रायः

लोक संचार साधन मुद्रित एंवम लिखित शब्द के अतिरिक्त वे साधन है जो वस्तु-विशेष की स्पष्ट धारणा बनाने मे सहायक होते है। वास्तव में किसी वस्तु की स्पष्ट धारणा बनाने का सबसे अच्छा ढंग है उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति परन्तु इस विशाल और जटिल विश्व कि प्रत्येक वस्तु का ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा नहीं प्राप्त हो सकता। हमें प्रतिरूपों की सहायता लेनी ही पड़ती है। लोक संचार साधन प्रतिरूप प्रदान करते हैं। इन्हें द्रव्य और श्रव्य व दर्शन की दो इन्द्रियों द्वारा ही अनुभव होते है।

लोक संचार का महत्व

किसी भी भाषा एंव कला की प्रचार के लिए लौक संचार साधनों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है संगीत के प्रसार में भी ये साधन बहुत लाभप्रय सिद्ध हुए है। ये साधन हमारी ज्ञानेन्द्रियों को आकर्षित करती है। ध्यान को खीचते है संगीत प्रसार मे जहां पर पाठय पुस्तकें, पुस्तकालय संगीत सभाओं का शैक्षिक आवल्बन करना आवश्यक है।

वहां वैज्ञानिक साधनों का भी प्रयोग उपयोगी है वर्तमान काल में संगीत प्रचार मै द्रव्य-श्रव्य साधनों की महत्ता सर्वमान्य है सुक्ष्म विचारों को समझने के लिए नेत्रन्द्रियों एवं श्रव्येन्द्रियों का प्रयोग सफलता का सूचक है।

संगीत के शास्त्र पक्ष के प्रचार में प्रारूप -पुस्तकें एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है संगीत एवं विद्धान ऐसा महसूस करते है। कि पाठय-पुस्तकों द्वारा केवल संगीत शास्त्र पक्ष का ही प्रचार किया जा सकता है लेकिन संगीत का क्रियात्मक पक्ष के लिए कुछ ऐसे साधनों की आवश्यकता महसूस हुई जिसकी साहयता से जन साधारण में शास्त्रीय संगीत के प्रति रूचि उत्पन्न की जा सके लोक संचार साधन उनकी इन आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयास कर रहे है।

शास्त्रीय संगीत में लोक संचार साधनों के महत्व की निम्नलिखित रूप में प्रयोग किया गया है।

(1) संगीत को रोचक बनाने में साहायक।
(2) मिश्रण में विविधता लाने मे साहयक।
(3) जनता एंव विद्यार्थियों को सक्रिय बनाने मे साहयक।
(4) ज्ञान को सुबोध बनाने मे साहयक।
(5) संगीत ज्ञान को स्थाई बनाने मे साहयक।
(6) पिछड़े लोगों के लिए साहयक।

अतः शास्त्रीय संगीत को प्रभावित एंव उन्नत बनाने हेतू आज वैज्ञानिक उपकरणों का अधिक उपयोग किया जा रहा है प्रायोगिक संगीत सामग्री को सीखने की सुविधा गायक वादक की शैलियों रिकार्ड को सुनकर समझने की सुविधाओं का प्रचलन

एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत (इन्सट्रूमेन्टल), पीजीजीसीजी, सेक्टर-11, चण्डीगढ़

बहुत बढ़ गया है इस प्रकार इन वैज्ञानिक संचार के साधनों के महत्वपूर्ण योगदान से शास्त्रीय संगीत के अध्ययन अभ्यास एंव प्रचार से निश्चित ही एक क्रान्ति हुई है।

लोक संचार साधनों का विभाजन

लोक संचार साधनों को तीन भागों में विभाजित किया गया है दृश्य, श्रव्य, दृश्य- श्रव्य साधना ।

(1) दृश्य साधन

उन साधनों को दृश्य -साधन कहा जाता है। जिन्हें केवल देखा जा सकता है। उदहारण के तौर पर "चित्र" एक दृश्य साधन है। क्योकि इसे केवल देखा जा सकता है "चित्र" के अतिरिक्त अन्य दृश्य साधन इस प्रकार हैं-

(1) विज्ञप्ति पट्ट
(2) चित्र और फोटो चित्र
(3) समाचार -पत्र
(4) पुस्तके एंव पत्र पत्रिकाएं

(2) श्रव्य- साधन

ये वो साधन होते है जिन्हें केवल सुना जा सकता है जैसे 'टेप-रिकार्ड' एक श्रव्य साधन है क्योंकि इस की आवाज को सुना जा सकता कुछ अन्य साधन निम्नलिखित हैं-

(1) ग्रामों फोन-रिकार्ड
(2) टेप रिकार्ड
(3) आकाशवाणी

3 दृश्यश्रव्य -साधन

उन साधनों को दृश्य श्रव्य कहा जाता है। जिन्हें सुना भी जा सकता है और देखा भी जा सकता है। उदाहरण के लिए "दूरदर्शन" इससे आवाज भी सुनी जा सकती है। और वावता को देखा भी जा सकता है। कुछ दृश्य-श्रव्य साधनों के नाम अभिलिखित है।

(1) सम्मेलन और गोष्ठियां
(2) दूरर्दशन
(3) संस्थाएं
(4) फिल्में

अतः लोक संचार साधन ऐसे साधन है। जो व्यक्ति की आँखों एवं कानों को अधिक सक्रिय बना कर विषय की अधिक सुबोध तथा सुग्राध्य बनाते है। इन्हें सहायक साधन भी कहा जाता है। क्योंकि ये शास्त्रीय संगीत तथा अन्य सभी विषयों के प्रचार एंव प्रसार में सहायता करते हैं इन साधनों का मुख्य प्रयोजन शास्त्रीय संगीत के प्रचार में रूचि तथा जिज्ञासा विकसित करना होता है। इन साधनों द्वारा संगीत के प्रचार के साथ-साथ विषय की पूर्ण जानकारी भी दी जा सकती है। किसी प्रान्त के संगीत को दूसरों तक पहुँचाने में ये साधन अपनी प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

2 विभिन्न कालों में संगीत प्रचार के साधन

प्राचीन काल में संगीत के प्रचार के साधन

यद्यपि आधुनिक अर्थो में लोक संचार साधनों का प्रचार हाल ही में शुरू हुआ अर्थात प्रचीन काल में संगीत के प्रचार के लिए आकाशवाणी दूरदर्शन जैसे वैज्ञानिक उपकरणों का अभाव था परन्तु उस समय भी संगीत कला का प्रचार होता था। सब यज्ञ-धाम जैसे धार्मिक समारोहों में मन्त्रोंच्चारण संगीत युक्त होता था वैदिक काल में यज्ञों में साम-गान का अनिवार्य स्थान रहा है यहां तक की बिना साम गान के यज्ञों की कल्पना तक भी नहीं की जा सकती थी "साम" जैसे वैदिक संगीत के अतिरिक्त "लैकिक-संगीत" का प्रचार तत्कालीन जनता मे था व्यवसायी गायकों द्वारा यज्ञगान तथा लौकिक समारोहों हो पर गीत वादय तथा नृत्य का आयोजन किया जाता था विभिन्न उत्सवों त्योहारों पर 'समन' नाम का मेला लगता था समन में गायन वादन और नृत्य तीनों का समावेक्ष होता था इस संगीत समारोह में सभी वर्ग के पुरुष-नारियां सम्मिलित होते थे नारियां नृत्य का तथा पुरुष कंठ संगीत का सुन्दर ढंग से प्रदर्शन करते थे। प्राचीन समय मे शास्त्रीय संगीत की क्रियात्मक पक्ष की जानकारी गुरू अपने अपने शिष्यों व पुत्रों को ही देता था जिससे संगीत का काफी हद तक प्रचार हो जाए या इसके अतिरिक्त विभिन्न कलाकार मूर्तियां तथा भित्ति चित्र बना कर भी संगीत का प्रचार करते थे

1 गुरू मुख विद्या
2 मूर्तिकला
3 भित्ति चित्र

4 हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ एंव ग्रन्थ

इस प्रकार प्राचीन काल में वैज्ञानिक उपकरणों के प्रचार में न होने पर भी शास्त्रीय संगीत का प्रचार एव प्रसार गुरू-शिष्य परम्परा मूर्तियों भित्ति चित्र तथा हस्तलिखित ग्रन्थों के रूप में होता था और साधारण जनता शास्त्रीय संगीत में रूचि ले पाते थे।

मध्य -युग में संगीत-प्रचार के साधन

प्राचीन युग की संगीत कला का मध्य युग की संगीत कला के साथ सम्पर्क सूत्र होने पर बड़ी मांग में उसके रूप में परिवर्तन हो गया था। प्राचीन काल में संगीत मन्दिरों तथा ईश्वर आराधना तक ही सीमित रहा जबकि मध्य काल में ये राज दरबारों तथा नाटको के माध्यम से जन साधारण तक पहुंच गया।

(1) राज दरबारों
(2) नाटकों द्वारा संगीत का प्रचार
(3) धारणों द्वारा संगीत का प्रचार।

अतः मध्यकाल में संगीत का प्रचार करने के लिए नाटकों का सहारा लिया गया ताकि लोग संगीत की यथार्थता और उसकी व्यापकता समझ सकें। संस्कृत नाटक अथवा काव्य जो भी उस समय रचे गये उन सब में शास्त्रीय संगीत प्रधान रहता था सभी वर्ग के पुरुष और स्त्रियां इनमें भाग लेती थी। नाटक द्वारा संगीत का प्रचार एंव प्रसार जितना मध्य काल में हुआ उतना किसी भी अन्य युग में नहीं हुआ। अतः यह युग मुख्यताएः नाटक प्रधान युग रहा इन्हीं द्वारा मध्यकाल की जन साधारण शास्त्रीय संगीत के विकास में इन संसाधनों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

अर्वाचीन काल में संगीत प्रचार के विभिन्न साधन।

वर्तमान काल में संगीत प्रचार के निम्नलिखित साधन अत्यधिक प्रचलित व संगीत प्रचार के साधन में ये साहयता करते है।

1 द्रव्य- साधन (i) विजोपत-पटट (ii) चित्र या फोटो चित्र (iii) पुस्तकें (iv) समाचार
2 श्रव्य-साधन (i) ग्रामोफोन (ii) टेप-रिकार्ड (iii) आकाशवाणी
3 दृश्य-श्रव्य साधन (i) संगीत सम्मेलन गौष्ठियाँ (ii) दूरदर्शन (iii) सांस्कृतिक सस्थाएं

श्रव्य साधन

(क) ग्रामोफोन-रिकार्ड

ग्रमोफोन के माध्यम से शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त होने वाले रागों की बन्दिशें शैली, वाद्य आदि के प्रचार में बहुत सहायता मिलती है। एक ही रिकार्ड को बार- बार सुनकर उस गायन या वादन के वास्तविक रूप को समझ कर लिखा जा सकता है। इनके द्वारा हम उन सब कलाकारों की जिन तक साधना जनता के लिए पहुँच पाना कठिन है उनका रिकार्ड सुन सकते है। शास्त्रीय संगीत के प्रचार में ग्रामोफोन रिकार्ड का जितना लाभ उठाया जा सकता है। उतना अन्य किसी विषय में नहीं।

ग्रामोफोन रिकार्ड के माध्यम से भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी शास्त्रीय गायन वादन का प्रचार बढ़ा है। अतः ग्रामोफोन रिकार्ड संगीत के क्रियात्मक क्षेत्र को काफी हद तक सुरक्षित बना दिया है। ये रिकार्ड कलाकारों की गायन वादन शैली को जनता तक पहुचाने का सुलभ साधन है।

(ख) टेप रिकार्ड

टेप रिकार्ड की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपयोगिता यह है कि इसमें कुछ अंश तक सर्वशिक्षा ली जा सकती है आज शास्त्रीय संगीत से सम्बधित बहुत से कैसेट प्रचार में है शास्त्रीय संगीत के घरानेदार गायकों व वादको की कैसेट से शिक्षार्थी व उनके घरानों के संगीत सुनकर उसका विश्लेषण कार्य कर सकते है आज केसेट के माध्यम से संगीत का ज्ञान से संगीत का अभ्यास उचित ढंग से हो जाता है। जिन विद्यार्थियों को घर में संगत के लिए अच्छा शिक्षक या वाद्य वादक नहीं मिलता यह कैसेट के प्रयोग से सम्मलित हो सकता है।

नेत्रहीन विद्यार्थियों के लिए टेप रिकार्ड बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। ताकि वे संगीत के क्रियात्मक पक्ष और शास्त्र पक्ष दोनों का ध्वनि

मुद्रण रिकार्ड कर शास्त्रीय संगीत का ज्ञान प्राप्त करते है।

अतः टेप रिकार्ड सभी दृष्टि से महत्वपूर्ण है इसके द्वारा आज शास्त्रीय संगीत का प्रचार एंव प्रसार केवल भारत में ही नहीं बल्कि देशों विदेशों में भी खूब जोर-शोर से ही हो रहा है।

(ग) आकाशवाणी

शास्त्रीय संगीत के प्रचारों में महत्वपूर्ण भूमिका आकाशवाणी ने निभाई है। वह सहरानीय है इसके प्रसारण से जहाँ सभी प्रकार को संगीत सर्व-साधारण के लिए सुलभ हो गया है। वहीं संगीत साधनों के लिए भी यह काम महत्वपूर्ण सिद्ध नहीं हुआ

रेडियों का आगमन भारतीय संगीत के इतिहास की एक क्रान्तिकारी घटना थी किसी भी लोक तान्त्रिक व्यवस्था में ये तांत्रिक साधनों विशेषत रेडियों की सामाजिक भूमिका सर्व विदित है। संसार की ताजा गति विधियों से जनता का तत्काल परिचय रेडियों के कारण ही सम्भव हुआ है। रेडियों में महत्वपूर्ण मानव जीव की प्रगति के पथ पर अग्रसर होने में महत्वपूर्ण अवसर दिए है।

आकाशवाणी पर प्रसारण से पूर्व संगीत का एक विस्तृत दायरा नहीं था या तो रियासतों में वन्द था या लोक कला के रूप में पनप रहा था दोनों ही स्थितियों में इसका दायरा संकुचित दायरा था। आकाशवाणी पर प्रसारण से जहाँ सभी प्रकार का संगीत सर्वसाधारण के लिए सुलभ हो गया वहाँ संगीत-साधनों के लिए भी यह काम महत्वपूर्ण सिद्ध नहीं हुआ इसके माध्यम से साधनों को सदैव ही जो अन्त प्रेरणा मिलती रही इस तरह भारतीय आकाशवाणी पर संगीत प्रसारण की संगीत के प्रचार व प्रसार में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका रही हैं। दुनिया के प्रमुख देशों में यद्यपि प्रसारण का एक लम्बा तथा स्वतन्त्र इतिहास है। परन्तु स्वतन्त्र भारत के इस अल्पकाल में भी प्रसारण ने जो प्रगति की है। वह भी काम कोई कम उल्लेखनीय नहीं है। संगीत का प्रसारण से पूर्व तक दृष्टि प्रसारण ने जो प्रगति की है वह भी कोई कम उल्लेखनीय नही है सांगीतिक प्रसारण से पूर्व एक प्रादेशिक प्रसारण को इतिहास पर डाल लेना भी आवश्यक होगा।

आकाशवाणी के प्रसारण

आकाशवाणी पर प्रसारण से पूर्व शास्त्रीय संगीत को क्षेत्र विस्तृत नहीं था या तो रियासतों तक सीमित था या लोक कला के रूप में पनप रहा था दोनों ही स्थितियों में इसका दायरा बहुत संकुचित था अलग-अलग घरानों मे संगीतज्ञों का पोषण होता था आकाशवाणी से जहाँ सभी प्रकार का संगीत एवं जन साधरण के लिए सुगम हो गया वहाँ शास्त्रीय संगीत के साधको को भी इनसे अन्तः प्रेरणा मिलती है रेडियों का आगमन भारतीय संगीत प्रचार के इतिहास की एक क्रान्तिकारी धारणा है। रेडियों संचार के अविष्कार का श्रेय अनेक मेधावी व्यक्तियों की है यद्यपि प्रमाणिक रूप से अविष्करण माना जाता है मार्कोनी ने पहले सन 1895 में थोडी दुरतव्य रेडियों सकेत प्रसारित किए थे। बाद में अन्त कालक के पार संकेत प्रसारित करने मे उसे सफलता मिली।

प्रसारण का इतिहास

दुनिया में प्रसारण का इतिहास बहुत प्राचीन नहीं बल्कि 20वीं शताब्दी की ही दन है विज्ञान ने अन्य किसी क्षेत्र में शायद इतने कम समय में इतनी प्रगति की होगी 1896 में मार्कोनी ने वेतार के तार (वायरलैस) का पता लगया। सन् 1904 में हीन फोरस्ट ने रेडियों टयूब का ज्ञान कराया जिसके आधार पर रेडियों अथवा आकाशवाणी का अविष्कार हुआ। आकाशवाणी शब्द आल इण्डिया रेडियों का पर्यायवाची है। अतः प्रसारण वार्डकास्टिंग शब्द बीसवी शताब्दी में प्रयोग किया जाने लगा। भारत में प्रसारण का प्रारम्भ सर्व प्रथम मद्रास प्रेसीडेंसी क्लब'' 16 मई 1924 ई. में आरम्भ हुआ किन्तु अर्थोभाव के कारण कुछ ही समय में वन्द हो गया उसके बाद 1 अप्रैल 1930 को पुनः नियमित रूप से प्रसारण सेवा शुरू की गई जिसकी रूप रेखा इस प्रकार थी।

(1) संगीत (दो घण्टे प्रतिदिन) 5.30 -7.30
(2) स्कूली शिक्षा (संगीत के माध्यम से) 4-00 4-30
(3) रविवारीय ग्रामोफोन रिकार्डस सुबह 10-00-11-00
(4) सोमवार (पाश्चात्य संगीत)

यह प्रसारण सन 1938 तक चलता रहा मद्रास की भाँति ही लाहौर, इलाहाबाद, पेशावर व देहरा आदि स्थानों में भी प्रसारण आरम्भ हुए जो तब तक चलते रहे जब तक वहाँ "आल इण्डिया रेडियों" केन्द्र स्थापित नहीं हो गया।

इन छिट पुट प्रयासों के साथ सरकारी स्तर पर भी प्रसारण का कार्य 23 जुलाई 1927 ई. में प्रारम्भ हो गया था "इण्डिया ब्राडकास्टिग कम्पनी ने भी बम्बई में प्रसारण केन्द्र शुरू किया। 26 अगस्त 1927 को कलकत्ता केन्द्र का भी श्री गणेश हुआ परन्तु अर्थाभाव के कारण कम्पनी मार्च 1930 में समाप्त हो गई।

1 अप्रैल 1930 में सरकार के उद्योग एंव श्रम विभाग द्वारा प्रसारण का कार्य प्रारम्भ किया गया किन्तु परिस्थितियां अनुकूल न होने के कारण 9 अक्टूबर 1931 को प्रसारण बन्द करने के उपरान्त 1 अप्रैल 1932 को इसे पुनः कार्यान्वित करने की घोषणा के साथ ही प्रसारण स्थायित्व तथा इसके विस्तार और विकास की योंजनाए तैयार करने हेतु सरकारी स्तर पर बी- बी -सी के अनुभवी कम्पनियों को बुलाया गया इस तरह भारत में व्यस्थित ढंग से प्रसारण का विस्तार 1936 में बी.बी.सी. से आए "गेयडर" नामक इंजीनियर की योजनानुसार शुरू हुआ। उसी वर्ष उसका नवीन नामकरण" आल इण्डिया रेडियों" किया गया। तीन वर्ष के भीतर ही सन 1939 के लगभग दिल्ली बम्बई कलकता मद्रास पेशावर, लाहौर, लखनऊ, ढाका और त्रिचनापल्ली मे भी नौ केन्द्र स्थापित हो चुके थे।

3 दृश्य श्रव्य साधन

(क) संगीत सम्मेलन एंव गोष्ठियाँ

(1) हरिवल्लभ- संगीत सम्मेलन पंजाब के जालन्धर मे 8 वर्ष पुराना सम्मेलन हुआ।

(2) स्वामी हरिदास- बम्बई में सुर सिंगार सक्षम की और तीस वर्षो से बडी धूमधाम से मनाते है। सन 1954 में आरम्भ किया।

(3) तानसेन सम्मेलन - कलकता में 1948 में संगीत गोष्ठियां -स्वर्गीय पण्डित भातखण्डे द्वारा सन 1925 में आरम्भ किया।

(ख) दूरदर्शन

दूरदर्शन एक वैज्ञानिक साधन "दूरदर्शन" बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। निश्चय ही आज के युग में दुर्दशन एक बहुत ही महत्वपूर्ण मनोरंजन एवं संगीत प्रचार का साधन सिद्ध हुआ है। रेडियों और दूरदर्शन मे अन्तर इतना है कि रेडियों में तो हम केवल आवाज की ही दूरस्थ स्थान पर आवाज के साथ उस व्यक्ति का चित्र भी दिखाई देता है। चित्र मात्र चित्र के रूप में दृष्टि गोचर नहीं होता अपितु ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह व्यक्ति सामने बैठकर बात कर रहा है। ध्वनि सुनने का जो प्रभाव होता है चित्र सहित ध्वनि सुनने का प्रभाव उसके कही अधिक होता है।

(ग) संगीत संस्थाएँ

संगीत प्रचार साधनों के अतिरिक्त एक अत्यधिक महत्वपूर्ण साधन और भी जिसके द्वारा वर्तमान काल में संगीत का खूब प्रचार एंव प्रसार हो रहा है वह है सांगीतिक संस्थाएँ। इससे अनेक विद्यार्थियों को संगीत शिक्षा देकर संगीत का प्रसार किया जाता है। संस्थाओं में बहुत विद्वानों, घरानेदार गायक व वादक संगीत के प्रसार के लिए शिक्षा देने का कार्य कर रहे है। अनेक विद्यालय, महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय में संगीत या तो पाठय कम का एक विषय है या इसकी अलग से शिक्षा दी जा सकती है अतः संगीत के प्रचार एंव प्रसार मे संस्थाऐ भी अपनी अलग से भूमिका निभा रहीं है। **स्वतन्त्रता के पश्चात संगीत प्रचार एंव प्रसार के साधन।**

संगीत नाटक अकादमी संगीत प्रचार का मुख्य साधन

स्वतन्त्रता के पश्चात देश के सांस्कृतिक क्षेत्र में कला के संरक्षण का प्रश्न सबसे महत्वपूर्ण हो उठा था। राष्ट्र की सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखने के उदेश्य से भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के प्रस्ताव के अनुसार 1953 में साहित्य और ललित कला अकादमियों के साथ संगीत नाटक तथा अन्य अभीनीत कलाओं सरक्षण और संवर्धन हेतु "संगीत नाटक अकादमी" की स्थापना नई दिल्ली में भी

स्वतन्त्रता के पश्चात कलाओं का उतरदायित्व राजा महा राजाओं के हाथों से निकल कर जनता के हाथों में आ जाना स्वभाविक था।

संगीत नाटक अकादमी ने भारतीय शास्त्रीय संगीत परम्परागत रंग मंच लोक नृत्य आदि अभीनित कलाओं को पुरातत्व सामग्री संकलन करके मूल्यवान संग्रहालय की स्थापना की यह सामग्री टेप, छाया चित्र सलाईड फिल्म तथा गंधार्द के रूप में उपलब्ध है। नई दिल्ली में अकादमी ने एक प्रयत्न किया गया था। भारतीय कलात्मक परम्परा के समृद्धि व आदि परम्पराओं की सामान्य जनता तक पहुचने का तथा उसे जीवित रखने के कार्य में अब तक अकादमी की उपलब्धियाँ है।

स्वतन्त्रता पश्चात प्रसारण

सन 1947 में स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त संगठित शासन मिलने पर सुनिश्चित योजनाए तैयार होने लगी तथा रेडियों का विधिवत विस्तार प्रथम पंचवर्षीय योजना से प्रारम्भ हुआ सन 1950 तक 21 केन्द्र स्थापित हो गए इसी योजना के अन्तर्गत पूना, श्रीनगर, जम्मू राजकोट जयपुर इन्दौर, शिमला, केन्द्र भी खोले गए द्वितीय योजना में भोपाल, गुवाहटी, राँची; तृतीय योजना के अन्तर्गत पोर्ट ब्लेयर इम्फाल केदिया इत्यादि नए प्रसारण केन्द्र प्रारम्भ होते गए वे पुराने केन्द्रों को अधिक शक्तिशाली बनाया जाता रहा। केन्द्र विभिन्न प्रकार के संगीतिक कार्य प्रारम्भ किए गए जिनमें दिल्ली इलहाबाद, लखनऊ, पटना, कलकता, बम्बई, वडौदा और जालन्धर का संगीत की दृष्टि से विशेष स्थान है।

स्वतन्त्रता पश्चात संगीत का प्रसार

संगीत प्रसारण आज आकाशवाणी का मुख्यः आकर्षण है तथापि रेडियों के प्राम्भिक दिनो में स्थिति ऐसी नहीं थी।

अखिल भारतीय आकाशवाणी के भूतपूर्व प्रबन्धकाल के. एस. मलिक की उन कठिनाइयों का वर्णन हमें रिर्पोटस, में मिलता है जो उन्हे प्रारम्भिक दिनों मे सांगीतिक कार्यक्रम के प्रसारित मे पेश आई। उस्ताद लोग अपनी अपेक्षा मंच प्रर्दशन द्वारा अपनी प्रतिभा को प्रदर्शित करना चाहते थे।

आरम्भ में संगीत प्रसारण के लिए कोई निर्धारित नियम नहीं थे स्वतंत्रता के पश्चात् निर्धारित रूपरेखा बनाने की आवश्यकता अनुभव हुई। सर्वप्रथम सरदार पटेल प्रथम सुचना व प्रसारण मन्त्री ने आकाशवाणी पर किसी निश्चित योजना के अन्तर्गत परिवर्तन किए। सरदार पटेल ने आल इण्डिया रेडियो पर उन कलाकारों को कोई स्थान नहीं दिया जिनका जितना निजी जीवन किसी तरह भी चर्चा का विषय था तत्पश्चात ख्याति प्राप्त कलाकारों व सम्मानित परिवार के पुरुष स्त्रियों ने रेडियों पर वेतन प्राप्त करके संगीत प्रसारित करने के व्यवसाय को आदर की दृष्टि से प्रसारित करने के व्यवसाय को आदर की दृष्टि से देखा।

आकाशवाणी के माध्यम से शास्त्रीय संगीत को प्रचार तथा उसके द्वारा अधिकाधिक कार्यक्रम प्रस्तुत करने के लिए समय-समय पर गंभीरतापूर्ण विचार विमर्श होते रहते थे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए सन 1950-51 में तत्कालीन सूचना व प्रसारण मन्त्री श्री. आर.आर. दिवाकर वे आकाशवाणी के दिल्ली बम्बई मद्रास कलकत्ता व नागपुर केन्द्र के सदस्यों को उत्कृष्ट प्रस्तुतिकरण के लिए ठोस निर्णय लिए गए।

आकाशवाणी के संगीत विभागों में सुधार लाने के अतिरिक्त प्रोडक्शन-स्टाफ के नाम से एक नया कैडर प्रारम्भ किया जिसमें कुछ मंचीय कलाकारों को आकाशवाणी केन्द्र पर नियुक्ति की तथा कुछ कलाकारों को नियम समय के लिए ही नियुक्त किया गया। फलस्वरूप आज अनेक सांगीतिक कार्यक्रम आकाशवाणी द्वारा प्रसारित किए जा रहे हैं उदाहरणार्थ दैविक साप्ताहिक मासिक और वार्षिक जिनके द्वारा कलाकारों कि कला आज जनसाधारण तक सहज ही पहुँच रही हैं।

सांगीतिक प्रसारण के क्षेत्र में ऑल इण्डिया रेडियो की गतिविधियों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है

(1) भारतीय शास्त्रीय संगीत का प्रचार व प्रसार
(2) नया ऑडीशन सिस्टम
(3) रेडियो संगीत सम्मेलन
(4) भारतीय संगीत सम्मेलन

(5) आल इण्डिया रेडियो की सांगीतिक प्रतियोगताएं
(6) शब्द संगीत
(7) संगीत कक्षाएं
(8) रविवारीय संगीत सभा
(9) अखिल भारतीय संगीत कार्यक्रम
(10) संगीत सभाओं व सम्मेलनों का प्रसारण
(11) शास्त्रीय संगीत का दैनिक प्रसारण

दिल्ली रेडियो के चार चैनल (इप्लांट) है जिनमें दिल्ली (ए) शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम प्रसारित करता रहता है। प्रतिदिन कई घण्टे शास्त्रीय संगीत के प्रसारण दिए जाते हैं। सन् 1952 से लेकर दशक प्रसारण हुआ जब आर. आर. दिवाकर के पश्चात डा. बी. बी. सी. केसकर का आगमन दस वर्ष की अवधि के लिए सूचना एवं प्रसारण मन्त्री के रूप में हुआ उन्होंने सबसे पहला कार्य संगीत विभाग को सुधारने व संगीत के कार्यक्रम को सुव्यस्थित करने का किया। अपने उत्पादन कर्मचारी छन्दा नामक एक इकाई बना दी जिसे प्रोडक्शन स्टाफ के नाम से भी जाना जाता है आकाशवाणी के दिल्ली व मद्रास केन्द्रों पर उत्तरी व कर्नाटकी संगीत संबंधी कार्यक्रमों के लिए एक योग्य मुख्य कार्यक्रम उत्पादन चीफ प्रोड्यूसर की नियुक्ति की गई। इस प्रकार सन 1949-50 में दिल्ली और बम्बई केन्द्रों पर सुझाव समितियों का सर्वप्रथम गठन हुआ।

ऑडीशन सिस्टम- सभी आकाशवाणी केन्द्रों में 'ऑडीशन' बोर्ड, की स्थापना 1952 जुलाई में शास्त्रीय संगीत कलाकारों के चयन के लिए सर्वप्रथम हुई जिसमें दो या तीन विशेषज्ञ मिलकर शास्त्रीय संगीत के प्रसारण के लिए कलाकारों का चयन करते हैं। इसके अलावा कार्यक्रम के निर्देशकों, उत्पादकों सहायकों संगीत सलाहकारों की नियुक्तियां की गई। इस प्रकार कलाकारों को भिन्न-भिन्न श्रेणियों में विभाजित किया जाता। इसी के आधार पर उनके वेतन दिया जाता है और उन्हें ए. ग्रेड बी. ग्रेड दिए गए। इस प्रकार संगीत के कलाकार शनैः-शनै विभिन्न रूपों में आकाशवाणी से जुड़ने लगे। यह लगाव इतना तीव्र हुआ कि सन् 1961 तक ही दोनों श्रेणियों के लगभग दस हजार संगीत कलाकार आकाशवाणी से जुड़ गए डा. केसकर द्वारा शास्त्रीय संगीत प्रसारण के सम्बन्ध में भिन्न प्रयास उल्लेखनीय हैं।

(1) दैनिक शास्त्रीय संगीत प्रसारण
(2) संगीत की राष्ट्रीय कार्यक्रम
(4) रेडियो संगीत सम्मेलन
(5) शास्त्रीय संगीत पर आकाशवाणी परिसंवाद
(6) सुबोध संगीत
(7) संगीत पाठ
(8) रविवारीय प्रातकालीन सभा
(9) शुक्रवारीय मंगलवारीय शनिवारीय संगीत के प्रसारण
(10) संगीत गुण-ग्राहिता के कार्यक्रम

आज के संगीत सम्बन्धी इस नीती को ही आधार मानकर थोड़े बहुत प्रसारण कर रहा है। शास्त्रीय संगीत को लोकप्रिय बनाने की दृष्टि से अन्य प्रयास भी किए जाते रहे हैं। जिनके अन्तर्गत या तो शास्त्रीय संगीत पर आधारित कार्यक्रम या शास्त्रीय संगीत की ही प्रारूप-प्रसारित होते है। इन कार्यक्रमों के माध्यम से आज जनता में शास्त्रीय संगीत के प्रति रूचि पैदा करने में सहायता मिली है कुल मिलाकर ग्रह प्रसारण सेवा द्वारा प्रसारित कार्यक्रमों में संगीत को 38.55 प्रतिशत स्थान उपलब्ध है विदेश प्रसारण सेवा द्वारा दस विदेशी भाषाओं में India calling नामक पत्रिका विदेशी श्रोताओं को मुफ्त भेजी जाती है। आकाशवाणी द्वारा एक सौ पचास देशों के प्रसारण सेवाओं को फ्सैन्ट्रल एक्सचैंज के अन्तर्गत रिकार्डिंग भेजी जाती है।

शास्त्रीय संगीत का दैनिक प्रसारण संगीत के कार्यक्रमों में विधा विभाजन इस प्रकार किया गया।

1. शास्त्रीय संगीत = 32. 11 प्रतिशत
2. लोक संगीत = 10.71 प्रतिशत
3. सुगम संगीत = 33.04 प्रतिशत
4. भक्ति संगीत = 12 94 प्रतिशत
5. चित्रपट संगीत = 17. 99 प्रतिशत
6. पाश्चात्य संगीत = 4.2 प्रतिशत

इस प्रकार दैनिक संगीत प्रसारण में अधिकतम समय शास्त्रीय संगीत के लिए सुरक्षित है।

एकल वादक की परम्परा को आकाशवाणी ने प्रोत्साहन दिया ही है साथ ही लुप्त प्राय वाद्यों सारंगी, पखावज आदि को भी आश्रय दिया। इसके अतिरिक्त हमारी दुर्लभ सांगीतिक विधाओं ध्रुवपद,

धमार आदि का पुनरूत्थान भी किया है और आज हम कम से कम इसके नाम व स्वरूप से तो परिचित है।

शास्त्रीय संगीत का लिपिबद्ध संगीत भी लोकप्रिय नहीं बन पाया था क्योंकि संगीत तो एक श्रव्य कला है। ध्वनि में निहित है इसलिए संगीत और संगीतज्ञों का देश के कोने कोने तक पहुँचाने में आकाशवाणी ने एक सशक्त माध्यम की भूमिका निभाई।

यहाँ आकाशवाणी की ट्रास की प्रसन सौवस प्रोग्राम एंक्सचैन्ज युनिट (Transistition Service Programme Exchange)

संग्रहालय का उल्लेख करना अनुचित न होगा इस एकांश के द्वारा आकाशवाणी के अच्छे रिकार्डों का संग्रह तैयार किया जाता है। इन सेवाओं के द्वारा ओल्ड मास्टर्स शीर्षक (Cold Msaters) के अन्तरगत शास्त्रीय संगीत के आधार स्तम्भों के रिकार्ड करके उनकी गायकी व कला को सुरक्षित रखने का महत्वपूर्ण कार्य हुआ है। विशिष्ट कार्यक्रमों के अन्तर्गत यह रिकार्डिंग समय-समय पर सुनवाई जाती है। उदाहरणार्थ के लिए उस्ताद फैयाज खां की 22 घण्टे की रिकार्डिंग आकाशवाणी के पास सुरक्षित रखा गया है। इसमें से एक चौथाई भी आकाशवाणी के बाहर उपलब्ध नहीं है।

वर्तमानकाल में लोक संचार साधनों की उपयोगिता

वर्तमान काल में लोक संचार साधनों द्वारा भारतीय शास्त्रीय संगीत की लोकप्रियता काफी बढ़ गई है एवं इसके प्रचार एवं प्रसार में दृश्य-श्रव्य साधनों का योगदान सराहनीय रहा। आज शास्त्रीय संगीत को आश्रय एवं संरक्षण मिला है। वह लोक संचार साधनों द्वारा ही संभव हो सका है अतः शास्त्रीय संगीत का प्रचार व प्रसार करने में लोक संचार साधनों की निम्नलिखित वर्गों में उपयोगिताएं इनके महत्व को प्रदर्शित करते हैं।

1 जनता के लिए उपयोगी
2 नेत्रहीन व्यक्तियों के लिए उपयोगी
3 संगीत विद्यार्थियों के लिए उपयोगी
4 शोधकर्ता के लिए उपयोगी
5 विदेशों मे भारतीय संगीत का प्रचार करने में उपयोगी
6 भविष्य मे संगीत को सुरक्षित रखने के लिए उपयोगीं

लोक संचार साधन हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग है। इनसे न केवल हमारा मनोंरजन होता है अपितु जीवन के महत्वपूर्ण कार्यो सम्बन्धी जानकारी भी प्राप्त होती है। आज अन्य विषयों के साथ-साथ शास्त्रीय संगीत में प्रचार एंव प्रसार में भी ये संचार साधन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है।

संक्षेप मे हम कह सकते है कि शास्त्रीय संगीत के विकास में ''लोक संचार साधनों'' ने सशक्त भूमिका निभाई है। साधारण अभिरूचि को धीरे-धीरे नये मोड़ देकर तथा शास्त्रीय संगीत के प्रतिलगाव का काम लोक संचार के विभिन्न साधनों द्वारा सम्भव हो पाया। शास्त्रीय संगीत के प्रचार का श्रेय दृश्य-श्रव्य साधनों सम्बन्धी सहायक वस्तुओं के साथ-साथ उन विद्वानों को भी जाता है, जो अपना जीवन इस कला की सेवा में बिताते हैं। लोक संचार साधनों मे भारतीय शास्त्रीय संगीत को केवल भारत में ही नही अपितु विदेशों में भी लोकप्रिय किया है और करता रहेगा ऐसी सम्भावना की जाती है।

शास्त्रीय संगीत के प्रचार एवं प्रसार में लोक संचार साधनों का योगदान।

पुरुष प्रधान समाज में, संगीत क्षेत्र के विकास में नारी का योगदान

डॉ. मलविन्दर सिंह

भारत एक पुरुष प्रधान समाज रहा है। आज की नारी को यहां वह स्थान नहीं मिला जिसकी वह कल्पना करती रही। सामाजिक बुराईयों ने, हमेशा उसके पैरों को, अपने अंहकार की जंजीरों से बांधे रखा, नारी की सोच व मेहनत को आगे नहीं आने दिया, संगीत के क्षेत्र में भी नारी का पतन हुआ। उसे कभी भी संगीत को सीखने व सीखाने की सम्पूर्ण आज़ादी नहीं मिली। शोध पश्चात कुछ कारणों का पता चला जैसे कि:-

1 जितनी रूचि माता-पिता लड़कों को संगीत का प्रशिक्षण दिलवाने में लेते हैं, उतनी लड़कियों में नहीं लेते।

2 समाज में महिलाओं को संगीत शिक्षा दिलवाना अच्छा नहीं समझा जाता। लोग नाना प्रकार के ताने देते हैं।

3 संगीत सीखने के लिए घर से दूर जाना पड़ता है।

4 यह अस्थिरता भी रही कि यदि शादी ऐसे पुरुष व परिवार के साथ तय हो जाये, यहां संगीत को अच्छा न समझा जाये तो संगीत में की सारी मेहनत बर्बाद हो जाती है।

5 शादी के पश्चात लड़कियां घरेलू कामकाज, बच्चों के लालन पालन में अपना ज्यादा समय व्यतीत करती हैं। इस संघर्ष पूर्ण परिस्थितियों में भी गायन, वादन के स्तर को बनाए रखना कठिन है।

परन्तु हमें गर्व है उन नारियों पर जिन्होंने इन सब समस्याओं का सामना करते हुये संगीत के विकास में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर अध्यापन, पुस्तकें, लेख, पत्रिकायें व मंच प्रदर्शन कार्यों द्वारा अपना भरपूर योगदान दिया।

इतिहास के पन्नों को पढ़ने पर, यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है कि सृष्टि के आगाज़ से ही नारी का संगीत के सम्पूर्ण विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

संगीत वह ललित कला है जो सभी कलाओं में उत्तम कला का स्थान रखती हैं।[1] प्रत्येक प्राणी संगीत से प्रेम करता है, यह एक भावनात्मक कला है[2]। जिसका सम्बन्ध मानव इन्द्रियों से संबधित है। गुणवानों का कथन है कि "भोजन शरीर की खुराक है और संगीत रूह की"[3]। यह सत्य है कि सृष्टि की उत्पति के साथ ही संगीत की उत्पति हुई।

नारी की विशेष भूमिका मां सरस्वती से शुरू होती है जिसे पूरा ब्रह्माण्ड नमन करता है, जो संगीत की देवी है। मां पार्वती को ताल की रचयिता माना जाता है। शिव को तांडव नृत्य व मां पार्वती को लास्य नृत्य के लिए केन्द्रित किया जाता है, इसके आपसी सुमेल से ताल की उत्पति मानी जाती है। नृत्य की शिक्षा के लिए बाणासुर की पत्नी उषा का नाम भी ग्रंथों में लिया जाता है। यदि मां सरस्वती को वीणा धारिणी कहते हैं तो मां लक्ष्मी को गाने के लिए संज्ञा दी गई है। देव लोग में अप्सराओं का गायन, वादन तथा नृत्य हमेशा संगीत को विकसित करता रहा है।

संगीत का एक पक्ष शास्त्रीय संगीत है। जिसमें राग रागिणियों की चर्चा की जाती है। भैरव, मारवा,

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हेड ऑफ म्यूजिक डिपार्टमेन्ट, एस.जी.जी.एस. खालसा कॉलेज, महिलपुर

मल्हार, बंसत, हिंड़ोल नर राग है तो भैरवी, पूर्वी, पहाड़ी, मधुवंती, रागेश्वरी, बागेश्वरी नारी रागिनियां कहलाती हैं।

नारी ही संगीत है, जिसके रूप अनूप, गायक, वादन, नृत्य हैं उसके ही प्रतिरूप। उसके ही प्रतिरूप कंठ में बजती सरगम, बजने लगते वाद्य पांव में पायल छम-छम। उसकी थिरकन देखकर, मन जो जाता मस्त, बच्चे बूढ़े सभी जन, कभी न होते त्रस्त।

यह शाश्वत सत्य है कि संगीत नारी का ही दूसरा रूप है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

नारी की वाणी में गीत, कार्य प्रणाली में वाद्यों की ताल व लय और चाल में, नृत्य की थिरकन छिपी हुई है। अतः नारी का एक समूचा व्यक्तित्व ही संगीतमय है।

आदिम युग से ही स्त्री का सांगीतिक समाज में उच्च स्थान रहा है। वैदिक युग में नारी की सामाजिक और सांस्कृतिक प्रतिष्ठा पूरी तरह बनी हुई थी। प्रत्येक सांगीतिक कार्यक्रमों में हिस्सा लेने का अधिकार था, वह ऐसे पुरुष से ही प्रेम करती थी, जो संगीत कला में निुपुण होता था। अथर्ववेद में अप्सराओं के नृत्य का उल्लेख मिलता है[4]। सूत्र एवं जातक साहित्य में साम-गायको की पत्नियों का संगीत सम्मेलनों में वाद्य और गायन की प्रस्तुति का उल्लेख मिलता है, जो उत्तम रीति से नृत्य एवं गायन प्रस्तुत करती थी।

जातक साहित्य काल में संगीत केवल राजाओं के जीवन का अंग था, अपितु उस समय की साधारण जनता भी गायन वादन एवं नृत्य में रूचि रखती थी। गरीब से गरीब यहां तक कि ईधन एकत्र करने वाली लड़की, दूध निकालने वाली, फूल चुनने वाली भी अपना कार्य गायन से आरम्भ करती थी।

महाभारत काल में नारी संगीत का अभाव नही था। अर्जुन द्वारा उत्तरा को गायन और नृत्य की शिक्षा देना इसका प्रमाण है। लोकपाल की सभा में गन्धर्व अप्सरायें वरूण की स्तुति करने आती थी।

रामायण काल में नारी और संगीत एक दूसरे से सम्बद्ध थे। इसका प्रमाण है मेनका, रम्भ आदि अप्सराओं का नृत्य। बौद्ध साहित्य में भी ऐसा वर्णन मिलता है कि नारियां संगीत में पूर्णतः दक्ष होती थी। संगीत में कुशल 'कान्हा' नाम की नारी को बौद्ध जातक में संगीत प्रवीण दर्शाया गया है। भरत के नाट्यशास्त्र में गायिकाओं की विशेषतायें भी बताई गई हैं[5]। गुप्त काल में भी स्त्रियों को उच्च स्थान मिला था इस युग में स्त्रियों के लिए आवश्यक 64 कलाओं में संगीत कला की गणना होती थी।

भक्ति काल में मीरा का उल्लेख मिलता है जो संगीत में प्रवीण थी, उसका एक ही लक्ष्य था, **अपने सांवरिया को रिझाना।** वह गाती व नृत्य करती भक्ति रस में डूबी रहती थी। मध्यकाल में नारियों का व्यवसाय गाना बजाना था, इन्हें 'नाकनरी' कहा जाता था।

इस तरह हम देखते हैं कि अनादिकाल से नारी का संगीत से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और आज भी नारी संगीत के क्षेत्र में निरन्तर आगे बढ़ रही है।

गायन वादन तथा नृत्य तीनों कलाओं में महिलायें अग्रणी हैं। गायन में माधुर्य की स्थापना से नारी कंठ की विशेष भूमिका रही है। भरत मुनि ने भी 'नाट्यशास्त्र' में कहा है- 'स्त्रीणां स्वभाव मधुरः कंठो[6]

घरानों का संगीत के प्रसार में विशेष योगदान रहा है। उस्तादों ने गायकों को तालीम दी, वहीं गायकाओं ने भी शिक्षा प्राप्त कर संगीत के प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। महिला गायिकाओं में गंगूबाई हंगल का स्थान अग्रणी है। दक्षिण भारत की प्रसिद्ध गायिका एम.एस.सुब्बुलक्ष्मी भारत के कोने-कोने में लोकप्रिय हैं। काशी की गिरिजा देवी ख्याल व ठुमरी में प्रसिद्ध हैं। किशोरी अमोनकर प्रगतिशील गायिका हैं। आसाम के नौगांव की परवीन सुल्ताना ख्याल, तराना, ठुमरी में सिद्धहस्त हैं। किराना घराने की प्रभा अत्रे, बेलगांव की शोभा गुर्टू ठुमरी, दादरा, रामपुर परम्परा की गायिका सुलोचना बृहस्पति, बनारस की निर्मला अरूणा, माणिक वर्मा, डा. सुनंदा पटनायक, बंगाल की गायिका मीरा बैनर्जी, संध्या मुखर्जी इत्यादि ने अपने गायन से सजाया और संवारा है[7]।

कुछ महिला गायिकाओं ने संगीत जगत में ऐसे मानदंड स्थापित किये, जिन्हें तोड़ना असम्भव हैं। लता मंगेशकर, जो जगत का ध्रुव तारा हैं। इस फिल्म जगत को संगीतबद्ध करने वाली अन्य गायिकाओं में मुख्य खुर्शीद, शान्ता आप्टे, ज़ोहराबाई,

नूरजहां, शमशाद बेगम, मुबारक बेगम, बेगम अख़्तर, जगजीत कौर, किशोरी अमोनकर, आशा भौंसले, ऊषा मंगेशकर, गीता दत्त, शारदा, ऊषा खन्ना, हेमलता, नूतन, सलमा आगा, चीनाज़ मसानी, चित्र सिंह इत्यादि गायकों पार्श्वगायक, शास्त्रीय और उपशास्त्रीय गायन या फिर ग़ज़ल गायन द्वारा संगीत जगत् की सेवा की है।

जहां गायन में महिलाओं का योगदान रहा, वहीं वाद्य वादन में भी महिला कलाकारों का महत्वपूर्ण स्थान रहा।

पं. रविशंकर जी की पूर्व पत्नी अन्नपूर्णा देवी एक कुशल सितार वादिका रही। डा. श्रीमती एन. राजम् ने वायलिन को उच्च शिखर तक पहुंचाया। शरन रानी एक विख्यात सरोद वादिका रही। बम्बई की जरीन दारूवाला एक निपुण सरोद वादिका, सुगंधा रामन, बांसुरी वादिका नीला आदि संगीत वाद्य वादिकाओं के नाम भी उल्लेखनीय हैं। दक्षिण की कई महिलायें मृदंगम् वजाती है और कुछ घटम् वाद्य।

गायन वादन के साथ-2 नृत्य में भी महिलाओं ने संगीत के विकास में खूव योगदान दिया। सितारा देवी, अमला नंदी, दमयंती जोशी, यामिनी कृष्णामूर्ति, रोशन कुमारी, मृणालिनी साराभाई, सोनल मान सिंह, मालती, हेमा, भारती आदि नृत्यांगनाओं नें भारतीय संगीत जगत् में अनेक कीर्तिमान स्थापित किये।

लोक संगीत के क्षेत्र में तीजन बाई, रेशमा का मुख्य योगदान रहा। इस प्रकार नारी के अनगणित रूप हैं। पंजाव के लोक संगीत की वात करें तो पंजावी लोक संगीत के प्रचार में मुख्य रूप से स्वर्गीय सुरिन्द्र कौर का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। जिन्हें पंजाव की कोयल कहा जाता है, आज उनकी वेटियां इस कार्य को आगे वढ़ा रही हैं। माननीय प्रकाश कौर, गुरमीत कौर वावा, वलवीर कौर, सरवजीत कौर इनका पंजावी संगीत को एक नया रूप देना, नये ढांचे में वांधना संगीत के प्रचार में मुख्य कार्य रहा है।

पंजाव के चर्चित संगीत सम्मेलनों, अखाड़ों व मेलों में महिलायें अपना सम्पूर्ण योगदान दे रही हैं। ज्योति नूरा बहनें, सूफी सपेरों इत्यादि सूफी गायिकाएं संगीत को बढ़ा रही हैं। नेहा शर्मा Voice of Punjab गायन प्रतियोगिता में प्रथम रही, जो एक नया इतिहास है।

आज की नारी शिक्षण संस्थाओं में संगीत विभागों में अध्यक्षता (Head of Music Department) की भूमिका निभा रही है जैसे-पंजाव विश्वविद्यालय में प्रो. डा. सरोज घोष, गुरू नानक विश्वविद्यालय में प्रो. डा. गुरूप्रीत कौर, पंजाबी विश्वविद्यालय प्रो. डा. नवोदिता सिंह, इसी प्रकार ए.पी.जे. कालेज में प्रो. डा. अमिता मिश्रा, इन्दिरा कला विश्वविद्यालय खैरागढ़ में डा. गीता पैंटल, दिल्ली विश्वविद्यालय में अनुपम महाजन, एच.एम.वी. कालेज में ज्योति मट्टू हरिवल्लभ संगीत सभा, जलंधर में पूर्णिमा बेरी इत्यादि मुख्य हैं।

संगीत के लेखक कार्य में वीणामानकर, डा. दविन्द्र कौर, डा. सुधा पटवर्धन, डा.गीता पैंटल, डा. अनुपम महाजन, प्रो. डा. नीलत पॉल, प्रो. डा. पंकज माला, प्रो. डा. सरोज घोष, का विशेष योगदान रहा है।

आखिर में इस शोध का समापन इस रूप रेखा से करते हैं कि यदि पुरुष प्रधान समाज में नारी अपनी गृहस्थ जीवन की कठिनाईयों को सुलझाती हुई, सामाजिक बुराईयों से लड़ती हुई संगीत का विकास कर रही है तो हमें इन के कार्य को सुन्दर व एतिहासिक बनाने के लिए, पुरुष समाज को इनके साथ मिलकर योगदान देना होगा ताकि एक नये समाज व नई दिशा की ओर कदम व कदम हम बढ़ सकें।

संदर्भ

1) संगीत विशारद, बसंत
2) संगीत अभिलाषा, सिंह डा. मलविन्द्र
3) पंडित यशपाल (आगरा घराना) से भेंटवार्ता द्वारा प्राप्त जानकारी
4) अर्थर्ववेद, सं. 437
5) नाट्यशास्त्र, भरतमुनि
6) वही
7) 'संगीत' पत्रिका अप्रैल 2.12, पृष्ठ-11

Dhamaar : A Religious Singing Style of Haridasi Sampradaya

Prof. Sudha Sahgal

The study of Dhamaar in this research paper focuses on the general context followed in the Haridasi Sampradaya. This paper does not search any analytical traits of Dhamaar as it is a famous style of singing but rendered differently. The study was conducted currently and some years ago as well. No difference was found within the time span of almost six years. Aim of this research paper is to bring forth unique rendering of Dhamaarvery contrast to what we listen in Hindustani Shastriya Sangeet and specially in Gharaanas and sing in the institutional set up. Primarily this style stresses upon Bhakti or devotion.

The centres of Bhakti Sampradayasof Mathura and Vrindavan are considered to be the torch bearers of "Kirtan" which have provided Dhrupad and Dhamaar to Hindustani ShastriyaSangeet.

These Bhakti Sampradayas such as Haridasi,Pushtimarg, Sakhi, Vallabh Sampradayas observe nothing equal such remembrance of God daily and on festivals specially when it is mingled with musi c(1).Out of all Sampradayas, Haridasisampradaya (sakhi) established by Swami Haridas around 1550, observes Dhamaar with great profoundity,musical reverence and charm. Swami Haridas's compositions can also be classed as vishnupadas not only because of the religious or mystic source of his music but also because they are musically constructed in a manner which have given emergence to religious dhrupad and dhamaar. He is also said to have written tirvats, ragamalas and other forms. There are around 128 compositions of which eighteen are philosophical (siddhantapada) and a hundred and ten devotional (kelimala).composed in various singing styles.

Swami Haridas belonged to the tradition of Madhura Bhakti - Adoration expressed in conjugal imagery. Swami Haridas's theology embraces not merely the Love of Krishna and Radha but also the witnessing of the Love, a state of mind called rasa. In an ecstatic condition of trance he sings of the play of Krishna among the bowers of Vrindavan. More than Krishna, Radha was the central personality of all his compositions.

The religious and traditional style of Dhamaar developed through Haridasi Sampradayas focusing on Holi festival with devotion, lays its importance in Sampradayas and north Indian Classical music as well.

Dhamaaris a special kind of song which is sung with the description of the festival Holi having lyrics of spiritual

Music Department, Dayalbagh Educational Institute, Agra 282005 (U.P.)

appears lovable to her and tears come out of the eyes of Radha)

These three example of Dhamaarpadas depict the Holi celebration but the hidden meaning folded with spirituality is that the soul loves to be united with GOD all the time and when it does not find GOD along, it laments, repents, cries and remembers GOD continuously. In the padas or literal framework of Dhrupad one can find religious note but in Dhamaar, the relation between soul and GOD is directly indicated. That is why, Dhamaar is sung at the end of the samajgayan or kirtan in Bhakti Sampradayas. How these Dhamaarpadas are musically sung, it is being stated here –

Musical Framework ofDhamaar :

Major distinguishing characteristic of Dhamaar is the relationship of Swara (note) with Shadja (tone) which determines the placement of swaras within the saptak (octave). The gayak (singer) sings and improvises it with Upaj/ alaap (slow progession of swaras) and layakari (tempo or rhythm variations) composed in a taal called "Dhamaar". There exist the scope of systematic improvisation in the building up of the pada composed in specific Raga which means a succession of musical notes. The leader or master of the group brings out new combination, repetitive phrases and different patterns of tempo or layakari. Great stress is laid on voice-culture through regular and systematic singing in the temples. There are some major rules for the singers to follow –

- To remain staunch devotees of GOD and live simple life like seers.
- To sing the Kirtan Bhajans, Dhurpad and Dhamaar according to time and season.
- Having trained and melodious voice with perfect control.
- To have deep knowledge of most of the ragas, techniques and various compositions.
- To have pleasant expression of face and hand gestures.
- To have thorough knowledge of Taal, layakaris and group singing.

Here, an example of musical composition is being given——

RaagVrindavaniSarangTaal — Dhamaar

Sthayi

1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 14

S SSSSS — — n gP — n — PRa — dhi — kaR m P N *S*Nai — na — —X N SKhe — m P so — n Pbha r 2 R — mLe — —m — Rchi — —m R Saa va t0 m R S RKau — — nR m R mHo — ri —N S R S So — chi — 3

(Only Sthayi is being given as an example.

Ref. ——

m—shuddhamadhyam, R—shuddharishabh, N - mandrashuddhanishaad,*S* –taarsa)

UPAJ 1 –

R R mm R R S N S R S R m P m R RN S R S

Ka un — — s a ng kh e le — Ra — dhi —ka - -ho - ri —

UPAJ 2 —

m R m R N S R S m P N NNN SS S S n P m R S

nai - - na— — — — bha r aa — — — va t — — — — - — — —

Singing of Upaj can be rendered as much as a singer desires and after singing Upaj in Antara the singer comes back to the sathayi part.,Taal variants are usedhere. Andafter coming back to sthayi

dhamaartaal converts into another taal structure called Deepchandi. The composition is altered a bit keeping gait in mind of the another Deepchandi Taalsuch as —

1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 14

m R SRKau — -nR m RmHo — riR m P Nai — —— X S SS SSSa — — ngmP m RSo — chi —-m P N *S*na — — —2 N S RmKhe le —-N S R So — ——n — Pbha — r 0 P — n - PRa — dhi -kaS R S Schi — — —-m R S Saa — va t3

After some repetitions again Deepchandi converts into Kehrava such as —

1 2 3 4 5 6 7 8

m R SRS SSSKau-n— Sa— ngP PPmPHo — ——— —-mPmRNS RSSo— chi— So— chi—-n n P Pbha — — rX NSRmP n PKhe le Ra dhi-kaP— PPPRi ——— — ——RRmP N *S*Nai —— na —- m R S Saa — v t0

After singing in KeharvaTaal several times the composition comes to an end.This is how adistinguished composition taking at least duration of minimum two hours establishes Dhamaar on an outstanding platform very different from any other rendering.

Ragas prescribed for Dhamaar :

There is long list of Ragas which are used for Dhamaari. Some are given below :-

* Bhairav	* Vrindavani Sarang	* Desh
* Gaud Malhar	* SamantSarang	* Kafi
* Malhar	* Gaud Sarang	* Shree
* Bilaval	* Puriya	* Megh Malhar
* Asavari	* Darbari	* Kalyan
* Todi	* Adana	* Kamod
* Lalit	* Purvi	* Nat Bilaval
* Malkaurs	* Basant	* Bhoopali
* Dhanashri	* Sohni	* Bihaag
* Jaitshree	* Hindol	* Pancham

Taals prescribed for Dhamaar——

Dhamaar Taal of 14 matras.

Kadhi ta dhi ta X Dha —2 Ge ti ta 0 Ti ta ta —3

Deepchandi Taal of 14 matras

Dhadhin —X Dhadhadhin —-2
Ta tin —0 Dhadhadhin — 3

Keharva Taal of 8 matras

DhagenatiX Na kadhina0

Musical instruments for Dhamaar –

* Tanpura	* Pakhavaj (Mridang)
* Dholak	* Kar-taal
* Sur Mandal	* Jhanj
* Harmonium	* Dhap
* Khanjari	* Shankh
* Manjira	* Thali

(Some instruments as Thali, Dhap, Shankh, Sur-mandal are not in use nowadays)

So, Dhamaar singing style of Haridasi sect is unique in its own way with unparalleled suppositions. As we all know, religion has always been a vital medium for establishing not only music but culture of any country, state, district or village. India having a rich cultural heritage is always indebted to such religious sampradayas that have given our society social,ethical,musical,religious and spiritual values.

References:

1. History of Indian Mythology – Prof. G.N. Awasthi, pg.65, Oriental Pub. House, Delhi.
2. Indian Music of various Religions—Dr. L.R. Ghayur, pg 90, Pratibha Prakashan, Delhi.
3. 1,2,3,— Dhamaarpada from the gayakmandal of Haridasi Sampradaya, Vrindavan.

The Impact of Folk Art on Religion

Dr Sneh Lata Badhwar

Folklore refers to the science of traditions dealing with superstitions, songs and stories, and other practices which are the property of the unlearned and are handed down through the generations of a tribe through the word of mouth. The purpose of the study of folklore such as anthropology and archaeology is to give us in depth knowledge of the past and present cultures of the human society. This is based on the fact that both the civilized as well as the savage communities had customs, beliefs and memories that are relics of an ancient and often unrecorded past. It may be vehemently stated that no superstition is without foundation and that, however, unscientific and otherwise insufficient may be the data on which superstitions are based, the superstitions themselves can be utilized in such a manner so as to cultivate greater tolerance and mutual understanding among various races so as to minimize the conflict between classes and masses.

The details of the folklore are not only found in the existing customs among the uneducated but also in the fairy tales, ballads and much else that has made into the written history and into the sophisticated literature. When history asserts that the site of a certain city was indicated by the movements of a supernaturally endowed animal, or when a literary work such as Hemlet has as a hero a noble youth disinherited by a wicked kinsman who has murdered his father and married his mother, we are dealing with themes that have their roots deep in the lore of the folk. Folk lore is also connected with the history of religion. It was through the folk tales that the man exercised his imagination.

India has a legacy of rich and varied folklore. However, little research has been carried out by the sociologists in the field of culture, complex traditions and social beliefs of the common people thus neglecting the study of folklore which is a reliable index to the background of the people. There has always been an easy mobility of the folklore through pilgrimages, melas and fairs wherein the wandering minstrels, sadhus and fakirs have passed on and shared their knowledge and experience with people of other sects. That is to say that people of the North visiting the temples of South and vice versa carry their folk tales, songs, riddles and proverbs with them and there is an inconspicuous integration. The dharamashalas .i.e. inns and the chattis (places where the pilgrims rest and inter mingle) worked as the clearing house for

Principal Government College, Ropar

the folk tales, traditional songs and riddles. It would thus be seen that there is some what a common pattern in the folk literature of different regions. The same type of folk tales will be found in Kashmir and in Kerala with slight regional variation. These stories were passed on from generation to generation by word of mouth before they came to be reduced in writing.

What is so fascinating about the folk tales that equally enchant the old, the young and the very young? The same story is often repeated but does not lose its interest. This is due to the satisfaction that our basic curiosity finds in the folk tales. The tales through phantasies, make-beliefs and credulous acceptance helped primitive man to satisfy his curiosity about the mysteries of the world and particularly the many inexplicable phenomena of nature around him. Despite scientific advancements all around us, we still have an element of primitiveness in our minds. It may though sound absurd but a highly educated modern person also finds great delight in the fairy tales like the one about the moon being swallowed causing lunar eclipse. The advancement in science can never banish the folk tales; on the contrary the scientists are intrigued the thinking process of the man based on his culture and surroundings. We are well aware of the scientific causes for the occurrence of earthquakes, however it is very fascinating for the old, young and children to be told that the world rests on the hood of a great snake and when the snake is tired with its weight, it shakes the hood and there is an earthquake.

Folktales are also based on weather and climate and are often related with particular stages of the crops. The rainy season and the hottest month are intimately associated with the ripening of crop or the blossoming of trees or the frequency of dust storms and stories are woven around them. But there is nothing more interesting in the folktales than the explanation given pertaining to the phases of the moon, the stars and the sun. According to Mundas, an aboriginal tribe in Bihar, the Milky Way is the "Gai Hora", i.e., the path of the cows. The Sing Bonga God leads his cows along this path every day. The dusky path on the sky is due to the dust raised by the herd. The dust raised by the cows sends down the rain. Notwithstanding the scientific advancements, a story of this type will be very keenly received by the village folk and even to some extent by the educated class.

The primitive class had their own perception of the surrounding animal and plant kingdom. The animals were grouped into various categories according to their intelligence and other habits. A fox was considered as the epitome of cunningness whereas a cow was considered to be a very gentle creature. The lion and the tiger have a majestic air whereas the horse is a fast moving, elegant and an intelligent animal. The lazily but gracefully moving elephant is very sincere to his attendant but never forgets an individual who has harmed him. Monkeys are supposed to be close to man. The peacock is very happy, colorful and a gay bird whereas a crow is associated with shrewdness. The story about the race of the hare and the tortoise is well known. The tortoise is slow moving but sure footed. The hare, though extremely swift is prone to laze on the road. Likewise a large people tree is naturally associated with the abode of the sylvan god. A jungle with a thick bunch of trees and foliage is always

known to be base from which the thieves and dacoits operate. A solitary hut in the midst of a forest has to be associated with some unscrupulous and dicey elements. The aforesaid ideas have been deeply entrenched in the folk tales to satisfy the basic urge of a primitive and uncivilized mind regarding the functioning of the universe. Then there are the tales of the witches and ogres who are totally illogical but terrifying. The folktales though scientifically illogical give a good idea of the social development, thinking and the prevalent culture of a particular time.

From time immemorial human society in itself has been a huge source of folktales. The usual occurrences in the daily life are well depicted in the folk tales. The issues such as the love of parents for their children, the children's love for adventure activities, falling in love, the fear of the unknown, the malaise of greed, exploitation of the poor and yearning for riches by the common man are some of the usual themes of folktales. A fantasy which takes one to the dreamland of the super rich, the kingdoms, the princes and the princes is well illustrated in the folktales. The usual habit of a mother-in-law to rebuke and ill treat her daughter-in-law, the inability of a woman to keep secrets, the love for scandal and gossip by men are some of the basic issues of daily life and have remained so for generations. These issues make the central theme of the folktales.

Folklore is an integral part of religion; in fact it goes beyond religious or supernatural beliefs and practices, and encompasses the entire body of social tradition whose chief vehicle of transmission is oral. Marriage is a very important religious event with its ceremonies having a very deep link with the folklore. Singing of "Ghoris" during the marriage functions is one such example of the folklore in Punjab."Ghori" is like a lyric sung during the marriage event without use of any musical instrument. When the bridegroom dressed up elegantly, is sitting on the mare, ready to leave for the bride's house for the marriage, the sisters of the bridegroom holding the reins of the mare, sing this special song called "Ghori" . This ritual has carried on for generations. This folklore has been related by the Sikh Gurus with religion as it finds a place in the Gurubani where it has been stated that this poetry has been written by Guru Ramdas in raga "Vidvans". Guru Ramdas has thus connected this poetry which is a key part of the folklore of Punjab with the name of the God..Therefore when these lyrics are sung at the time of the marriage, one automatically bows his head to the God. Guru Ramdas has written two such poems on the rhymes of these " Ghoris". The Guru thought that this is an easy way by which people can understand and enrich themselves with the name of the Almighty...

According to Baba Nanak, the worship of the God is the most beautiful thing in this world. The Guru says; Hey brother! God has created this horse like body of ours and with this beautiful horse like human body; we have to pray to the God. We have been endeavored with this beautiful human body probably because we have done something good in our previous lives. Thus with this body we can climb the horse and can achieve the ultimate God and obtain salvation from the world. By this we can achieve the virtue of God who has organized this marriage and the Santjan have come as

Barati. Oh God, I have achieved a husband in the form of God and with devotees; I have sung the religious songs in His praise.

Aspects of folklore such as folktales, religious issues linked with folklore and folk literature also find a mention in Guru Granth Sahib, though, with hardly any direct description. The folklore has been reflected at four places, twice in the Bani of Guru Ramdas and once each in the Banis of Sant Kabir and Bhagat Namdevji. One of the Banis describes the tortures inflicted on Bhagat Prahlad such as; his being confined in a room, thrown down from a cliff, his drowning in a sea and when all these actions failed to destroy him, he was made to sit on fire. Bhagat Prahlad was however rescued by the God Himself who came in the guise of Narsimha. The stories related with " rishis" and devotees were considered sacred, because a human mind which retains these stories is considered pious where the God resides permanently.

In addition to the above aspects of folklore, folk songs, Var,Kafi, Sad, Bara Maha, Chat, Allahurian, Lavan , Ruti, Khiti, Bavan Akeri etc, as also Dupade, Thipde, Ashatpadian which are all related to folk literature, find a place in Guru Granth Sahib. There are a total of 145 'chats' in Guru Granth Sahib, of which 20 are in raga Suhi. All these chats are related with the happiness of marriage. 'Allahurian' are related with death. The Lord says that there is no use crying over the dead, instead we should be taking the name of the Almighty and singing His glory. These Allahurian have been written by Baba Sundarji in rag Ramkali. Var is also totally related with folk. In earlier times, these were connected with war and were sung when the soldiers were proceeding for the battle. These vars were full of the deeds of bravery of the Gurus and impressed upon the soldiers to seek victory in the name of the God without caring for their own lives. Guru Granth Sahib contains nine vars such as: Asa Ki Var which has 21 Pauri with each Pauri having 2-2 shalokas and another Var called Gowdhi Ki Var with 33 Pauri. Guru Arjan Dev ji has also written a Var named Bhihagrokh ki Var which contains 21Pauri and 7 Shalokas.

It would be thus seen that folklore is deeply rooted in all aspects of our life. It has given us a way of life which is based on our past culture and passed on from generation to generation. The folklore has had a profound influence on our religion. It may be stated that in the current format of our life, it goes beyond religious and supernatural beliefs and encompasses the entire gamut of social traditions which have been transmitted orally from time immemorial.

References

1 Encyclopedia Britannica, Vol-9, P 446
2. Encyclopedia Of Indian Culture Vol -iii, P-971
3. Punjab Lok Dhara and Sabhiachar, P-5 By Balbir Singh Dhmi
4. Folktales of Himachal Pradesh, P-4 By K S Seethalakkshmi
5. Folktales of Uttar Pradesh P-5,6,7 By K P Bahadur
6. Sahitya Darpan Pustak Mala-Patiala (1951) P-136
7. SRI Guru Granth Sahib, Ghori P-575, 576 SRI Guru Granth Sahib, Lava P-773,774 SRI Guru Granth Sahib Asa Ki Var P-448 SRI Guru Granth Sahib Gauri Ki Var P-300

Importance of Region, Climate and Culture of the Folk Dances of India

Dr. Ami Pandya

India is considered to be one such land of different culture that no other countries in the world has. The nation has 29 states that have over 100 communities. Each community bears different culture and their different occasions. Indian Folk Dance depict the different cultures of different states of India. These forms of dance take place in every occasion of the states. Each dance style carries different meaning and different style. They use colourful attire and matching jewellery along with different songs they sing during the dance. As we know India is the land of culture, tradition and rituals. The folk dance carries the traditional meaning and importance of the culture of each community and state. As each folk dance is from different region it has its own climate. And Region, Climate and Culture has its effect on the Folk Dances of India.

We may say that folk dance is that which has developed among the impoverished rural farm workers and is maintained by them in a fluid tradition without the aid of the professional dancer, teacher or artiste. It is done for the sheer pleasure of the performers and not for the entertainment of the public. With the progress of civilization it has developed from the aboriginal dance. Emotion expressed in the folk dance is original and natural.[1] The Folk dances are a direct and unsophisticated expression of the innermost spirit of India. A man who is living close to nature will be definitely affected by the natural phenomena of his environment. As a result the folk dances of a country are much influenced by the atmosphere and theme of these natural circumstances, as they are by the geographical conditions to which they belong.

Folk dances are performed for every possible occasion, to celebrate the arrival of seasons, birth of a child, a wedding and festivals. The folk dances are extremely simple with minimum of steps or movement. Indian folk dances are full of energy and vitality. Some dances are performed separately by men and women while in some performances men and women dance together. On most occasions, the dancers sing themselves, accompanied by artists with instruments. Each form of folk dance has a specific costume and rhythm. Most of the costumes, worn for folk dances, are colorful with extensive jewels and designs.

Folk dance can be defined in the simplest words as a form of dance, developed by a group of people, which reflects the traditional life of the people

Assistant Professor, Department of Dance Faculty of performing Arts, M.S. University of Baroda

of a certain country or region. This form of dancing involves a group of happy people, following dance instructions given by an experienced caller. The steps are performed in certain formations, such as a circle or a straight line, by the dancers. The term folk dance is reserved and is mainly kept for dances which are, to a major degree bound, by tradition. However, with time, these dances have laid down the foundation for a number of modern dances. The multi-cultural country of India has also seen the development as well as growth of folk dances till date.

Known as the mecca of rich heritage and culture, India is one of the very few countries in the world that boasts of varied ethnicity and traditions. An instance of this is the folk dances that have survived past many centuries and continue to withstand, despite the lash of modernization. India has been home to thousands of year old tradition of fine arts and classical and folk music and dances. The folk dances of India which is today popular worldwide, reflects the diversity in Indian tradition and culture. Different regions of India boast of their own folk dance form that has its own significance. Eastern India folk dances are one such form.

Region :

Different regions in India, however, do not present an identical picture; in some, only tribal dances, which are peculiar to one racial group exist; the patterns of their movements can be related only to the level of their socio-economic development, in others, only agricultural functional dances exist, yet others there is the coalescing of all these levels.[2]

The influence of natural environment on the movements of the dance is perhaps to some extent responsible for the difference between the dances of different regions. One finds the dances of the plains comparatively much milder in expression than those of the hilly places or of regions abounding in jungle or subject to cold.[3]

When we talk of the Geographical conditions, the dance movements of the hilly area and of the flat area will be different. Eg. Kashmir is in the hilly area so the dance steps are small and soft where as Gujarat is the flat area so the dance steps are hard and fast.

Folk Dance is of great national importance and aesthetic value. The folk-dancing of a nation is the nation's mirror, in that it manifests to some extend the nation's temperament, art, culture, simplicity, social status, customs and creed.[4]

Climate :

The climate of India comprises a wide range of weather conditions across a vast geographic scale and varied topography, making generalisations difficult.

North India lies mainly in the north Temperate zone of the earth. During winter, the lowest temperature on the plains dips to below 5 °C, and below freezing point in some states. Much of north India is famous for heavy fog during winters. East India lies in the humid-subtropical zone, and experiences hot summers, monsoon and mild winters. South India has a tropical wet and dry climate and heavy rainfall. West India has the climate varying between tropical wet, tropical wet and dry, and semi arid. Hot summers and cool winters are there.

Due to the diversity of the climate in India, characteristic peculiarities are evinced in individual Indian dances. The energetic dance and the gentler dance has

the influence of natural environment on the movements of the dance.

One finds the dances of the plains comparatively much milder in expression than those of the hilly places or of religions abounding in jungle or subject of cold.[5]

For example, the Folk region of North has extreme cold climate and so the people wear wollen and thick clothes. With the result the movements of the dance becomes slow. The other eg. is, the people living in the region which is hot, like Western India. Here the people will wear cotton clothes which are thin and are able to absorb the sweat due to heat. As a result the folk dances of that particular region will have fast movements.

The tribes who live in the jungle mostly have dances which enact the roles of tigers, elephants, etc. because all the time they are surrounded by these animals and they have to protect themselves from these animals. So the movements and expressions of the dance are such.

Culture :

Art and Culture are different but they make a good combination. It is not necessary that a cultured person only can become an artist but it definitely makes a difference if an artist is a cultured person.

India is a land of varied cultures and traditions. Diversities in all spheres make the Indian culture quite unique. Indian folk dances are product of different socio-economic set up and traditions. They are simple and are performed to express joy. In India we have festivals and celebrations virtually every day. This has added to the richness of Indian culture. Since every festival is accompanied by celebration, folk dances have become an integral part of our social milieu. While there are numerous folk and tribal dances, they are constantly improved. The skill and the imagination of the dances influence the performance.

Folk dance establishes a common culture and language. Through folk dance the communication becomes easier between different races. Even though we nowadays have folk dances done by the urban people it can be enjoyed in its full form if we actually go to the villages and be part of that particular folk dance.

There are many folk dances which are mostly decorative and looks like physical training but they have a very strong bonding with the life and culture of the people who are performing.

The Indian village folks have retained until now their old traditional culture because no outside culture has invaded into their territory.[6]

At the end we can say that the Folk Dances of India differ with different Region and its Climate and Culture.

Footnotes:

1. The folk Dance of India by Projesh Banerjee pg;1&2
2. Traditions of Indian Folk Dances by Kapila Vatsyayan pg;31
3. The folk Dance of India by Projesh Banerjee pg; 4
4. The folk Dance of India by Projesh Banerjee pg; 3
5. The folk Dance of India by Projesh Banerjee pg; 4
6. Traditions of Indian Folk Dances by Kapila Vatsyayan, pg;8

Referred books:

1. Indian Geography in the 21st Century: The Young Geographers Agenda edited by Ravi S. Singh
2. "Celebration of Life - Indian Folk Dances" *Jiwan Pani* Publication Division, Ministry of Information and Broadcasting, Govt of India, Patiala House, New Delhi.
3. "Folk, Tribal & Ritual Dances of India" *Ashish Mohan Khokar* Published by Rupa

Cure of Various Physical and Mental Disorder by Music Therapy

Dr. Jay Sevak

Music has frequently been used as a therapeutic agent from the ancient times. Music is a kind of yoga system through the medium of sonorous sound, which acts upon the human organism and awakens and develops their proper functions to extent of self-realization. This is the ultimate goal of Hindu Philosophy and religion. Melody is the key-note of Indian Music. The 'Raga' is the basis of melody. Various 'Ragas', have been found to be very effective in curing many diseases. Some philosophers like Plato and Aristotle have declined the healing power of music. A lot of information pertaining to the use of music by primitive medicine men, and semi magical cures through music is available. But these are of greater literary and historical value than scientific. Music is generally regarded as a relaxing and stimulating power in western hospitals. It has also been accepted as a therapeutic agent to treat mental patients with music has been found useful for brain - damaged patients. Music is being used in form of group singing, playing of instruments and music appreciation. Dr. S. D. Mitchell was a great protagonist of music – therapy in mental illness later on, Dr.Blair, a consultant psychiatrist, and Mrs. Brooking, a music therapist, jointly conducted investigation at St.Bernard's Hospital in Middlesex, England and used music therapeutically in various ways with varying degrees of success. Numerous studies have been conducted to determine the effect of music on mental patients. The result of these is usually reported in terms of observations made by the investigators. Music therapy is considered to be the most expressive therapy. Music therapy is an interpersonal process in which music is used for the treatment of different physical emotional, mental, social and spiritual problems. Music therapy not only heals the disabled or ill persons but also improves the quality of normal and healthy persons. There are many connotations of term 'music therapy' first the word music refers to both instrumental and vocal types second the word music is a broder term in that it includes solo song, chorus, orchestra , and such other activities third, music therapy is a form of group therapy. At a time it is used for number of patients. Fourth many times it is used along with other types of adjunctive therapies like dance and art therapy. Fifth now-a-days it is considered as a form of recreation therapy.

As reported in Hindustan times 30.01.2006 the Vedas talk of comic sound

Assistant Professor, Vocal Department, Shree Arjunlal Hirani College, Rajkot

energy as the source of all creation and healing powers of sound. The chanting of "*AUM*" has a curative power. The comic flow of seven notes *Sa, Re, Ga, Ma, Pa, Dha*, and *Ni* which correspondence of the vedic notes namely *Chatustra, Mandra, Atiswarya, kruehtha, Prathma, duitiya* and *tritiya* can reactivate specific streams of natural powers. This is because of the harmonious resonance of the seven notes with the seven plexuses of a human body.

"Arnold Alestan" said in his write up 'the musicians approach to musical therapy' the validity of general observation made by experiments in the field to the effect that lively music, such as brisk, marches, dance etc. Stimulates heart action and accelerated pulse and breathing, resulting in an increase of energy." **Advard Podolusky"** said It seems, therefore, that this kind of music has a stimulating effect on the circulation by increasing the blood pressure and pulse rate while lessening the action current of the heart. **"Shakespeare"** said – The man who hath no music in himself or is not moved by the conchord of sweet music is fit for treason, stratagems and spoil, let no such man be trusted.

The human body is used to be like an instrument expressing numerous frequencies in constantly changing spectrum of life. The sensation are received through the eyes. Ears and other organ known as the gate way of sensation. At the basic level, the sound waves affect specific parts of middle and inner ear. From the ear, the auditory information travels to the brain music whether vocal or instrumental has the power to stimulate the human body, mind and spirit simultaneously. This is possible because different composition of specific frequencies which activate different part of brain. This leads to change in mind and behaviors. A musical composition consist of many components such as melody, rhythm, tones & for. All these combined together can evoke certain emotions. Bring a change in heart beat and breathing hence deal with grief, anger or any breathing hence deal with grief, anger or any negativity of mind. One comes to the conclusion that by the medieval period, the ragas were so well established after exhausted research that each raga had its own individual identity. Eventually, there was a categorization some of the classification is as follows. *Bahar basant , miya mallhar, desh* project the emotions of joy and happiness. A person suffering from depression the morning ragas such as *Bhairav, Jogiya* can evoke *shant* ras, spiritual mood or bhakti *bhava*. Such ragas can treat patients with anxiety and hypertension.

In the present day music commonly used as therapy and in due course has shown certain results. As said by the renowned musician, Pt. Shashank Katti, raag Hindol cures spondylitis. He also claims that he has got remarkably successful Asthma and migraine insomnia & depression, other research in the same field show.

Raga

Ahir Bhairav - Indigestion, Rheumatic Arthritis, Hyper tension

Asavri - To build confidence

Bageshri - Insomnia

Basant Bahar - Gall stones (Cholecystitis) Rheumatic Arthritis

Bhairavi - Sinusitis, encourages detachment

Bhim Palasi - Anxiety, Hypertension

Chandrakauns - Depression

Darbari - Sedative

Darbari Kaada - Headache, Asthma, Indigestion

Deepak - Anorexia, Hyperacidity, Gall stones (Cholecystitis)

Gujari Todi - Cough, Rheumatic Arthritis

Gunakali - Constipation, Headache, Piles or Hemorrhoids

Hindol - Rheumatic Arthritis, Spondilitis Backache, Hyper tension

Jaunpuri - Intestine Gas, Diarrhea, Constipation

Jaijai-wanti - Rheumatic Arthritis, Diarrhea, Headache

Kafi - Sleep disorders

Kausi Kanada - Hypertension, common cold, cough, Asthma

Khamaj - Sleep Disorder

Madhuvanti - Piles or Hemorrhoids

Malkauns - Intestinal gas

Malhar - Asthma

Marwa - Indigestation, Hyperacidity

Nat Bhairav - Indigestation, Rheumatic Arthritis, Colitis

Puriya - Colitis, Anemia, Hypertension

Puriya Dhanashri - Anemia

Ramkali - Colitis, Piles or Hemorrhoids

Shree - Anorexia, common cold, cough, Asthma

Shudh Sarang - Anorexia, Gall stones (Cholecytitis)

Shyam Kalyan - Cough, Asthma

The Raga research centre in Chennai, India is currently making a comprehensive study of Indian raga and evaluating their therapeutic potential with the help of musicians, doctors and psychiatrists. It is believed doctors and psychiatrists. It is believed that classical Indian ragas can benefit a whole host of conditions ranging from insomnia, high and low blood pressure to schizophrenia and epilepsy. It is believed that there are other ragas that can help fight ageing and pain too.

Music can play an effective role in helping us lead better, fruitful lives. Listening to specific kinds of music at specific kinds of music at specific times of the day has been shown to be helpful in maintaining good health. Indian music, with its many ragas, is known to be particularly therapeutic value. The curative power of music emanates from the resonance of certain ragas on hormonal and glandular functions which produce secretions that keep the body balanced and infection free.

Advantage of Music Therapy

Pleasant tunes transfer good vibrations in the atmosphere. Music acts on our mind before being transferred into thought and feeling. Music acts on our mind before being music influences the lower and higher cerebral centers of the brain. Use of music as a therapy is an important tool in the treatment of the both physiological and psychosomatic disorders. Music therapy stimulates good vibrations in the nerves of the listeners. Music therapy stimulates good vibrations in the nerves of the listeners. Music therapy helps to clear the junked thought in mind, which leads to have positive frame of mind. Music therapy enhances the concentration level of children. Effect of music on the behaviour of individuals is enormous. Music improves the capacity of planning. Musical training helps to express refined exhibition of emotions and clarity in cognition too. Music therapy stimulates beta cell activities and enhances the quality of protein release of brain chemicals. It enhances the quality

of neurotransmitters and conditions the heart. Music therapy reduces hypertension. Music therapy reduces hypertension. Music influences the perception of art and promotes physiological and behavioural relaxation in neonates. Music provides a kind of pleasure which produces a kind of pleasure which human nature cannot pleasure which human nature cannot do without. Music relieves insomnia. Music enhances cognitive process.

Music training and exposure increases the amount of brain that responds to musical sounds music during exercise produces physiological benefits. Exposing to classical music regularly facilitate few positive benefits in patients. Music helps to attain comfort from a discomforting condition.

Music therapy may not be an exact science. It may yet be in its infancy. But there is no disputing the fact that music has a value which affects one of our prime senses. That people respond to music is a foregone conclusion, what now matters to something more positive and more conclusive to enrich our life.

Bibliography-

1. Sangeet Kalavihar
2. Music Therapy, Dr. Manorama Sharma
3. Naad Yog, Dr. Chaman Lal Gautam
4. Sangeet Sanjeevni, Dr. Lavanya Kirti Singh
5. Music Therapy, Dr. J. Pal
6. Music in Therapy, Gaston

Music therapy for health and wellness

Dr. Archana Aditya Mhaskar

Music is often linked to mood. A certain song can make us feel happy, sad, energetic or relaxed. Because music can have such an impact on a person's mindset and well being it should come as no surprise that music therapy has been studied for use in managing numerous medical conditions. All forms of music may have therapeutic effects although music from one's own culture may be most effective. In Chinese medical theory, the five internal organs and meridian systems are believed to have corresponding musical tones which are used to encourage healing. Types of music differ in the types of neurological stimulation they evoke. For instance, classical music has been found to cause comfort and relaxation while rock music may lead to discomfort. Music may achieve its therapeutic effects in part by elevating the pain threshold.

Music may be used with guided imagery to produce altered states of consciousness that help uncover latent emotional responses and stimulate creative insights. Music may also be used in the classroom to aid children in the development of reading and language skills. Receptive methods involve listening to and responding to live or recorded music. Discussion of their responses is believed to help people explore themselves in socially accepted ways and to examine personal issues.

There are evidences that music therapy may increase responsiveness to antidepressant medications. In elderly people, with depression, a home based program of music therapy may have long lasting effects. In depressed adult females, music therapy may lead to reductions in heart rate, respiratory rate, blood pressure and depressed mood. Music therapy may also be beneficial in depression following total knee replacement surgery in patients undergoing hemodialysis. There is evidence that music played to the womb during late pregnancy may lead to children being more responsive to music after birth. Soothing music may help newborns relax more and feel less agitated. Pre-term newborns, exposed to music, may have increased feeding rates, increase in weight gain and tolerance stimulation also; they may sleep deeper after the therapy. In elderly people, music may result in significantly better sleep as in; longer sleep durations, greater sleep efficiency and less amount of time needed to fall asleep. There are evidences that music that reflects the listener's personal preference is more likely to have desired effects. It's possible that music through

B.Pharmacy, M.Mus.(Gold Medalist), PhD.(M. department BHU) NET qualified Akashvani artist

headphones during medical procedures could interfere with the patient's cooperation with the procedure. Also, listening to music at high volumes may damage ears and lead to hearing loss.

At its core, music is sound and sound is rooted in vibration and these sound vibrations absorbed through the body can help ease the symptoms of: Parkinson's disease; Fibromylagia; and depression, known as vibroacoustic therapy, which involves low frequency sounds similar to low rumble, to produce vibrations that are directly applied to the body. In this therapy, the patient lies on the mat or sits on a chair, embedded with speakers that transmit vibrations at specific computer generated frequencies that can be heard and felt since the rhythmic pulses of music can drive and stabilize disorientation in different disorders.

Hindus in ancient period relied on music for its curative role, the chanting and toning involved in veda mantras, in praise of God have been used from time immemorial as a cure for several disharmonies in an individual as well as his surroundings or environment. Several sects of bhakti such as "chaitanya sampradaya", "vallabh sampradaya" they have all accorded priority to music. Indian Classical music can be classified into two forms: 1. Kalpita Sangita or Composition; 2. Manodharma Sangita or the music extemporized and performed. According to an ancient Indian text, Swar Shastra the seventy-two ragas that can control seventy-two important nerves in the body. It's believed that if one sings with due devotion adhering to the rasa lakshana and shruti shuddhi, the raga could affect the particular nerve in the body in a favorable manner. The descending notes in a raga (avroha) do create inward feelings and the ascending notes (aroha) represent an upward mobility. Thus music played for the soldiers or for dancers has to be more lively and up-lifting with frequent use of arohana content, in the same way, melancholic songs should go for depressing avrohanas. Some ragas like "Darbali Kanada", "Khamaj" and "Purija" are found to help in defusing mental tension, in case of hysterics. For those who suffer from hypertension, ragas such as "Ahir Bhairav" and "Todi" are prescribed. To control anger and being down with the violence, ragas like "Varali" and "Shahana" are effective.

Thus, a growing awareness of ragas could be a safe alternative for many medical interventions.

Practices of Sanskrit Theatre in the Theatre in the Context of Western Model

Prabhakar Dabhade

○ WESTERN MODEL:

- Approximately In the 19th Century, and mainly when the British East India Company was established in India, the British introduced "Modern European Theatre" to India in different ways; in this way 'Western plays / British Theatre performances' also traveled in India. As a result, its effect could be seen on Sanskrit plays, which were translated into different Indian languages and performed in different parts of India by urban middle-class intellectuals.
- But its presentational style was laid down / depended on 'British Theatre / Western Theatre' style and this was clearly visible till independence, the salient features of which are as follows:

○ SALIENT FEATURES OF THE PRESENTATIONAL STYLE/S:

⇒ The dialogues of Sanskrit Classical Plays were spoken in a Realistic manner like contemporary social plays.

⇒ The 'Shlokas – Verses' were either dropped considering being unnecessary as found impeding the action of the play or were paraphrased into prose or as in Maharashtra songs were introduced in the translated plays.

⇒ The dance and music had become part of the plays staged though the dialogues were spoken in a semi realistic style.

⇒ The descriptive passages such as Vidushaka's description of the seven-storied mansion of Vasantsena were deleted as they were thought to be unnecessary padding.

⇒ These plays were invariably produced in the Proscenium Theatres with settings consisted of flats, painted wings, borders and backdrops.

⇒ The furniture that was not required was painted on the screens depicting a palace or a house or a hut. An attempt of at verisimilitude was made by the use of perspective in painting scenery.

⇒ The costumes of heroic types at times were, more or less, based on the Western Melodrama, which themselves reflected the Greek or the Roman influence.

Associate Professor, HOD. DFPA The M.S. University of Baroda Vadodara – Gujarat

⇒ A touch of Indiannesswas added to the costumes by a 'Turban' with a jeweled plume or tassel; a long 'Coat' heavily embroidered with 'Zari', a 'Crown' and embroidered 'Shoes'.

⇒ The women usually donned saris worn in the style and material prevalent in the region.

⇒ In short, the whole atmosphere was rather akin to the presentations of the melodrama of the West with touches of Indianness with elements such as music, dance, costumes and scenery that reflected some Indian scene.

⇒ The three dimensionality of the actor was pitted against the two-dimensional flat painted surfaces.

✪ MAJOR PRODUCTION SUMMARY:

⇒ On 21 Dec. 1831 the newly formed theatre company of Bengal Hindu Theatre performed H.H. Wilson's English translation of Bhavbhuti's **"Uttar Ramacharitam"** at Prasnna Kumar Tagore's Garden House, along with selected scenes from Shakespeare's Julius Ceaser.

⇒ Vidyatoshini Theatre presented Bengali Translations of Bhatt Narayan's **"Venisamharam"** (Tr. Ram Narayan Tarkratna), Kalidas' **"Vikramorvashiyam"** (Tr. Kali Prasanna) and Bhavbhuti's**"MalatiMadhav"** (Tr. Kali Prasanna) on 11 April 1857.

⇒ PathuriaGhatRangmanch performed the Bengali Translation of Kalidas' **"Malavikagnimitram"** (Tr. Yatindra Mohan Tagore) in 1859; Royal Bengal Theatre also performed Kalidas' **"Shakuntala"** in 1890 before Queen Victoria.

⇒ The New Theatre Movement in Kannada also started with Translations - Adaptations of Sanskrit Classical Plays towards the end of 19th Cent.

⇒ KirloskarNatakMandali initiated its Professional Activities on regular basis with the staging of **"Shakuntala – Its Four Acts"** in a Marathi translation entitled **"SangeetShakuntala"** on 31st Oct. 1880 at Pune, in which the verses of the play were rendered in classical music and the local milieu in costume material, mode of wearing, hair style and ornaments of the time are reflected.

⇒ In Hindi, BhartenduHarishchandra also Translated – Adapted Sanskrit Classical Plays.

⇒ Parsi Theatre presented Hindi-Urdu Translations of Sanskrit Plays which were performed in either Shakesperean or Parsi Theatre Style.

⇒ Prithvi Theatre's maiden venture was also the performance of the Hindi adaptation of **"Shakuntala"** on 15 January 1944 at Bombay's Opera House. Though artistically unsuccessful, it was highly popular among theatergoers and fetched 212 performances.

⇒ DajiBhatawadekar directed **"Shakuntala"** for the Brahmana Sabha Bombay in early fifties, which was staged at BhartiyaVidya Bhavan with a setting, with tree branches and a painted curtain depicting on ashram. The some production was revived in 1970-71.

⇒ Daji Bhatawadekar also directed Marathi Musical Sangeet" **Mrichhakatikam"** for the Brahmana Sabha of Bombay.

⇒ Dr. V Raghavan, the founder of 'The Sanskrit Rangam', (founded in 1958) directed "**Shakuntala**" in 1961.

⇒ "**The Priest and the Prostitute**' – Performed in Sanskrit by Sanskrit Rangam at the Museum Theatre, Madras in 1960, Directed by V. Raghavan.

⇒ SanskritaRangam has staged many Sanskrit Classics interspersed with Karnatic Music and Bharat Natyam Dance and with Realistic Settings.

⇒ "**The Priest and the Prostitute**"– Performed in National School of Drama, New Delhi, in 1960.

⇒ Eminent Organizations such as BrahmanaSabha of Bombay, the Sanskrit Rangam of Madras and the KalidasSamaroh of Ujjain staged Sanskrit plays as literary exercises rather than any theatrical experience to popularize Sanskrit language and literature.

Reference books :

- Theatres of Bharata and some Aspects of Sanskrit Play Production - Goverdhan Panchal: Chapter 9, Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd., First Edition: 1996
- Sanskrit Drama in Performance - Edited by Rachel Van M. Baumer and James R. Brandon, The University Press of Hawai, Honolulu, First Edition: 1981

Contribution of Swami Vivekananda in Indian Music

Dr. Meghana Ashtaputre

A young adolescent....in his early thirties.....time September 1893.....venue United States of America ... . Chicago City.....occasion.....Parliament of World Religion Conference (11-27 Sept) inaugurated by Cardinal Gibbons (the highest Catholic official in New York) (Cardinal Gibbons who inaugurated Parliament of World Religion Conference. A person who is magnificent personality, avisionary, a stalwart,with wheatish complexion and royal gesture, who with his intellect, oratory skills and merriment has addressedlarge group of Anglo-Saxon audience and awestruck their ideologies. He was none other than India's own philosopher Swami Vivekanand.

Swamiji means depiction of energy. To work for mankind was his message and motto of his life.Swamiji means strength.His message to the world was to be courageous, strong and virile.

It is a known fact that music originated from Lord Shiva's mouth. (Shiva's mouth is the genesis of music.) An unknown explorer to Himalayassaw Swamiji and expressed" Incarnation of Lord Shiva!" This proves association of Swamiji with music.Swamijihad all the required qualities like strength, intellect, creativity, peaceful frame of mind and body, philosophy etc. possess music. Swamiji was completely devoted and loyal to his Guru RaamkrishnaParamhans. There is no otherexample of association between 'Guru-Shishya'.

Young 'Naren' had pride and intellectual nontolerance and had aristocratic opprobrium if below the sanctity of ideologies. However during his initial tour to India he was guest at the court of King of Khetadi (April 1891) one ordinary dancer unknowingly taught him a lesson of modesty. While this monk was leaving that place the dancer used her weapon of her musical talent and ……..

When she began to sing ……

प्रभु मेरे अवगुण चिंतन धरो।
समदरसी हे नाम तीहारो ।।

Her distinguished impact of music impressed egoistic Naren. The faith expressed through this Bhajan changes his entire life. Swamiji always reminisce this incident for lifetime.

Swamiji witnessed terrible poverty and agony of the masses while touring India. Therefore Swamiji visited America to find resources to liberate India from

Assistant Professor, Dept. of ICM (vocal) Faculty of Performing Arts, M.S.University of Baroda

the condition of penury. Through music he expressed agony towards the community. With his painful voice he used to sing one of theBhajan of SantMirabai...

मीरा की गति मीरा जाने और न जाने कोई ।
घायल की गति घायल जाने और न जाने कोई ।।

About music Swamaiji always mentioned that, 'Dhrupad, Khayal, Gayakietc. are disciplined along with this true music is found in Kirtan. Songs of melody, parting, devotion etc. have feeling of emotions and are soulful.

According to Swamiji the folk music generates musical environment. To prove the prominenceof music Swamiji further adds that, "The Indian music will be complete, if the technique of singing 'Dhupad-Khayal'isused while presenting Kirtan.

The present era is of edification. The better things have good and bad qualities. There is a tremendous improvement in education system. Swamiji had always tried to convey the messagethat everyone should acquire the knowledge of music along with normal education.

The most important fact is Swamiji was a 'Dhrupad' singer. "What is music?,What role music can play in our life?, How directly it could affect us?, and How music can influence society, change the mindset and bring progress?; all these issues were addressed by leaders like Ravindranath Tagore, Mahatma Gandhi, LokmanyaTilak and Swami Vivekanand.

Swamiji was a versatile artist. He was a poet and composed his own poems this proves the above statement. Swamiji used to begin his routine with 'OmkarSadhana' and prayer. There was musical atmosphere in his house. His grandfather Durgaprasad Dutt and father Vishwanath Duttwere conversant with music. His father was lawyer. As he accompanied his father to the places like Lucknow, Delhi, Rajashtan, Indore etc. he was well versed with 'Khayal', 'Tappa', 'Thumari', 'Gazal' etc. Along with this he continued his education too.

Swamiji got training in music as tradition from his father. His mother Bhuvaneshwari too had melodious voice. She was also a good singer. There was entirely a musical atmosphere in his family. He was best at vocalist, Pakhawaj player and philosopher of music. His voice had a great appeal, depth, emotiondmelodious. Swamiji specifically practiced a lot of 'Dhrupad' style. He won hearts of many people by present Bengali Kirtan along with 'Khyal', 'Tappa' and 'Thumari'.

It is said that Swamiji's first music Guru was his father VishwanathDutt. In one of the 'SangeetSadhana Kendra' once in a week a music session used to take place; that encouraged Swamiji to dedicate himself to flourish the knowledge music.

There are differences about music Gurus of Swami Vivekanandji. It is said thatSwamijiacquired training of music from Ustad Ahmed Khan, Bade and ChhoteDunni Khan, KanhaiyalalThengdi, JagannathMitra, Shankar Anand etc.

It is also stated that according to his younger brother Bhupendranathji, BeniAslam and KashiGhoshal were his Guru.

He sang the songs composed in Raag Jayjayvanti and Chhayanat in 'Nom-Tom Alaapi' in one of the play 'Nandvrundavan'. Due to his association

with music Swamiji got acquainted with Guru ShriRamkrishnaParamhansa. He performedat various places while touring India. Not only this he promotedIndian Music in other parts of the world.

In vocal Swamiji was expert at Raga Bageshri, Mishradhani, Kanada, Karnat, BadahansSarang, Multani, Chhayanat and YamanKalyan. He played Taal'Chautaal' on Pakhawaj and composed many songs. He also translated various verses.

Swamiji continued his association with music while serving the people who were suffering due to poverty and agony. If we study how Swamiji acquired the art or knowledge of music through training from his Guru, then we can say that music is 'Guru Mukhi Vidya'. So Swamiji always adhere the tradition of 'Guru-Shishya Parampara'. At the same time he asserts that looking at the modern era students must acquire knowledge of music from a music institute or from a proper University where music is taught. Swamiji furtherinsisted that the system should provide employment to the scholars of music and provide education in music to the students. He also expressed that the students will earn a degree in music and pledge to travel the entire Universe for publicity and promotion of Indian Classical Music. Due to this Indian education system will achieve higher scale.

Pracrices of Sanskrit Theatre in the Context of Natyashastric Tradition

Prabhakar Dabhade

NATYASHASTRIC TRADITION:

Almost from 1940 and mainly after independence, **"SWADESHI MOVEMENT"** started gaining importance and various fields started tracing their roots and were in search of their own identity. This search had a great impact on Theatre also and thus began the quest for the **"THEATRE OF ROOTS"**.

MAJOR PRODUCTION SUMMARY WITH SALIENT FEATURES OF THE PRESENTATIONAL STYLE/S:

⇒ In these phase, the impact of Natyasastra of Bharata is seen in the production style and technique with increasing awareness of music, dance, stylized gestures and movements, correct costumes and other Sanskrit Theatre conventions.

⇒ Various attempts were made at the re-creation of Bharata's'Natya' in the "Vikrushta Madhyam Natyamandapa" to create a congenial atmosphere for it was closer to the style of staging the Sanskrit Plays in which the "Natyamandapa" was an integral part of the production and integrating broadly the elements of the "Classical Dance Styles" such as "Hand Gestures and Movements, with Classical Music".

⇒ The "Proscenium Stage" was consciously avoided with all its paraphernalia, such as, the drop or draw curtain, lighting except for illumination and setting of any kind. Thus, the qualities of "Realism" were deliberately done away with.

Þ In later fifties an awareness of staging Sanskrit Plays in 'Language Translations' could be seen with 'Period' costumes using only a platform stage, sans any settings as in the productions of the Hindustani Theatre of Delhi founded by Begum Zaidi, the first professional theatre of its kind, organized specifically to stage Sanskrit Plays in 'Modern Vernacular Translation'.This is an early production which utilized mime, song and dance in a non-realistic style. No setting other than the simple back-ground was used.

Associate Professor, HOD. DFPA The M.S. University of Baroda Vadodara – Gujarat

⇒ Shanta Gandhi earlier had staged in the National School of Drama, New Delhi and Bhasa's" **Madhyama Vyayoga**" in the Small Studio Theatre as an exercise. Prof. Goverdhan Panchal recreated "Bharata's Natyamandapa" with all its essential elements such as 'Ranga' with raised Rangasirsha, Rangapitha, Mattavarni on the either side of the Rangapitha and the Vedika with two doors on its either side, made in the back-wall. Over the vedika was raised a ceiling to represent Shadadaruka. A false wall with flats was created to make two doors in the back wall. Between this false wall and the real wall, there was a passage for the entries and exits. On the backside of these false walls were pinned the paper cuttings of stylized trees and branches which, when lighted, created an atmosphere of the forest locale of the play. The musicians 'Kutapa' occupied the Vedika.The play was staged with an elaborate Purvaranga in which stylized "Angika", "Vachika" and music were used and colourful costumes with a feel for Bharata's "Aharya" had created an atmosphere of some authenticity as seen.

⇒ Shanta Gandhi directed **"Swapnavasavadattam /The Vision of Vasavdatta"** which was staged during the International conference on the Art of Sanskrit Drama in Performance under the Asian Theatre Programme, University Theatre, University of Hawai in March 1974, with a feeling for the "Natyasastra" in a stage condition that is said to reflect "Bharata's Natyamandapa". Here we see Vasantaka the jester, strung by a bee, standing in the central area of the open stage marked by sacred paintings, in keeping with the 'Ancient Staging Practices'.Vasavdatta, Padmavati and two Maids are imagined to be peeping out, unseen, from a bower on one side of the garden, while the jester and King Udayana are trying to hide in the foliage in another part of the garden. The impression of the garden is created by gestures and by verbal description as the scenic representation is considered unnecessary.We can also see here open stage being marked by sacred paintings which probably refers to "Brahma Mandala" mentioned by Bharata.

⇒ Shanta Gandhi staged **"Vikramovarshiyam"** at the KalidasSamaroh, Ujjain in 1974. The "Natyamandapa" with all its elements was roughly recreated by Goverdhan Panchal. Even the lighting arrangement on the pillars with earthen lamps was made. This was the first time in Ujjain that such an attempt at creating the "Natyamandapa"was made, where Sanskrit Plays till then were staged on improvised crude "Proscenium Stage".The music in this production was classical played on Vina - Flute and Pakhavaj enhancing the atmosphere. Faintly 'Stylized Movements, Hand-Gestures and Speech' were used. The "Aharya" was also attempted as described in the 'Natyashastra'. Here the use of "Mattavarinis" was confined to the characters waiting there for their immediate entry. But her attempt to

recreate the "Sanskrit Natya Style" was, however, genuine.

⇒ Shanta Gandhi also produced **"Urubhangam"** both in Sanskrit and Hindi in 1979 at Ujjain with an elaborate 'Purvaranga' with "Rhythm – controlled Movement and Recitation of Shlokas".

⇒ Another notable attempt in recreating the "Natya Tradition" at Ujjain was the production of **"Mudraraksas"** of Vishakhadatt and **"AbhijnanaShakuntala"** of Kalidasa, both in Marathi traditions by Vijaya Mehta. The various areas of the "Natyamandapa" were broadly created by the designer, Godse. Here the "Mattavarini" on the left is treated like a corridor. Both the "Mattavarinis" raised on the levels, presumably for aid in compositions.

⇒ **"Shakuntala"** - Directed by Vijaya Mehta and Fritz Bennewitz played in German Democratic Republic. Here is seen the "Natyamandapa" of Bharata in a solid structure with the essential areas clearly defined but not tied together.

⇒ Vijay Mehta's production of **"AbhijnanaShakuntala"** in Marathi in the mixed style of 'Bharati and KaishikiVrittis' and produced in Bharata's "Natyamandapa" seemed to be more significant for the purpose of recreating the "Natya Style".Here the competent actors were at home with their thinly 'Stylized Speech' which was interspersed with 'Stylized Hand-Gestures and simple Dance Movements in Kathak Style'. The verses of the text were recited by the actors or sung from the background from a tape. The raised and rectangular "Mattavarinis" were treated like corridors by the actors while making use of it for exits now and then. The Ashrama characters' costumes were 'Kashaya – Colour worn by Ascetics' throughout in tune with the Ashrama environment.

⇒ Vijaya Mehta's production of **"Mudrarakshas"** was based on the 'Bharti Vritti - Predominating in Speech'. There were also moments which gave an impression of the realistic theatre but barring some such elements the overall production was impressive.

⇒ In the hands of above directors and good actors, though not trained in the elements of "Tauryatrikam: Dance - Nritya, Song – Geeta and Instrumental Music – Vadya" essential for the correct "Production Style of the Sanskrit Plays" based on "Natyashastra", feel of it was certainly created by both Shanta Gandhi and Vijaya Mehta in their respective productions.

⇒ On 9th Dec. 1989 the West Zone Cultural Centre sponsored the Sanskrit play **"Dootvakyam"** of Bhasa through the Sanskrit Seva Samiti which was directed by Goverdhan Panchal. His attempt was to produce the play in the "Natya Tradition of Bharata" using music, dance, stylized "Angika", "Stylized Hand-Gestures in Bharata Natyam Style" and other "Stage Conventions of the Sanskrit Dramatic Traditions" such as the entry behind the "Chitra Yavanika". The picture depicts Duryodhana's entry behing" Chitra Yavanika". Here the nature of Duryodhana is

symbolized by the use of suitable motif painted on the "Chitra Yavanika". It was staged in the linear "Natyamandapa" environment with all its essential elements and was designed by the director himself.In this production, the Scenes such as the 'Chitrapata' in which Duryodhana tries to divert his attention from being impressed by Vasudev's entry was made live for creating a visual effect and another scene in which Vasudeva calls his weapons was also made live by each personified weapon entering dancing befitting the character. The convention of "Akashbhashit" was used for speaking of the non-present characters.

⇒ Kamlesh Datta Tripathi staged the IV Act of **"Vikramorvashiyam"** in "Natya Style", with music sensitively created by Premalata. The Director for the first time tried to investigate the possibility of staging the Act on a "Tryasara – Triangular Stage" of Bharata using some visual realistic elements like trees to create the atmosphere of the forest in which Urvashi was lost, instead of using models as suggested by Bharata.

⇒ Premlata Sharma and K.D. Tripathi had directed **"Uttarramcharitam"** for the Abhinava Bharti of Varanasi. The "Natyamandapa" was designed by Vasudeva Smart having a painted canopy over it with musicians at the back in the 'Kutapa' position.

⇒ SrinivasaRath and Sanjeev Dixit directed **"Urubhangam"** for Kalidas Academy, Ujjain in which an attempt was made to recreate the 'Purvaranga of Bharata' in a fine authentic manner. The picture shows the 'Kutapa, Vedika and Jarjardhwaja' on the right and Duryodhana with his son.

⇒ The Sanskrita Rangam of Madras on the occasion of the 81st Birthday celebration of late Dr. V. Raghavan, staged **"Swapnavasavadattam"** in Bhartiya Vidya Bhavan's Theatre directed by S.S. Janaki. It was staged in a linear "Natyamandapa" designed by Goverdhan Panchal with the various acting areas broadly defined by the bare structure which marked a departure from their style of production earlier. The various "Kakshyas" of the stage were very well utilized as the action flowed from one "Kakshya" to another smoothly and effortlessly.

⇒ With the establishment of the Kalidas Academy in 1977-78 and taking over of the 'Kalidas Samaroh' by it has been a catalyst for Sanskrit Plays, bringing radical change in the production of the Sanskrit plays being staged in 'Sanskrit, Hindi and Regional Languages'.

- Hence we could see impact of Laws and Practices of Natyashastra on presentation of Sanskrit plays approximately till 70s.

REFERENCE BOOKS:

- Theatres of Bharata and some Aspects of Sanskrit Play Production - Goverdhan Panchal: Chapter 9
  MunshiramManoharlal Publishers Pvt. Ltd.
  First Edition: 1996
- Sanskrit Drama in Performance - Edited by Rachel Van M. Baumer and James R. Brandon
  The University Press of Hawai, Honolulu
  First Edition: 1981

मिथिलांचल संगीत परिषद्

स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय

कामेश्वरनगर, दरभंगा

(बिहार)